

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180755

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/K45W Accession No. H 2638.

author रवाडिकर, L.S.

Title इपुकरिया संज्ञा

This book should be returned on or before the date
last marked below.

1957

खांडेकर-साहित्य : ११

झुलसी मंजरी

वि. स. खांडेकर

मूल्य पाँच रुपये

प्रकाशक :

ग. ज. देशमुख

देशमुख आणि कंपनी

२२ कसबा, पूना २

● ● ●

अनुवादक :

ग. र. सर्वटे

● ● ●

सब हक स्वाधीन

● ● ●

मुखपृष्ठ :

दीनानाथ दलाल

● ● ●

मुद्रक :

शि. गो. भावे, मैनेजिंग डाइरेक्टर

मुद्रण-स्थल :

विमा मुद्रक और प्रकाशक लि. का

विमा छापखाना, मताग

● ● ●



मराठी

प्रथम संस्करण १९४१

द्वितीय संस्करण १९४८

गुजराती

प्रथम संस्करण १९४७

द्वितीय संस्करण १९५०

तामिल

प्रथम संस्करण १९४३

द्वितीय संस्करण १९४६

तृतीय संस्करण १९५३

हिन्दी

प्रथम संस्करण १९५७

•

हमारे बगर्डे के मित्र
प्रो. वि. द. दाभोलकर
और
मौ. उपाताई दाभोलकर
इतको

•

हरसिंगारके फूल

कोलेजमें संस्कृतके लेक्चररकी हैसियतसे नियुक्ति होनेका तार रघुनाथके हाथमें पड़ते ही उसका मन आनंदमें खिल गया। उन फूलोंकी सुगंधपर तैरते तैरते उसके मनमें आया—मंग मन आज माधारण लता नहीं रहा; हरसिंगारका पेड़ हो गया है वह! बचपनमें टंडूके दिनोंमें मुव्वह उठकर टंडूकी परवाह न करके हरसिंगारके पेड़के तले जानेपर जो दृश्य उसके दृष्टि-पथमें आया करता था, वह उसे एकदम याद हो आया! पेड़के तले उन सुकुमार नन्हे फूलोंका जैसे गलीचा ही बिछा हुआ होता। इस गलीचेसे हटाकर जब नज़र ऊपर करता, तो एक एक शाखा कलियाँ और फूलोंसे लदी हुई दिखाई देती। उन कलियों और फूलोंकी ओर देखते देखते रघुनाथको पड़ोसकी कुसुमका स्मरण हो आता। कुसुम गौरवर्ण थी। गोरेपनके कारण उसके लाल हाँठ हमेशा ही अधिक मोहक दिखा करते। रघुनाथ जब फूल चुनने लगता, तो कुसुम भी वहाँ दौड़कर आ जाती और फूल चुनने लगती। सारे फूल चुन लेनेपर रघुनाथ उससे मज़ाकमें कहता,—‘क्या, और एक फूल चुन लें?’

नन्ही कुसुम भोलेभावसे कहती,—‘हाँ!’

फिर रघुनाथ उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर उठा लेता और हँसने लगता। लेकिन

कुसुम ज़रूर बिना हँसे गंभीरतापूर्वक कहती, — ‘मैं तो भई, हरसिंगारका फूल नहीं होऊँगी ! यह फूल किस कामका ? इसका उपयोग सिर्फ़ भगवानके लिये ही होता है ! जो फूल बालोंमें गँथा जा सके, जो कभी भी न मुरझाए — ऐसा फूल बननेवाली हूँ मैं !’

बचपनकी स्मृतियोंके मीठे सपने कभी भी खत्म नहीं होते। इसलिये रघुनाथका मन बचपनकी इन स्मृतियोंमें बहुत देरतक खोया रहता। परंतु उसके सामने पड़ा हुआ तार कह रहा था — ‘चलो, काम पूरा करो जल्दी, तैयारी करो ! शामकी डाकगाड़ीसे चल ही देना चाहिए तुझे !’

तुरंत ही उसके मनमें आया — ‘अब नन्ही कुसुमकी स्मृतियोंमें कौन खो जायेगा ? उसके ससुरालवाले शहरमें ही मैं प्रोफ़ेसर होकर जा रहा हूँ। अब कुसुमके घर ही मैं शामकी चाय पिया करूँगा। उसके द्वारमें क़दम रखते ही खर-गोशके दो बच्चे — ‘मामा आये — मामा आये —’ कहकर मेरा स्वागत करेंगे ...

रघुनाथका भावनाशील मन भूतकालसे भविष्यकालमें उड़ने लगा। अपने इन सुख-स्वप्नोंपर स्वयं उसे ही अपने आप हँसी आयी। वह हँसते हुए मन-ही-मन बोला, — ‘मनुष्यका मन हवाई जहाज़की तरह होता है। वह विशाल अंतरालमें उड़ सकता है। फिर वह अंतराल चाहे भूतकालका हो, अथवा भविष्यकालका हो !’

• • •

कॉलेजमें घंटा शुरू होतेतक उसका यह हवाई जहाज़ लगातार भ्रमण कर रहा था — इस कॉलेजमें मुझे भावुक सहकारी मिलेंगे क्या ? यहाँके लड़के शरारती हैं या सज्जन हैं ? और लड़कियाँ ? इस पराये शहरमें मेरा मन रम जायेगा क्या ? — एक-दो नहीं ! अनेक प्रश्न उसके मनको तंग कर रहे थे और वह उन प्रश्नोंके लगातार अनेक उत्तर तैयार कर रहा था। लेकिन उन उत्तरोंमें एकका दूसरेसे मेल न होनेके कारण उसके मनमें मचा हुआ कुहराम किसी भी तरह कम नहीं हो रहा था। ‘इस पराये शहरमें मेरा मन रम जायेगा क्या ?’ — इस प्रश्नका उसका पहला उत्तर था — ‘यह शहर मेरे लिये पराया नहीं !’ हाँ, जिस शहरमें कुसुमके समान मेरी बालमित्राणी रहती है, वह शहर मुझे पराया क्यों लगना चाहिए ? कुसुम बड़ी बुद्धिमती लड़की है। मैट्रिक पास होते ही विवाह हो जानेके कारण उसे कॉलेजकी शिक्षा न मिली; परंतु मैट्रिकमें थी, उस समय भी वह

कितना पढ़ा करती थी, और उससे भी अधिक लिखती कितना सुंदर थी ! उसके सुंदर निबंध पढ़कर मैं हमेशा उसे चिढ़ाया करता, — ‘एक लड़की कल बड़ी लेखिका बनेगी । आगे चलकर वह मादिय मम्मेलनका अध्यक्षपद भी प्राप्त करेगी और फिर वह हम जैसे मनुष्योंसे बात भी न करेगी ! हाँ, कहते हैं कि बड़े लेखकके एक एक शब्दका मूल्य होता है !’

ज्वारके समाप्त होते ही भाग्य शुरू होता है । उसी तरह कुसुमके विषयमें इन अनुकूल विचारोंके एकदम बाद ही प्रतिकूल विचार भी उसके मनमें उठने लगे । कुसुमका पति यदि अच्छे स्वभावका होगा, तब तो सब ठीक है । लेकिन —

उसके पतिके विरुद्ध उसने एक अश्वर भी न सुना था । उसे सिर्फ़ इतना ही मालूम था कि वह शहरका एक प्रमुख साहूकार और बज़ाज़ है । लेकिन हमेशा किताबी दुनियामें विचरण करते रहनेके कारण हो, अथवा बचपनमें एक बज़ाज़की दूकानमें नयी धोतीपर लगे रंगीन चित्रको फाड़ देनेके बदले बज़ाज़के द्वारा दिये गये प्रसादकी स्मृति अन्तर्मनमें जागृत हो जानेकी वजहसे हो, रघुनाथके मनको किसी भी तरह यह बात नहीं जँचती थी कि कपड़ोंका दूकानदार भला आदमी हो सकता है । अंतमें उसने अपने मनमें यह निश्चय किया कि यदि ऐसा मालूम हुआ कि कुसुमका पति क्रोधी और चिड़चिड़ा है, तो उसके घर न जाकर, मैं ‘संस्कृत साहित्यमें प्रेमविकास’ नामक अपने संकल्पित निबंधको लिखूँगा । इसके बाद ही इस प्रश्नसे उसका पीछा छोड़ा ।

शामको करीब पाँच बजे कुसुमके घरका पता पूछता हुआ वह पैदल ही चल पड़ा । वह अपने मनमें कह रहा था — ‘अगर कुसुमका घर न मिला तो कम-से-कम थोड़ा टहलना ही हो जायेगा ।’

लेकिन उसे जो पहला मनुष्य मिला उसीने जब कुसुमके घरका ठीक पता बता दिया, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । वह मनुष्य बड़ा बक्की था । उसने यह भी कहा, — ‘लेकिन मालिक आपको इस वक्त घर नहीं मिलेंगे । उस तरफ़ मैदानमें एक बड़ी सभा हो रही है । वहाँ गये हैं वे !’

रघुनाथका कुतूहल जागृत हुआ । उसने पूछा, — ‘वहाँ क्यों गये हैं ?’

‘अजी, वही तो उस सभाके प्रधान वक्ता है आज !’

रघुनाथको जैसे बिजलीका धक्का लगा । क्या, कपड़ेका व्यापारी सभामें भाषण

दे सकता है ? उसे यह समाचार ऐसा लगा जैसे कोई कथा-वाचक यह कहे कि सुदामा द्रोणागिरी पर्वतको उठाकर ले आया ।

वह जानबूझकर मैदानकी तरफ मुड़ा । कुसुमके पतिका भाषण कुछ समयके पहले ही शुरू हुआ था । उसने सभामें यह प्रस्ताव रखा था कि शहरके म्युनिसि-पालटीको चाहिए कि वह शहरके भीतर रहनेवाली सारी वेदयाओंको शहरकी बिल-कुल एक तरफके भागमें जाकर रहनेको मजबूर करे । और इसी प्रस्तावपर वह भाषण दे रहा था । उसके प्रत्येक वाक्यमें संस्कृति, नीति, पवित्रता आदि शब्द आ रहे थे । परंतु जब उसने यह कहा कि ' वेदयावर्ग ' मधुमेहके जखमकी तरह चर्चता जानेवाला सामाजिक रोग है । यदि इस रोगको अच्छा करना है, तो उसका चीर-फाड़की तरह ज़ालिम इलाज ही होना चाहिए, तो उसके इन वाक्यों-पर तालियोंकी प्रचण्ड कड़कड़ाहट हुई । वक्ताके भाषणमें विचारोंकी गड़बड़ी भले ही रही हो, पर उसमें एक प्रकारका आवेश है, यह रघुनाथको भी मानना पड़ा । पाँच मिनटतक वह भाषण सुनता खड़ा रहा । फिर उन्हीं वाक्यों और उन्हीं शब्दोंको बार बार सुनकर उसे लगने लगा — ग्रामोफोन रिकार्डमें पड़ी हुई चीरमेसे जब पिन घूमने लगती है तो गाना सुनना जिस तरह असंभव हो जाता है, उस तरह वह भाषण सुनना भी —

वह चलने लगा ।

बीचहीमें उसने पीछे मुड़कर देखा । लोगोंकी वह ग्वासी बढ़ी भीड़ हँसी और तालियोसे वक्ता महोदयका अभिनंदन कर रही थी ।

न जाने क्यों, उसकी आँखोंके सामने दो दृश्य खड़े हो गये — एक गाँवकी कलारीकी दूकान । भिनभिनाती हुई मक्खियोंकी तरह वहाँ शामको लोग इकट्ठा होते हैं ।

दूसरा दृश्य — घुड़दौड़का मैदान । चिंउटियोंके समान वहाँ लोगोंकी भीड़ लगती है ।

शराब, घुड़दौड़ और व्याख्यान — इन तीनोंमें कुछ न कुछ साम्य है, ऐसी एक विचित्र कल्पना उसके मनमें आ गयी ।

• • •

कुसुमका घर उसे शीघ्र ही मिल गया । कुसुम वरहीमें थी । उसने रघुनाथको तुरंत पहचान लिया ।

परंतु रघुनाथने ज़रूर —

वह क्षणभर चौंक पड़ा ! कलसे जब जब आँवोंके सामने कुसुमकी मूर्ति खड़ी हुई थी, तब तब उसे बचपनके उस वाक्यकी भी याद हो आयी थी— ‘हरसिंगारका क्या और एक फूल चुन लें ?’ उसकी कल्पनाको गौरवर्ण और लाल होठवाली कुसुम लगातार दीख रही थी । परंतु इस समय उसका स्वागत करनेके लिये उसके सामने आकर खड़ी हुई कुसुम —

हरसिंगारका डंठल सफेद और फीका पड़ गया था !

और उस फूलके सफेद शुभ्र रंगकी मोहकता भी लुप्त हो गयी थी । सगमरमर-पर चूनेकी रंगत आ जावे, उस तरह उसकी कान्ति फीकी लग रही थी ।

रघुनाथसे न रहा गया । उसने प्रश्न किया,— ‘तुम बीमार दीख रही हो, कुसुम ?’

उसने हँसते हुए उलटा उसमें ही प्रश्न किया,— ‘आप प्रोफ़ेसर होकर यहाँ आये हैं या डॉक्टर होकर ?’

जब कुसुम चाय बना रही थी, उस समय वह लगातार उसकी ओर ध्यानसे देख रहा था । किसी यंत्रचलित गुडियाकी तरह वह सारे व्यवहार कर रही थी । उसके मनमें आया— पहलेकी कुसुमकी हलचल किसी नर्तकीकी तरह मनोहारी होती थी । लेकिन इस समयकी उसकी बोल-चाल— छि ! उसमें सौन्दर्य तो है नहीं; पर प्राण भी नहीं हैं ! इतने दिनोंके बाद अपना बालसखा मिलने आया है, इसलिये वास्तवमें उसे आनंदसे नाचना चाहिए था !

पर —

कुसुमने चाय लाकर उसके सामने रखी । उसकी चुस्कियाँ लेता हुआ वह बोला,— ‘कुछ लिखती-विखती हो कि नहीं आजकल ?’

‘थोड़ा लिखती हूँ ।’

‘क्या, कविता ?’

‘अँ हूँ ।’

‘कहानियाँ ?’

‘छि !’

‘फिर क्या, गीतारहस्य लिख रही हो ?’

‘हूँ !’

उसके इस ‘हूँ’कारमें विषादका ही भाग अधिक था । इसके कारण रघुनाथको,

आगे कुछ बोलनेकी हिम्मत ही न पड़ी। जब उसने पूछा, — ‘बच्चे कहाँ गये हैं?’ तो उसने बिलकुल निर्विकार स्वरमें कहा, — ‘वे मौसीके यहाँ गये हैं।’

‘तुम्हें छोड़कर अच्छे रह जाते हैं वे?’

‘ममतासे ऐसे हो सकता है!’ — उसने जवाब दिया।

रघुनाथने सोचा कि अब आया ही हूँ तो थोड़ा और ठहरकर कुसुमके पतिसे भी भेंट कर लूँ। इसलिये उसने इधर-उधरकी बातें निकालीं। परंतु उसे पद पद-पर यह अनुभव होने लगा कि पहलेकी बातूनी कुसुम अब अबोली हो गयी है। वह पुनः पुनः हँसते हुए बोला, — ‘तुम जरूर जानबूझकर मुझसे कुछ छिपा रही हो; परंतु तुम्हें जरूर कुछ हो रहा है। है न?’

‘सभी बीमारियाँ कहने लायक नहीं होतीं, रघुनाथबाबू!’

क्या, कोई गंदा रोग — पतिने कहींसे पैदा कर, अपनी पत्नीको दिया हुआ प्रसाद — दूसरे किसीके बारेमें रघुनाथको ये शंकाएँ सच लग सकती थीं, परंतु कुसुमके पतिका कुछ समय पहलेका वह भाषण उसके कानोंमें गूँज रहा था। उसने कम-से-कम तीन-चार बार अपने मनमें कहा — ‘दुनियाको स्वच्छता और सफाईका उपदेश देनेवाला मनुष्य स्वयं गंदगीमें लोटे, यह कैसा संभव है!’

सई-साँझ हो गयी; कुसुम उससे जानेका आग्रह करने लगी। बोली, — ‘वे बाहरसे थककर आते हैं, तो फिर किसीसे बात नहीं करते। यदि वे आपसे कोई बात न करेंगे, तो आपको बुरा लगेगा। इसलिये फिर कभी आइयेगा, जिससे उनकी मुलाकात हो जायेगी। इसी समय क्या जरूरत है? अब तो आप यहाँ हैं ही!’

उसके इन शब्दोंको सुननेके बाद रघुनाथको उठना आवश्यक ही था; लेकिन घर लौटतेतक ही नहीं, बल्कि रातको बिस्तरपर नींद आतेतक उसके मनमें एक ही शय्य चुभ रहा था — कुसुमने कहा, ‘फिर कभी आइयेगा’! उसने यह क्यों नहीं कहा कि ‘कल आइयेगा’? क्या, इसका पति व्यसनी है या कि ‘फाल्गुनराव’^१ की तरह संशयी है?

थोड़ी देरके बाद रघुनाथको नींद लग गयी।

लेकिन रातभर उसे लगातार स्वप्न दीख रहे थे। उन स्वप्नोंमें एक ही बात

१ एक मराठी नाटकका पात्र जो अपनी पत्नीके शीलपर शक किया करता था।

उसे बार बार दीख रही थी। हरसिंगारके सुकुमार फूलोंका छिड़काव और उसपर नृत्य करनेवाले आड़े-टेढ़े राक्षसी पैर !

• • •

सुबह उठते ही रघुनाथको फिरसे कुसुमकी याद हो आयी। उसके ध्यानमें आ गया कि इस यादसे मेरा मन व्यर्थ ही व्यग्र होता रहेगा। तुरंत ही उसने अपने संकल्पित निबंध 'संस्कृत साहित्यमें प्रेमविकास' की टिप्पणियोंकी नोट-बुक अपने ट्रंकसे बाहर निकाली। नोट-बुकके पहले ही पृष्ठपर लिखें —

दुष्यंत - शकुंतला

राम - सीता

चारुदत्त - वसंतसेना

पुंडरीक - महाश्वेता

चन्द्रापीड - कादम्बरी

इन पाँच युगलोंकी ओर देखते ही उसका मन एक मधुर सृष्टिमें विहार करने लगा। एकवेणी बियोगिनी शकुंतला, स्पर्शसे संजीवनी फूँक देनेवाली पतिव्रता सीता, मूसलधार वर्षामेंसे प्रीतमकी ओर दौड़ जानेवाली प्रणयिनी वसंतसेना, प्रेमके लिये मन्यासिनी हो गयी हुई गंधर्वकन्या महाश्वेता - कितने सुंदर चित्र ! कितनी रमणीय मूर्तियाँ ! मानो प्रीति-लतापर खिले हुए स्वर्गीय फूल ही हों !

बीचहीमें कुसुम उसकी नज़रोंके सामने आकर खड़ी हो गयी।

हरसिंगारका फूल ? छि ! एक सूखकर गलकर गिर पड़ा हुआ पत्ता !

कोई गायिका बीचहीमें बेसुरी हो जावे, उस तरह इन नायिकाओंमें उसे कुसुमकी मूर्ति लगी।

उसकी स्मृतिको अपने मनसे निकालकर वह अपनी टिप्पणियाँ देखने लगा।

थोड़ी देरके बाद चाय लेकर आया। चायके साथ वह एक अखबार भी ले आया था। स्थानीय दैनिकके संपादककी इस व्यवहार-चतुरताको देखकर रघुनाथको तअज्जुब हुआ। कल ही मैं यहाँ लेक्चरर होकर आया हूँ और संपादक-जीने आज ही मेरे नामकी प्रति शुरू कर दी ! रघुनाथ यदि थोड़ा विचार करता तो सहज ही उसके ध्यानमें यह आ जाता कि संपादकजीकी इस तत्परतामें व्यवहार-चतुरताकी अपेक्षा बुभुक्षितताका ही भाग अधिक है। परंतु उसे सोचनेका अवकाश कहाँ था ?

अखबारके पहले ही सफेपर कुसुमके पतिका भाषण, प्रत्येक वाक्यके बाद ब्रेकेटमें हास्य-ध्वनि और तालियाँ लिखकर छापा गया था। वेद्योंको बीच शहरसे निकालकर दूरके किसी भागमें भगा देनेके इस महत्त्वपूर्ण आन्दोलनका नेतृत्व योग्य व्यक्तिके पास होनेके कारण, वह शीघ्र ही सफल होगा, ऐसी आशा भी भाषणके अंतमें सम्पादकजीने प्रदर्शित की थी।

अखबारके उस मज़मूनसे यह स्पष्ट रूपसे दीख रहा था कि कुसुमके पतिका शहरमें काफी प्रभाव है और उसके आचरणके प्रति सब लोगोंको बड़ा आदर मालूम होता है।

फिर कुसुम इतनी दुःखी क्यों है? यह गानेवाली मैना मूक क्यों हो गयी? यह सदा प्रसन्नमुख रहनेवाली मैना —

कुसुमके कलके व्यवहारका स्मरण होकर रघुनाथको एकदम घुग्घूकी याद हो आयी। इस अमंगल कल्पनाको मनमें हटा देनेके लिये उसने अखबारका भीतरका पृष्ठ खोला —

पराये घरमें गर्दन तानकर चलते चलते किसी एक द्वारमें धड़से सिर टकग जावे और क्षण-भर वह बधिर हो जावे, उस तरह रघुनाथको हुआ!

उसे अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं होता था।

वह दुबारा पढ़ने लगा —

‘बधू चाहिए

सुंदर, स्वस्थ, सुशिक्षित। वरकी सालाना आमदनी कपड़ोंकी दूकानसे तीन हजार रुपये। इसके साथ ही खेती-बारी भी है। पहली पत्नी जीवित है। परंतु इस विवाहमें वह भी पूर्ण रूपसे सहमत है।’

आगे रघुनाथसे पढ़ा नहीं जाता था, और ऐसा पढ़नेके लिये बचा भी क्या था? कुसुमके पतिका नाम, उसका पता, वह सब रघुनाथको मालूम था ही!

हर किस्मकी शंकाएँ उसके मनमें आने लगीं। कॉलेज जातेतक उसने अपने दैनिक कार्योंको जैसे तैसे पूरा किया। लेकिन खटमलोंके काटते हुए सोये हुए मनुष्यकी जो अवस्था होती है, उस तरह उसके मनकी स्थिति हो गयी थी।

उसे एक बार लगता — कहीं कुसुम किसी दूसरेसे तो प्रेम नहीं करने लगी है?

यह विशेष संभव नहीं दीखता था। यदि ऐसा हो भी, फिर भी इस प्रेमके इतना उत्कट होनेकी संभावना न थी कि उसके कारण दो बच्चेकी माँ होनेके बाद वह अपनी गिरस्तीमें न रहे।

आज कॉलेजमें शकुंतल पढ़ाने समय शकुंतलके बदले रह-रहकर कुसुमकी मूर्ति उसकी आँखोंके सामने खड़ी होने लगी। एक बार तो, 'शकुंतल' के बदले 'कुसुम' शब्द ही उसके मुँहसे बाहर निकल पड़ा। उसे सुनते ही दाहिनी तरफकी बेचपर बैठी हुई दो लड़कियोने आपसमें आँखोंके इशारे किये। रघुनाथ उन इशारोंका मतलब समझ गया। लड़कियाँ इशारोंसे ये कह रही थी कि 'हमारे नये प्रोफेसर साहबका कुसुम नामकी किसी लड़कीसे प्यार हो गया है।' इशारोंका यह मतलब ध्यानमें आते ही रघुनाथने चटसे यह मल्लिनाथी टीका की, — 'कुसुमका अर्थ है फूल। शकुंतल वनमें विकसित हुए किसी फूलकी तरह थी। व्यवहारमें कॉलेजमें उसका कभी कोई संबंध न आया था। इसलिये मैंने उसे कुसुम कहा। ऐसे फूलोंकी सिरपर धारण करना चाहिए। उन्हें पेड़ोंके तले नहीं रौंदना चाहिए। परंतु दुर्भाग्य दुर्वासाके अभिशापके रूपमें खड़ा हो जाता है और —'

कोई छोटा लड़का माँसे पूछे, 'बच्चा कहाँसे आता है, माँ?' — उस तरह प्रश्न पूरा होनेपर रघुनाथका मन उससे एक ही प्रश्न पूछने लगा — 'किसके अभिशापके कारण कुसुम दुःखी हो गयी है?'

प्राचीन कालमें अभिशाप देनेके लिये कम से कम बेचारे क्रोधी ऋषी तो रहा करते थे; परंतु आजकल —

आजकल मनुष्योंके ही अभिशाप मनुष्योंको पीड़ा देते रहते हैं!

कॉलेजकी छुट्टी होते ही रघुनाथ सीधा कुसुमके घर गया।

कलकी तरह वह अकेली ही घरमें थी। कलकी तरह ही उसने चाय बनायी।

उसने चायकी प्याली लाकर जब रघुनाथके सामने रखी, तब वह बोला, — 'मैं चाय पीने नहीं आया हूँ!'

कुसुमने निर्विकार मुद्रासे उसकी ओर देखा।

जेबसे अखबारकी प्रति बाहर निकालकर उसमेंका विज्ञापन दिखाता हुआ रघुनाथ बोला —

'यह विज्ञापन देखा है तुमने?'

'वह तो कंठस्थ हो गया है मुझे।'

रघुनाथ स्तंभित हो गया।

‘इस दूसरे विवाहको तुम्हारी अनुमति है?’

कुसुमने गरदनके इशारेसे ‘हाँ’ कहा।

‘मेरी यह कल्पना थी कि स्त्रियोंको सौत अच्छी नहीं लगती!’

‘वह काव्यकी कल्पना हैं। यह बात नहीं है कि काव्यके अनुभव व्यवहारमें हमेशा सत्य होते ही हैं।’

‘परंतु यदि यह विवाह हो गया, तो उसके बाद —’

‘मुझे कम-से-कम थोड़ा तो सुख मिल जायेगा!’

‘तुम कहीं पगली तो नहीं हो गयी हो, कुसुम?’ — रघुनाथने क्रोधसे चिल्लाकर कहा।

उसकी ओर शान्तिपूर्वक देखते हुए वह बोली —

‘रघुनाथ भैया, कभी कभी पागल हो जाना भी भाग्यका लक्षण होता है।’

वह क्षण-भर रुकी, थूक गुटककर वह फिर कहने लगी —

‘भैया, मेरा दुःख — उसे मैं अपनी माँसे भी कहनेकी हिम्मत नहीं कर सकी! अब आप चाहें तो इसे मेरी लाज, अभिमान, क्रोध चाहे जो कहें; परंतु मुझे ऐसा लगता है कि अपने दुर्भाग्यसे लड़ते समय मनुष्यको व्यर्थ चीखना-चिल्लाना नहीं चाहिए। लेकिन फोड़ेमें जत्र पीप बहुत भर जाती है, तब हमें लगता है कि कोई आकर उसे दबा दे। वही हालत हो गयी है मेरे दुःखकी। मुझे वह आपसे कहते नहीं बनेगा। पर —’

भीतरके कमरेमें झटसे जाकर वह एक पत्र ले आयी और उसे रघुनाथके हाथमें देते हुए वह बोली, — ‘डॉक्टरके सामने मनुष्य शर्माता नहीं है। उसी तरह मुझे भी आप जैसे बालमित्रको आज नहीं तो कल सब कुछ कहना ही पड़ेगा, यह कल ही मेरे ध्यानमें आ गया था। इसलिये —’

आगे उससे बोला नहीं जाता था।

आयी हुई सिसकीको उसने भीतरके भीतर ही दबानेकी कोशिश की। लेकिन आग तेज़ हो, तो उफना रहे हुए दूधपर पानी छिड़कनेपर भी वह नीचे नहीं बैठता। उसके दुःखकी भी यही स्थिति हो गयी। मुँह फेरकर वह आँखें पोंछने लगी।

रघुनाथ उस पत्रको लेकर जड़ कदमोंसे उसके घरसे बाहर निकला।

बरामदेमें रखी आरामकुर्सीसे रघुनाथको मेज़पर रखी हुई सब पुस्तकें दीख रही थीं—शाकुंतल, मृच्छकटिक, कादम्बरी ! इन काव्यमय पुस्तकोंमें वर्णित प्रेमका अनुभव और उसके हाथमें रखे पत्रमें लिखा प्रेमका अनुभव—दोनोंमें क्या साम्य था ?

वे काव्यमय पुस्तकें कह रही थीं— प्रेम पूनोकी चाँदनी है ।

उसके हाथका पत्र कह रहा था— प्रेम ग्रीष्मके ऐन दोपहरकी चिलचिलाती हुई धूप है !

कालिदास, शूद्रक और बाण हँसते हुए कह रहे थे— तरुण तरुणियोंका प्रेम फूलोंका बाग है ।

कुसुम सिसकियोंके बीच कह रही थी— तरुण-तरुणियोंका प्रेम भयंकर आग है !

रघुनाथ सुन्न मनसे हाथमें रखे पत्रको दुबारा पढ़ने लगा —

‘ प्रिय रघुनाथ भैया,

कल आप दरवाज़ेमें दिखे—और मुझे बड़ी खुशी हुई । पर वह क्षणभर ही ! दूसरे ही क्षण मेरे मनमें आया—आपको इस कॉलेजमें नौकरी मिली, यह बहुत बुरा हुआ !

दुखके कारण मनुष्यका मन दुष्ट हो जाता है क्या, भैया ?

बचपनमें हरसिंघारका फूल कहकर आप मेरी ठठोली करते थे । भैया, तुम्हें कल्पना भी न होगी, आप वह ठठोली नहीं करते थे; मेरा भाग्य आपके रूपमें भविष्य कह रहा था !

कभी न कुम्हलानेवाली गुलबकावलीका फूल बननेवाली थी मैं । पर—

दैवने मेरे माथपर ‘ प्राज्ञक्त ’ अक्षर ही लिख रखे थे !

व्यर्थ किस्सा नहीं बढ़ाती । मनुष्यके मरनेपर उसकी लाशको बहुत देरतक घरमें नहीं रखते । मेरा सुन्न मर गया है । फिर अब उसे गले लगाकर बैठे रहनेमें—

आप मनमें कहते होंगे—कुसुमको किस बातकी कमी है ? यदि स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो बंबईका डॉक्टर हवाई जहाज़से आ जायेगा उसकी जाँचके लिये !

किसी घरको बाहरसे अच्छा रंग पोत दिया गाय हो; लेकिन भीतरकी दीवालें दीमकके द्वारा खोखली कर दी गयीं हैं! वैसा हो गया है मेरा जीवन।

इसका कारण है मेरे पतिदेव ! तुरंत ही आपके मनमें आयेगा — इसका पति शराब पीता होगा अथवा वेस्यागामी होगा। पुस्तकें पढ़कर मनुष्यके दुख देखनेवाले लोगोंको मदिरा और मीनाश्रीको छोड़कर पतिमें और दूसरी बुराई क्या दिखाई देगी ?

परंतु आपको आश्चर्य होगा कि मदिरा और मीनाश्रीके विषयमें उनके शत्रु भी उनके बारेमें कोई शंका न लेंगे !

लगता है कि न लिखू — अपना रहस्य अपने पास ही रहने दूँ और एक दिन मर जाऊँ, ऐसा मनमें आता है ! परंतु फिर लगता है — मुझ जैसी कितनी ही लड़कियाँ भीतर ही भीतर जल रही होंगी ! कितने ही फूल इस तरह कुम्हला जाते होंगे ! क्या, किसीको उनके दुख प्रकट नहीं कर देना चाहिए ?

जैसे बनेगा तैसे लिखती हूँ — माफ़ कर देना मुझे ।

विवाहके समय मैं गौरीहर^१ पूजने बैठी। उस समय पतिके भावुक सहवास और आगामी सुखभरी गिरस्तीके कितने ही रमणीय चित्र मेरी आँखोंके सामने खड़े हो गये थे ! हम चाँदनी रातमें घूमेंगे, गीत गाएँगे, नज़दीक नज़दीक जब खानेपर बैठेंगे तब धीरेसे एक दूसरेकी थालीसे कौर लेंगे। मैं उनके लिये फूल होऊँगी और वे मेरे लिये फूल होंगे। कविताओं, कहानियों और उसन्यासोंको पढ़कर जो जो मनमें सूझा वह सब मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो गया। मनमें यह कहते हुए कि प्रेम मीठी सुगंधका सुंदर फूल है मैंने उन्हें माला पहनायी।

परंतु हमारी पहली ही भेटमें मुझे कटु सत्य ज्ञात हो गया — मुझे यह अनुभव हुआ कि प्रेम एक उग्र बासका फूल है।

मैं इतनी भोली अथवा ढोंगी नहीं हूँ कि यह न जानूँ कि प्रेम शरीर-सुखका भाग है। परंतु 'उन'के प्रेमकी कल्पनामें शरीरसुखको छोड़कर दूसरी कोई बात नहीं है ! उन्होंने मुझे जॉर्जेटकी साड़ियाँ दीं और सुंदर

१ व्याहके समयके पहले शिव-पार्वतीकी पूजा जो कन्या करती है।

जेवर पहनाये, परंतु यह सारा श्रृंगार मेरे मनके मुखके लिये न था। उनके शरीरके मुखके लिये था !

वे चौबीसों घंटे मेरी ओर इसी दृष्टिसे देखते थे जैसे मैं एक खरीदी हुई और उनके द्वारा उनके रुचिके अनुसार श्रृंगारित एक सुंदर गुड़िया हूँ। गुड़ियासे जब झक आती है, तब बच्चे खेलने लगते हैं। वे भी जब झक आती तभी —

न दिन देखते, न रात; न समय, न असमय ! मौजके लिये मनुष्य जब तबीअत चाहती है, तभी चाय पी लेता है न ? उनके हिसाबमें मैं भी चाय जैसी —

कितने जल्दी मुझे उनसे धृगा हो गयी ! अपने शरीरपर भी लाज आने लगी मुझे। एक बार तो दिन पहाड़े... क्या कहूँ, रघुनाथबाबू ! बड़े लड़कने हम दोनोंको एकान्तमें एक स्थानमें देख लिया। उसी दिन लड़कोंको मैंने मौसीके घर भेज दिया।

मुझसे उनका जो प्रेम है वह मेरे लिये निरी गुलामी है ! जेलके कैदीकी तरह मेरा जीवन हो गया है। मेरा शरीर कभीका मर चुका है ! मन भी मौतकी घड़ियाँ गिनने लगा है।

कमलकी लताकी जड़ें कीचड़में होती हैं। परंतु उसके फूल—वे पानीपर खेलने हैं और सूर्यप्रकाशको आलिंगन करने हैं। इसलिये कमलकी बेल हमें अच्छी लगती है। परंतु मेरे पतिका प्रेम—सिर्फ कीचड़ ! सूर्य-प्रकाशका कहीं भी पता नहीं ! जैसे कीचड़में ज़िंदा रहनेके बजाय—सड़नेकी अपेक्षा —

पुरुषके पशुत्वकी वेदीपर संसारकी लाखों स्त्रियाँ हर रोज़ बलि हो रही हैं ! उन्हींमेंकी मैं एक हूँ। परंतु उनही इस पशुतापर विवाह और पवित्रताकी कितनी ज़बरदस्त मुहर लगी है !

इस जेलसे मुक्त होनेका एक रास्ता दीखने लगा। मैं विरोध करने लगी। मेरे विरोधसे ऊँकर ही उन्होंने अपनी दूसरी शादीका विज्ञापन दिया है।

उनका दूसरा विवाह हो गया, तो मुझे छुटकारा मिल जायेगा ! लेकिन वह दूसरी लड़की —

क्या, उसकी बलि देकर मैं सुखी होऊँ ? एक हरसिंगारका फूल मसला जाकर चकनाचूर हो गया, अब दूसरेका ... '

रघुनाथने एक गहरी साँस छोड़कर हाथमें रखे पत्रको सामनेवाले टी-पॉयपर रख दिया और भीतरकी मेज़पर रखी पुस्तकोंकी ओर मुड़कर देखा; मानो वह बाण, कालिदास और शूद्रकसे पृष्ठ रहा था, - ' तुम्हारे द्वारा रंग गया प्रेम अर्ध-सत्य है । है न ? '

बॉयने टी-पॉयपर रखे पत्रपर बागसे हरसिंगारके फूल लाकर रख दिये ।

रघुनाथ बोला, - ' मुझे ये फूल पसंद नहीं हैं । कल कहीं गुलाबके फूल मिल सकें तो देखना ! '

● ● ●

२

गुलाबके काँटे

दरवाज़ेपर लगी तख्तीके 'इन' (भीतर) शब्दोंको हटाकर, मैंने 'आउट' (बाहर) किया और ज़ीनेकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। मुझे विश्वास था कि तख्तीके शब्दोंकी यह बदल चित्रगुप्तकी बहीमें मेरे 'पाप' के खातमें जमा होगी। परंतु यह किये बगैर दूसरा चारा ही न था ! बंबईमें मैंने पूरा एक महीना बिताया था। इस अवधिमें यहाँ इतना काम इकट्ठा हो गया था कि उस सबको पूरा करनेके लिये यदि दिन पचीस घंटेका हो जाता, तो उसकी मुझे ज़रूरत ही थी। इसलिये—

मैं तीसरे मज़िलके अपने कमरेकी ओर मुड़ा। दरवाज़ा खोलते खोलते सहज-भावसे मैंने पीछे मुड़कर देखा। आठों गमलोंके गुलाबके पौधे काफ़ी बढ़ गये थे। परंतु इन आठों गमलोंमें फूल एक भी नहीं दीख रहा था।

बंबई जानेसे पहले इन गमलोंके फूल प्रत्येक दिन मुझे मूक संतोष दिया करते थे। सुबह उठकर कमरेका द्वार खोलता तो किसी न किसी पौधेपर गुलाबका सुंदर फूल खिला हुआ दिखाई देता। उस समय मुझे यह भ्रम होता कि पूर्वदिशाके अरुणोदयका सारा सौन्दर्य जैसे उन नन्हें फूलोंकी प्रसन्न पंखुड़ियोंमें आकर इकट्ठा हो गया है।

उठते ही खिले हुए फूलपर दृष्टि पड़ती तो मुझे लगता— आजका दिन भी इसी तरह खिलेगा, हंसेगा, सुगंधसे भर जायेगा।

लेकिन आज उन आठ पौधोंमेंसे एकपर भी फूलकी कौन कहे, पर एक छोटी कली भी नहीं दीख रही थी। हाँ, पर एक महीनेमें पौधोंकी शाखाएँ काफ़ी फैल गयी थीं। वैसे पूछा जाय तो फूलोंके विषयमें मैं कुछ नहीं जानता; परंतु मेरे मनमें चटसे एक विचार आ गया—पौधोंकी सारी शक्ति यदि पत्तोंका पोषण करनेमें खर्च हो तो उनमें फूल न आते होंगे।

तुरंत ही वनस्पतिशास्त्रकी अपनी इस खोजपर मुझे हँसी आयी। लेकिन मैंने मनमें यह तय किया कि मालीको बुलाकर इन पौधोंको ठीकसे छँटवा देना चाहिए।

कमरेकी छोटी मेज़के पास बैठकर पिछले महीनेका सारा पत्र-व्यवहार में देखने लगा।

इसी समय नीचेसे किसीकी आवाज़ आयी, — ‘खांडेकरजी हैं क्या?’

आवाज़ परिचयकी तो थी ही नहीं; पर वह ज़रा कटोर भी थी। मैंने मनमें कहा—यह महाशय यदि थोड़ी अँग्रेज़ी जानता हो, तो बड़ा अच्छा होगा। मतलब यह कि तख्तीपर लिखे ‘आउट’ शब्दको पढ़कर इज़रत चुपचाप वापस चले जायेंगे!

परंतु अपने ज्ञानका उपयोग न करनेकी ही उसने ठान ली होगी। नीचे उसकी और नौकरकी इतने ऊँचे स्वरमें बातें हो रही थीं, कि उनका एक एक शब्द स्पष्ट रूपसे मेरे कानोंमें पड़ रहा था।

वह अपरिचित मनुष्य कह रहा था, — ‘मैंने पुलिस मुहकमेमें दस साल गुज़ारे हैं। मैं इन सब हिक्मतोंको जानता हूँ। सचकी अपेक्षा दुनियामें झूठ ही ज्यादा होता है। जा, अपने साहबसे जाकर कह, कि —’

नौकर असमंजसमें पड़ गया होगा।

पुलिस मुहकमेके कौन महाशय मुझसे मिलने आये हैं, यह जाननेकी इच्छा मेरे भी मनमें प्रबल हो गयी थी। मैंने ही पुकारकर नौकरसे कहा, — ‘वे कौन मेहमान आये हैं, उन्हें ऊपर भेज दे।’

पुलिस मुहकमेका नाम आता है तब भरी हुई और मुड़ी हुई मूँछ, तिरछी टोपी, हाथमें एक छोटा लपलपाता हुआ बेत, पानसे रंगे हुए हाँठ, आँखें कुछ चढ़ी हुई—इस प्रकारका चित्र मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो जाता है। परंतु जीना चढ़कर जो मनुष्य मेरे सामने आकर खड़ा हुआ, उसके पास इनमेंसे एक भी

पूँजी न थी ! यदि वह कहता कि मैं प्रोफेसर हूँ, तो मैं उसे चुपचाप मंजूर कर लेता !

अपरिचित मनुष्यसे बातचीत आरंभ करना उतना ही कठिन होता है जितना किसी नयी तर्ज पर गीत रचना । गीतकी रचना आरंभ करते समय जिस तरह एकदम मनचाहे सुंदर शब्द नहीं सूझते, उसी तरह अपरिचित मनुष्यसे बातचीत आरंभ करते समय मनुष्यको यही नहीं सूझता कि उससे पहला प्रश्न कौनसा पृष्ठ जो उसे अच्छा लगे । पहले जमानेमें जब प्रवासके कोई साधन न थे, तब हवा-पानीकी बातोंमें नवीनता रहा करती थी । परंतु आजकलके जमानेमें हवा-पानीकी तो बात ही छोड़िये, पर लड़ाईकी बातें भी बासी लगती हैं । क्योंकि मुवहके अखबारमें हरएक उन्हें पढ़ ही लेता है !

मैं अपने मेहमानकी ओर देखने लगा । वह शरस काफी ऊँचा था । छः फुट न हो, पर पाँच फुट ग्याह इंचमें तो कसर न थी । रंग सौवला ही दीग्व रहा था । परंतु उसका चेहरा जरूर उस हिसाबसे गोरा था । इसके कारण कमलके पत्तोंसे झाँकनेवाली सफेद शुभ्र कलीसे मेरे मनने चटसे उसकी तुलना कर डाली, और यह कलीकी उपमा उमे शोभा दे इस तरह फूली हुई उसकी मुद्रा थी । पराये-पनके कारण उसने जानबूझकर अपनी मुद्रापर जो गंभीरता धारण कर ली थी — क्या, यही उसकी मुद्राके फूलेपनकी वजह थी या कि उसके हाँठोंकी रचना ही उस तरह थी —

एकदम मेरी नज़र उसके नीचेवाले हाँठकी ओर गयी । मैं चौंका । कामशान्त्रकी एक-दो पुस्तकोंमें पढ़ा हुआ वर्णन मुझे स्मरण हो आया । जिसका नीचेवाला हाँठ —

बात करनेके लिये मेहमानके हाँठ हिलनेके कारण मुझे अपना निरीक्षण अधूरा छोड़कर अपनी पढ़ाईकी पड़ताल करनेका यह अपूर्व अवसर खो देना पड़ा ।

मैं इस आशामें था कि आये हुए महाशय पहले अपना नाम, निवासस्थान आदि बताकर फिर दूसरे विषयके बारेमें बातें शुरू करेंगे । मैं मनमें कह रहा था — अभिनेताकी हैसियतसे परदेपर चमकनेकी तो इस शरसकी इच्छा नहीं है कही ! हाँ, पुलिसकी हैसियतसे अँधेरेमें काम करनेके बदले अभिनेताकी हैसियतसे अँधेरेमें —

उस महाशयने मुझसे पहला ही प्रश्न किया,—‘तुम जो कहानियाँ लिखते हो, वे घटित हुई होती हैं या कि —’

उसने अपना वाक्य पूरा न किया। परंतु उसकी बातका रुख मैं समझ गया। मेरी कहानियोंमें कल्पनाका खेल होता है या वस्तुस्थितिका प्रतिबिम्ब होता है, इसका उत्तर वह चाहता था। इस विषयमें मेरी रुचिके दो उदाहरण मुझे तुरंत सूझ गये। एक इब्सेनका और दूसरा तात्यासाहब कोल्हटकरका^१ अपने इक्कके लिये पतिसे लड़नेवाली जो नोरा इब्सेनने निर्मित की उसकी मूल कल्पना एक विलासिनी स्त्रीके द्वारा चेकपर किये गये बनावटी दस्तखतसे ली गयी है, और कोल्हटकरको ‘मूकनायक’^२ की जो कथावस्तु सुझी वह इस चमत्कृतिपूर्ण कल्पनासे कि मदिरा-क्षीको मदिरासे ईर्ष्या होनी ही चाहिए!

मेरे मनमें यह झक आ गयी थी कि इन उदाहरणोंको देकर ‘कलाकी निर्मिति’ पर एक लंबा-चौड़ा भाषण अपने सामने बैठे हुए मेहमानको सुना डालूँ। परंतु दो कठिनाइयोंके कारण मुझे अपने व्याख्यानको मनके मनमें ही रख लेना पड़ा। पहली कठिनाई यह थी कि मेरा श्रोता पुलिस मुहकमेका था। इसके कारण इब्सेन तो दूर रहा, लेकिन कोल्हटकरका नाम भी कभी उसने सुना होगा, इसकी संभावना न थी। और दूसरी बात—वह भ्रापणकर^३के भविष्यको पढ़नेके लिये ‘धनुर्धारी’^४ भले ही खरीदता हो, लेकिन आजकल उसमें कला-निर्मितिके विषयमें जो चर्चा चल रही है, उससे पहले ही परेशान हो गया होगा।

इन विचारोंके मनमें आते ही मैं अपने आप ही हँसा। परंतु मेरी हँसीका मेहमानने ज़रूर उलटा मतलब समझा। हज़रत कुछ झट्टाये हुए-से दिखे।

किंचित क्रोध-भरे स्वरमें वह बोला,—‘तुम शायद यह सोच रहे होंगे कि इसे किस तरह बातोंमें उड़ा दूँ? लेकिन —’

मैं आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगा। मुद्रापर बनावटी हँसीका प्रदर्शन

१ श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर : मराठी भाषाके एक प्रासिद्ध साहित्यिक और नाटककार।

२ एक मराठी नाटक।

३ एक ज्योतिषी।

४ एक मराठी सामयिक पत्र।

करते हुए वह बोला, — ‘मैं पुलिस मुहकमेका हूँ। बनावटी जवाबोंको हम लोग बात-की-बातमें पहचान लेते हैं!’

मेरे मनमें एक ऐसी शंका आ गयी कि कहीं यह शख्स पहरीको धोखा देकर किसी पागलखानेसे तो नहीं भाग आया है। परंतु तुरंत ही उसने अपने जेब टयोलना गुरु किया। बायें जेबमें उसने एक लिफाफा निकाला। वह जरा मोटासा ही था। तुरंत ही उसे फिरसे जहाँके तहाँ रखकर उसने दायें जेबमें हाथ डाला। किसी मासिक पत्रिकासे फाड़े हुए कागज़ थे वे। उन्हें मेरे सामने फेंकता हुआ वह बोला, — ‘यह कहानी तुमने किसपरसे लिखी है?’

उसके द्वारा फेंके गये कागज़ोंको मैंने उठाया और कहानीका नाम पढ़ा — ‘हरसिंगारके फूल’। कुछ समयके पहले ही ‘क्लिंस्कर’^१ में प्रकाशित हुई मेरी कहानी थी वह। मकड़ी जिस तरह जाल बुनती है, उस तरह सिर्फ अपनी कल्पनाओंके तंतुओंसे मैंने वह नहीं लिखी थी। उसे सत्यसृष्टिका आधार था। पर —

परंतु उस आधारेमें मेरे सामने बैठे हुए इस अपरिचित व्यक्तिको क्या करना है, यह मेरी समझमें नहीं आता था! उसे मैंने जिदगीमें कभी न देखा था। उसका नाम क्या है, वह कहाँ रहता है, वह क्या करता है — इसका मुझे कुछ भी पता न था! फिर —

मैं कुछ उत्तर दूँ इसमें पहले ही वह तावसे कहने लगा, — ‘यह कहानी तुमने मुझपरसे लिखी है। इसमें उस संस्कृतके प्रोफेसर रघुनाथको तुमने अपनी गाँठसे मिला दिया होगा; परंतु बाकी सब ठीक जैसाका तैसा! अजी, पुलिस इन्स्पेक्टरको बजाज़ बना देनेसे कोई दूसरी बातें नहीं छिपतीं!’

उसका संतोष करनेके लिये मैं ब्रीचहीमें बोला, — ‘परंतु यह देखिये —’

‘तुम क्या कहोगे यह मुझे मायूम है। ज़रा साफ़ साफ़ कह रहा हूँ। नाराज़ न होना। चोरके बराबर साहूकारका रोब और कोई भी नहीं लाता! हमेशाका अनुभव है यह हमारा।’

उसकी इस बातपर मुझे गुस्सा आ गया। परंतु मुद्रापर बनावटी हँसी लाकर

हँसते हँसते मैंने कहा,—‘पुलिस मुहकमेवालोंको चोरोंके सिवाय और दूसरी कौनसी उपमाएँ सूझेंगी?’

‘उन उपमा और अलंकारोंको आप ही अपना देख लें। दिन निकलते ही हमारा तो एक ही अलंकारसे संबंध आता है। और वह है हाथ-पैरोंकी हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ!’

यह समझकर कि मैंने बड़ा विनोद किया है, वह शरस हँसा। परंतु उफन रहे दूधपर ठंडे पानीका छिड़काव हो जाये, इस तरह मेरी ओर दृष्टि जाते ही उसकी दशा हो गयी।

परंतु पुलिसका कभी भी पगभव नहीं होता, यह अनुभव मुझे तुरंत आ गया। हज़रतने फिरसे बायें जेबमें हाथ डालकर अखबारका एक कटिंग बाहर निकाला और वह मुझे थमा दिया।

मैं वह विज्ञापन पढ़ने लगा —

‘वधू चाहिए

सुंदर, स्वस्थ, मुशिक्षित। घरका वार्षिक आय डेढ़ हज़ार रुपये। इसके अलावा खेती-बाड़ी। पहली पत्नी जीवित है। वह भी इस विवाहमें सहमत है।

क्ष, C/o विश्वसेवक कार्यालय
नासिक’

इस विज्ञापनको पढ़ते पढ़ते मुझे इस बातकी अस्पष्ट-सी कल्पना आ गयी कि ये पुलिस महाराज मुझपर इस तरह क्यों दूट पड़े हैं। मेरी कहानीमें जो विज्ञापन था, वह करीब करीब इसी तरहका था!

मैंने कागज़से नज़र ऊपर उठायी, तभी वह कहने लगा,—‘पिछले छः महीनासे ‘विश्वसेवक’में मेरा विज्ञापन आ रहा है। वही तुमने अपनी कहानीमें दिया है। सिर्फ वार्षिक आयको डेढ़ हज़ारकी जगह तीन हज़ार कर दिया है! उसे तुम दस हज़ार भी कर सकते थे! हाँ! उसमें लेखककी गॉंठसे एक पाई भी खर्च नहीं होती!’

मैं इस विचारमें पड़ गया कि इस महाशयको समझाकर कह दूँ कि यह कहानी मैंने तुमपरसे नहीं लिखी है।

इसी समय वही कहने लगा,—‘छः महीने विशापन देकर कुछ जमता न था। तब ज़ोन टिकट खरीद कर स्वयं बाहर निकल पड़ा। परसों रेलगाड़ीमें तुम्हारी यह कहानी पढ़ी। तब सोचा—दो-तीन लड़कियोंको देखने कोल्हापुर जाना ही है। जाते जाते इन खाड्केरजीको भी देख लेंगे। कल यहाँ आकर मैं तुम्हारी पूछताछ कर गया था। पर पता चला कि तुम बंबईसे लौटे नहीं हो —’

बायें जेबमें हाथ डालकर हज़रत क्या खोज रहे थे, पता नहीं! परतु मैं यह ताड़ गया कि उसकी आवाज़में कुछ समयके पहलेका आवेश अब नहीं रहा है। इस कल्पनासे ही कि मैं न मिर्ज़ा, कुछ समयके पहले उसने तख्तीपर लिखे ‘आउट’ शब्दपर आलोचना की होगी! परतु मेरे सामने आते ही—अन्तः-पुरमें वीरताकी बातें करनेवाला उत्तर समरभूमिपर थरथर कांपने लगता है, यह अनुभव कोई नया नहीं! यह कल्पना मेरे मनमें आ रही थी तभी मुझे लगा कि क्रोधके आवेशमें यदि वह अपना साग हाल कह मुनाता, तो क्या ही अच्छा होता। हाँ, ज्योतिषियोंको किसी नये ग्रहके मिल जानेसे जो आनंद होता होगा, वही लेखकोंको किसी नये आदमीके अन्तःकरणकी गहराईमें प्रवेश कर सकनेका मौका प्राप्त हो जानेसे होता है। मनुष्यके हृदयका यथार्थ वर्णन करना हो तो मैं कहूँगा कि वह एक गुफा है—मामूली गुफा नहीं। अलीबाबा जिसमें केवल सौभाग्यसे प्रवेश कर सका उस चोरोकी गुफाकी तरह—

मेहमान कहने लगा,—‘मुझे विश्वास है कि तुमने मेरा यह विशापन पढ़ा, किसीसे मेरे बारेमें अधूरी-सी जानकारी प्राप्त कर ली और यह कहानी लिखी!’

मैंने गरदन हिलाकर इस बातसे इन्कार किया। परंतु उसका उधर ध्यान ही न था। वह बोला,—‘तुम लेखकोंको स्त्रियोंके दुखके लिये हमेशा प्रेम और सहानुभूतिका आवेश आता है। परंतु पुरुषोंके भी दुख होते हैं, यह बात—’

यह सोचकर कि मैं जो जानकारी चाहता हूँ, वह अब मुझे सुनने मिलेगी, मैं बड़ी उत्कंठासे देखने लगा।

मेहमानने भी बायें जेबमें कुछ टटोलते हुए अपने हाँठ हिलायें।

इसी समय नौकर नीचेसे मेरी डाक लेकर ऊपर आया। पत्रोंपर एक सरसरी नज़र डालकर मैं मेहमानकी ओर देखने लगा। लेकिन कुछ समयके पहलेके

रूपान्तर अब भाटेमें हो गया था। मेरे सामने पड़े हुए पत्रोंमें ऊपर ही एक लिफाफा था। हज़रत उसकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे।

क्षणभर ठहरकर उन्होंने मुझसे प्रश्न किया, — ‘यह पत्र किसका है?’

चेहरो और अक्षरोंके थोड़ेसे परिचयसे भी हम मनुष्यको पहचान सकते हैं। मैंने उस लिफाफेपर लिखे अक्षरोंकी ओर ध्यानसे देखा; परंतु वह किसका पत्र होगा, इसका मैं कोई तर्क न कर सका!

मेहमान मेरी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए बोले, — ‘अक्षर तो बिल्कुल मेरी पत्नी जैसे दीख रहे हैं!’

अब मुझसे न रहा जाता था।

मैंने लिफाफा खोलकर नीचेके दस्तखत पढ़े — ‘एक भगिनी —’

टिकटपर डाक-खानेकी छाप देखी — NA आगे सब अस्पष्ट था। नासिक होगा अथवा नागपुर भी हो सकता है!

‘क्या कहती है तुम्हारी भगिनी?’ — मेहमानने प्रश्न किया।

‘उसने मुझे बधाई दी है — ‘हरसिंघारके फूल’ कहानीके लिये!’

‘आपको यदि पढ़नेका अवकाश हो, तो मैं अपनी सारी डायरियाँ आपको भेज दूँगी। उन्हें पढ़ने पर सहज ही आपके ध्यानमें आ जायेगा कि स्त्रियाँ हरसिंघारके फूल होती हैं और पुरुष पद पदपर पैंगेतले रोंदकर उनको चकनाचूर करते रहते हैं ...’ आदि बातें मेरी इस अपरिचित भगिनीने लिखी थीं। लेकिन ये सब बातें यदि मैं कहूँ, तो सामने बैठे हुए मेहमान एकदम मेरे शालक होकर अधिक गड़बड़ी मचा देंगे, इसलिये मैं चुप रहा।

पत्रको फिरसे लिफाफेमें रखकर उसे मेज़पर रखते ही मेहमान मुझसे बोले, — ‘न्यायाधीशको न्याय देनेसे पहले दोनों तरफ़की बातें सुन लेनी चाहिए। इसलिये ...’

उसने बायें जेबसे एक मोटा लिफाफा निकाला और मेरे हाथमें दिया। फिर कुर्सीसे उठते उठते बोला, — ‘यह सोचकर कि आज भी शायद तुम न मिलो, तुम्हें एक पत्र लिखकर ले आया था। वह —’

आगे कुछ न कहकर उसने मुझे प्रणाम किया और पीछे मुड़ भी न देख वह कमरेके बाहर होकर ज़ीनेकी सीढ़ियाँ भी उतर गया। मेरे मनमें आया — कितने आकस्मिक रीतिसे यह मनुष्य आया और चला गया! जैसे कोई धूमकेतु ही हो!

एक ऐसी धारणा है कि धूमकेतुका उदय संसारकी परिस्थितिमें बड़े बड़े

परिवर्तन कर डालता है। इसका स्मरण होकर मुझे लगा—मेरे मनमें क्रान्ति पैदा कर दे, ऐसा कोई मज़मून तो इस विचित्र मनुष्यके पत्रमें न होगा ?

बड़ी उत्सुकतासे मैंने वह पत्र खोला। वह कहानी—उसमेंका विज्ञापन—वह कहानीलेखकने दूसरोंके जवानी मेरा हाल सुनकर लिखी है—यह थी उस महाशयकी कल्पना—मेरी नज़र जल्दी जल्दी आगे बढ़ रही थी। वह एकदम एक स्थानपर स्थिर हो गयी।

‘.....जीवन चपल कल्पनाका खेल नहीं अथवा नाज़ुक भावनाका नाच नहीं। तुम जैसे लेखकोंको मनुष्य जैसे हैं, वैसे दीखते ही नहीं—कम-से-कम जैसे हैं उस तरह रंगते नहीं बनते। कहीं अधिक सफेद कर देते हो, कहीं अधिक काला रंग पोत देते हो। ऐसा किये बग़ैर तुम्हें चैन ही नहीं पड़ती। मैं लेखक नहीं। एक मामूली आदमी हूँ। इस मामूली आदमीके मामूली अनुभव मैं तुमसे कह रहा हूँ। यह बात नहीं कि उन्हें कहते हुए मुझे कुछ संकोच न हो रहा हो। लेकिन संकोचके वश होकर यदि मनुष्य चुप बैठ जायें, तो लेखक हवामें कल्पनाके महल खड़े करने लगते हैं, और—तुमसे कहनेका मुझे अधिकार नहीं; परंतु कह ही देता हूँ। खांडेकरजी, मनुष्य हवाके महलोंमें ज़िदा नहीं रह सकते; वे ज़मीनपर बने बंगलो, घरों, और मौक़ेपर शोपडियोंमें भी सुखसे ज़िदा रहते हैं।

खांडेकरजी, तुम्हारी कहानी पढ़कर मेरे मनमें जो विचार आये उन सबको लिखने बैटूँ, तो एक पोथा बन जायेगा ! दिलके वे सारे उबाल—

छोड़ो उसे ! सारी रामकहानी पढ़ते पढ़ते तुम ऊब उठोगे। परंतु मेरे मनमें आयी हुए एक कल्पना तुमसे कह ही देता हूँ। लेखक और पुलिसमें साभ्य खोजनेवाले मनुष्यको मैं पहले पागलोंमें गिनता। लेकिन तुम्हारी कहानी पढ़नेके बाद मुझे लगने लगा है कि लेखक पुलिसकी तरह ही होते हैं। इधर-उधरकी गवाहियाँ इकट्ठा करके पुलिस निरपराध मनुष्यको भी गुनहगार बना देती है न ? तुम लेखक भी वही करते हो ! ‘हरसिगारके फूल’ कहानीमें तुमने वही किया है। उस कहानीका पति निरपराधी है। पहली पत्नीके जीवित होते हुए उसने दूसरा विवाह करनेकी तैयारी भले ही कर दी हो, फिर भी इसमें उसका तिल मात्र भी दोष नहीं ! सारा दोष—

मैं अपना ही हाल सुनाता हूँ जिससे तुम्हें विश्वास हो जायेगा।

मैं एक स्कूल-मास्टरकी सबसे बड़ी संतान हूँ। मेरा शरीर जन्मसे ही तगड़ा है। जब स्कूलमें था, तब तैरने और कसरत करनेका मुझे बड़ा शौक था। उस समय रगोंमें इतना जोर था कि कुछ न पूछिये। मुझे लगता जैसे शरीर बिजलीकी कोई मशीन है। उस समय अपने भावी जीवनके मैं विलक्षण सपने देखा करता कोलंबसकी तरह एक जहाज़में सवार होकर मैं विशाल समुद्रमें कहीं दूर चला जा रहा हूँ, अथवा उत्तर ध्रुवकी यात्रा करने-वाले किसी साहसी अन्वेषककी तरह —

जीवनमें सच निकलनेवाले सपने बहुत थोड़े होते हैं ! और हिंदुस्तानमें तो हज़ारोंमें एक भी सपना सच न निकलता होगा !

अंग्रेज़ीकी सातवींमें कोलंबस होनेकी इच्छा करनेवाला लड़का मैट्रिक होते ही नासिकके पुलिस ट्रेनिंग स्कूलमें भरती हो गया। मेरे पिताजीने बड़ी मिन्नतें करके मुझे वहाँ प्रवेश प्राप्त करा दिया था। एक तो बी. ए. एम. ए. की पढ़ाईका खर्च उठाना उनकी आर्थिक शक्तिसे बाहर था और दूसरे एम. ए. होकर पचास एकम पचास करते हुए जीवनयापन करनेके लिये मैं भले ही तैयार हो जाता, परंतु उसके कारण मेरे प्रिय भाइयोंकी जिंदगी बरबाद हो जाती !

यह सच मैं समझता था, इसलिये मैं पुलिस ट्रेनिंगमें बड़ी खुशीसे भरती हो गया। शालाके स्नेह-संमेलनका दुष्यंत राजा सब-इन्स्पेक्टर बननेके ख्यालमें खो गया !

मेरे बीचकी अवधिके अनुभव सुनकर तुम्हें कोई मज़ा न आयेगा ! परंतु एक ही बात कहता हूँ। लोगोंका यह ख्याल है कि पुलिसका व्यवसाय बिल्कुल नज़दीकका नाता होता है। यह बिल्कुल झूठ है, यह मैं नहीं कहता; लेकिन मेरे पिताजीने जो अनुशासन लगा दिया था उसके कारण हो, अथवा माताजीके द्वारा लगा दिये गये धार्मिक ढंगकी वजहसे हो, नौकरी लगनेके बाद तीन-चार वर्षतक मैंने शराबको स्पर्श तक न किया था। मैंने सिर्फ़ दो बातोंमें ही जेठों द्वारा डाल दी गयी मर्यादाका उल्लंघन किया :- एक मांसाहार और दूसरा धूम्रपान।

इसी समय मेरा विवाह हुआ। लड़की कुछ बड़े-से घरानेकी थी। इसलिये माँ-बापको आकाश छोटा लगने लगा।

उन्हें ही क्यों, पर मुझे भी उस समय वही लगा। लड़की सुकुमार पर सुंदर थी। स्त्री-सुखके लिये ललचाये हुए मेरे मनमें अभीतक वह प्यास शृंगार-रस-परिप्लावित उपन्यासों और फिल्मोंसे ही शान्त की थी। फिल्मकी अभिनेत्रीकी तरह दीग्वनेवाली विमलको देखकर —

लेकिन परदेपर मोहक दीग्वनेवाली अभिनेत्रीको घरमें जाकर देखनेसे जिस तरह मनोभंग हो जाता है उसी तरह विवाहके साल-डेढ़ साल बाद मेरा स्थिति होगयी ! मैं रूपकी दृष्टिमें असंतुष्ट न था। पर —

खांडेकरजी, तुम लोग नाजुक कहानियोंको काफ़ी सजाकर मोहक कर सकते हो। मैं ठहरा पुलिसवाला ! मुझसे कदाचित् यह न बन सकेगा। मेरे लिखनेको चाहे तो बेशरमी कह दो। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि दांगसे बेशरमी सौ गुनी अच्छी !

मैं तुमसे यह पहले ही कह देना चाहता हूँ कि नाटकों और उपन्यासोंके प्रेमकी तरह हमारा प्रेम नहीं था। और वह हो भी कैसे सकता था ? हम दोनोंने एक दूसरेको पहले कभी देखा न था। हम लोग एक दूसरेके स्वभावसे परिचित न थे। मैं एक कमाऊ तरुण था। विमल एक सुंदर तरुण स्त्री थी। इसके कारण ही भावुक पति-पत्नी बनाना हमारा ध्येय था। परन्तु कोई भी ध्येय पर्वतका शिखर होता है। शिखर और धरातलमें —

खैर इसे भी छोड़ो। मुझे काव्य नहीं करना है। मैं तुमसे सब कुछ सच सच कह देना चाहता हूँ। अदालतमें हलफ़ उठाकर कहते हैं न ? उसी तरह हलफ़ उठाकर — ईश्वरको साक्षी कर मैं सच बातें तुमसे कहनेवाला हूँ।

विवाहके बाद साल डेढ़ सालतक मुझे लगता था कि मैं सुखी हूँ। परन्तु उस सुखमें भी एक प्रकारकी अतृप्ति थी। कोई सुंदर फूल अपने हाथमें होवे, उसकी सुगंधिसे उन्मत्त होनेके लिये मन उत्सुक हो जावे, लेकिन किसी भी तरह उस मधुर उन्मादका अनुभव न हो — वैसा मुझे हो रहा था। मुझे भ्रम होता था कि मैं सुखी हूँ, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु वह सच्चा सुख न था। किसी भी नयी बातसे मनको जो भुलावा पड़ जाता है उसीका वह एक प्रकार था।

एक बात शीघ्र ही मेरे ध्यानमें आ गयी। जिसे हम पति-पत्नीका प्रेम कहते हैं, वह बहुत वर्षोंके सहवासके बाद उदात्त और निरपेक्ष भले

ही होता हो; परंतु पति-पत्नीके प्रेमकी पहली कड़ी शारीरिक आकर्षण ही है। विवाहके बाद एक दूसरेके प्रति जिस विलक्षण आसक्तिमें मन उन्मत्त हो जाता है, उसका मुख्य भाग शारीरिक सुख ही होता है। यह आसक्ति पतिकी तरह ही पत्नीको भी लगनी चाहिए।

परंतु —

विमलका मुझे विपरीत अनुभव होने लगा। मुझे लगता कि मेरे स्पर्शसे उसे गुदगुदी होनी चाहिए। परंतु अनेक बार वह बिल्कुल ठंडी बनी रहती और यदा कदा उसके विषयमें तिरस्कार भी दिखती।

उसके इस ठंडेपनके कारण मेरा हरघड़ी मनोभंग होने लगा। किसी खेलमें हम तो खो जावे और हमारा जोड़ीदार ऊँघता रहे, तो ऐसा खेल खेलनेमें किसे मज़ा आयेगा?

शरीरसुखके विषयमें उसे इतनी उदासीन क्यों होना चाहिए, यह मैं किसी भी तरह नहीं समझ पाता था। सोचा, विमलसे ही पूछ देगूँ। पर —

एक दिन मैंने पूछनेका पक्का निश्चय कर लिया। परंतु उसी दिन मैंने एक अँग्रेज़ी उपन्यास पढ़ा। उसमें पहले प्रेमीकी स्मृतिके कारण पतिके साथ उदासीनतासे बर्ताव करनेवाली एक स्त्रीका चित्र खींचा गया था।

उस उपन्यासके पढ़नेपर इस विषयमें उससे दिल खोलकर बात करनेकी मुझे इच्छा ही न हुई!

परंतु उसकी इस विरक्तिके कारण मैं चिड़चिड़ा हो चला था। और एक रातको —

क्षमा करना हूँ। मैं कह रहा हूँ वह अनुभव शायद हरएकको होता हो। कदाचित् मेरे मनका रोग हो। परंतु कहते हैं न, कि डॉक्टरके पास जानेपर उससे कुछ भी नहीं छिपाना चाहिए। उसी तरह —

उस रातको मैं कुछ साथियोंके साथ एक जुएके अड्डेपर छापा मारने गया था। ऐसे समय मनुष्यपर परिश्रमका कितना बोझ पड़ता है, तुम्हें इसकी कल्पना नहीं हो सकती। लड़ाईपर जानेवाला सिपाही अथवा शल्य-चिकित्सा करनेवाला डॉक्टर ही उसका वर्णन कर सकेगा।

हमारा छापा सफल हुआ। उस छापेमें एक सुंदर वेदया मिली।

‘माणूस’^१ फिल्मके पहले प्रवेशमें है न ? ठीक वही प्रसंग था वह ।

वह सचमुच सुंदर थी । उसकी ओर देखते ही मेरा मन —

विमलको वास न हो इसलिये कितने ही दिनोंसे मैं उससे दूर रहा था । उसके कारण एक प्रकारके असंतोषमें — अतृप्तिमें ही कहो न — मैं बिलकुल बेकरार हो गया था ।

मुझे प्राप्त न हुआ मुग्य मेरे सामने मूर्तिमान खड़ा था ।

परंतु —

मुझे भगवान या धर्मकी याद न आयी अथवा पुस्तकोंमें लिखे नीति-नियम भी मेरी आँखोंके सामने ग्वड़े नहीं हुए । लेकिन —

विमल ज़रूर मेरी आँखोंके सामने खड़ी हो गयी ।

साँय साँय बढ़नेवाली हवामें उड़नेवाले पतंगको कोई बाराक डोर पीछे खींच ले, उस तरह मेरे प्रमादी हो गये मनको उसने पीछे खींच लिया ।

वह वेश्या तुरंत झूट गयी । झूट गयी कहनेका मतलब यह हुआ कि मेरे साथी दूसरे पुलिस अफसरने उसे छोड़ दिया ! दया करके नहीं, बल्कि उससे खुश होकर ! ‘माणूस’ फिल्ममें तुम्हें यह प्रसंग कभी भी न दिख्वा होगा । दिखेगा भी कैसे ? क्या हमारी फिल्मोंमें और क्या हमारी कहानियाँ और उपन्यासोंमें सच बातोंको छिपाकर रखनेका ही रिवाज़ है । जैसे सत्य कोई लाश है ! उसकी भयंकरता कृत्रिम ध्वेयके फूलोंसे ढाकनी ही चाहिए ।

वह पुलिस अफसर जब उस वेश्याको अपने साथ ले गया, उस समयका मेरी मनस्थिति —

अनायास ही वह मुझे मिल रही थी । पर—

मैं अपने विमलको धोखा नहीं देना चाहता था ।

मैं घर आया तब श्रृंगारिक कल्पनाएँ और विलासी विचार मेरे मनमें पूर्ण रूपसे छा गये थे ।

मैंने विमलको पुकारा । सिर्फ़ ‘उ ...’ करके वह एक करवटसे दूसरी

करवटपर हुई। मुझे थोड़ा क्रोध आ गया। आज रातको तीन बजेतक मैं जागता रहा था, सो क्या अपने मुखके लिये ?

मैंने उसे जगानेकी कोशिश की। वह क्रोधसे तिलमिलाकर उत्तर देने लगी। और फिर —

मेरी लाचारी और उसकी बेफिक्री — दोनोंमें अधिक विचित्र क्या था, यह आज भी मैं नहीं कह सकता।

उसकी उदासीनताके कारण चिढ़कर नीचे लपेटकर रखे हुए एक बिस्तरको मैंने लात मारी और अस्ताव्यस्त फैले हुए उस बिस्तरपर मैं तिलमिलाकर पड़ गया।

पानीसे बाहर निकाल दी गयी मछलीकी तरह मैं तड़प रहा था। मेरा ख्याल था कि विमल मुझे मनाने आयेगी। परंतु दृढ़ करनेवाले किसी छोटे बच्चेके बराबर भी उसने मेरा ख्याल करना जरूरी न समझा।

किसी भूखे बाघको पिजड़ेमें बंद कर बाहरसे दो हाथकी दूरीमें उसे मांस दिखाने रहें —

उस समयकी अपनी मनःस्थितिका वर्णन करना मेरे लिये बिलकुल असंभव है। मेरे मनमें शैतानने अपना कारखाना खोल दिया था। अब लिखनेमें भी शर्म आती है ! परंतु उस समय मेरे मनमें आया — उस वेदिकाकी माँगको स्वीकार करनेवाला मेरा दोस्त ही ठीक था। उसने बातकी बातमें इच्छित सुख प्राप्त कर लिया और मैं जरूर —

उस रातसे हम दोनोंके बीच एक प्रकारका मनमुटाव पैदा हो गया — यही कहो न, कि हम दोनोंके बीचमें एक दीवाल ही खड़ी हो गयी ! मेरा बर्ताव — मेरी माँग — उसे बिलकुल पशुवत् लगने लगी। इसके विपरीत मेरे मनमें आता — मैं यदि पशु हूँ, तो यह पत्थर है। अपना पति दिनमें आठ-आठ दस-दस घंटे काम करता है, समय-असमय खाना खाता है, रातको दो-दो बजेतक जागता है — यह बात उसके ध्यानमें क्यों नहीं आती ? पति यदि शरीरमुख माँगता है, तो उसे यह इतना विलक्षण क्यों लगना चाहिए ? जो उसे सारे सुख प्राप्त करा देता है, उस मनुष्यकी उसे दया भी नहीं आती ? यह क्यों ?

हर बातपर मैं उसपर चिढ़ने लगा, नाराज़ होने लगा। वह भी उलटकर

उत्तर देने लगी। हम लोग मनसे एक दूसरेसे अधिकाधिक दूर जाने लगे। शरीरके सुखपर संतोष कितना अवलंबित होता है, यह मैंने इस समय विलक्षण रूपसे महसूस किया। परंतु मेरे दुखको जान लेनेके लिये ही विमल तैयार न थी। मुझे यह स्पष्ट दीव्य रहा था कि मेरे विषयमें उसकी जो बेफिक्री थी उसमें हठ और पागलपनके सिवाय और कुछ न था।

यह देखते ही कि अपनी इच्छाको दूर रखने लायक अपना पति तैयार हो चुका है, एक दिन कहींमें 'काम आर कामिनी' नामक उपन्यास ले आयी और उसे मेरी मेज़पर रख दिया। इस उपन्यासमें लेखिकाने यह वर्णन किया है कि पति अपनी पत्नीको बहन मानकर उससे बर्ताव करता है।

यह वर्णन पढ़कर मुझे हँसी आयी। जिसे बहनकी ही ज़रूरत है, वह विवाहकी झंझटमें क्यों पड़ेगा? जिन्हें भाई नहीं हैं, ऐसी अनाथ स्त्रियाँ दुनियामें हज़ारों हैं। उन्हें छोड़कर मैंने विमलसे विवाह किया; सो कुछ --

भूखमें व्याकुल हुए मनुष्यको कभी न कभी दो-चार काँट मिल जायें, उस तरह आगामी दो वर्षोंमें मेरे शरीरमुखकी दशा हो गयी।

इसी स्थितिमें विमल गर्भवती हुई। इस पहली जचकीके पहलेके सात-आठ महीने और जचकीके बादके आठ नौ महीने मैंने कैसे काटे, इसका कल्पना कोई भी न कर सकेगा। जचकीके तीन महीने बाद वह मायकेमें घर आ गयी थी, यह सच है; लेकिन सिर्फ बच्चेको लेकर ही नहीं, बल्कि एक बूढ़ी मौसीको भी साथ ले आयी थी।

विमल बच्चेके लिये नये कपड़े सीती थी और उसकी मौसी मेरे चावल खर्च करके शहरके हर एक देवताको संतुष्ट कर रही थी! परंतु --

मेरी और विमलकी एकान्तमें मुलाकात ही न हो पावे इसके लिये न जाने उन दोनोंने मिलकर क्या कोई पट्टेयंत्र ही रच डाला था!

मैं बिल्कुल बेचैन हो गया था। जो नहीं मिलता उसीके बारेमें शायद मनुष्य अधिक विचार करता रहता होगा! मेरे मनमें भले-बुरे विचार आने लगे। मेरा मन पाप और पुण्यको भूल गया। एक बात -- यह एक ही बात मेरे मनमें लगातार कुहराम मचाने लगी।

वेश्याओंके घर जानेवाले लोगोंपर पहले मैं हँसा करता था। परंतु इस

साल मुझे लगने लगा — मनुष्य स्वभावसे व्यसनी नहीं है। उसकी परिस्थिति ही उसे व्यसनी बना देती है।

विमलने अपनी मौसीको बहुत दिन रख लिया इसका मुझे गुस्सा न आया। गुस्सा आया था वह इस बातपर कि इस विचारसे कि पति मेरा शत्रु है और मौसी उससे मेरी रक्षा करनेवाली ढाल है, विमलने मुझसे युद्ध छेड़ दिया था। उसके एक स्पर्शसे, एक आलिंगनसे भी मुझे अच्छा लग जाता। लेकिन —

खैर छोड़ो भी! व्यर्थकी वकवास नहीं बढ़ाता। तुमने अपनी कहानीमें लिखा है — ‘एक बार दिन दहाड़े —’

तुम्हारा लिखा एक एक अक्षर अक्षर सच है। उसमें एक ही छोटी सी गलती है। भूखसे व्याकुल हुआ शेर अपने शिकारको पकड़ लावे, उस तरह मैं उसे पकड़कर खींच लाया था, यह सच है। परंतु हम दोनोंको एक स्थानमें देख लिया था उसकी मौसीने!

उस दिन एक बात में पूर्ण रूपसे जान गया। साधारण मनुष्यके जीवनमें शरीर-सुखका भाग बहुत बड़ा है। उस दृष्टिसे मनुष्य पशु है। पाले हुए हिंस्र पशु कितने शरीर दीखते हैं! जिसके शरीरकी भूख तृप्त होती है वह मनुष्य भी इसी तरह होता है। परंतु पाला हुआ नाग अथवा शेर यदि चिढ़ जावे, तो वह अपने स्वामीपर ही टूट पड़ता है। मनुष्यका शरीर भूखा रहा, तो —

विमलकी दूसरी जचकी आयी। इस बार पहली जचकीसे अधिक त्रास मुझे हुआ। वह भुलानेके लिये मैं मित्रोंकी बैठकमें जाकर बैठने लगा। वह शराबियोंकी बैठक थी। वहाँ —

मेरे संस्कार मुझे शराबका शिकार नहीं होने देने थे। इसलिये मैं एक वेश्याके घर गाना सुनने जाने लगा। इस बातका विमलको ज्ञापता चला, तब उसने कितना विरोध किया! मेरे एक मित्रके सामने वह बोली, — ‘ऐसे छुपे रस्तुम क्यों बनते हो? इससे तो अच्छा है कि दूसरी शादी ही कर लो! जिससे —’

उसके इस तानेसे दूसरा विवाह कर लेनेकी कल्पना मेरे दिमागमें चक्कर काटने लगी।

तुम लेखकोंमें स्त्रियोंका व्यर्थ पक्ष लेनेकी आदत है। इसलिये तुमसे कहता हूँ — मैंने अपने विज्ञापनमें पत्नीके सहमत होनेकी जो बात लिखी है, वह झूठ है। मेरा विज्ञापन अखबारमें प्रकाशित होते ही विमल आपसे बाहर होने लगी।

वह सौत नहीं चाहती, वह यह भी नहीं चाहती कि उसका पति वेदयागामी हो, और स्वयं भी पतिको सुख देना नहीं चाहती!

मुनता हूँ विवाहके पहले वह कविताएँ बनाया करती थी! यह वह कभी न समझ पायी कि कविताओंके प्रेम और व्यवहारके प्रेममें बहुत अंतर है! ऐसी स्त्रीको तुम भले ही हंसिंगारका फूल कहो। मैं उसे एक ही उपमा दूँगा — गुलाबका पेड़! जिसमें एक भी फूल नहीं — सिर्फ़ बारीक काँटोंसे भरा हुआ गुलाबका पेड़!

पत्र यही खत्म हो गया था। पत्रके नीचे दस्तखत वगैरह कुछ न थे। मुझ मनसे उठकर मैंने खिड़कीसे बाहर देखा। आठ गमलोंके आठों पौधोंपर एक भी फूल न था।

मेरे मनमें आया — इस पत्रको लिखनेवाला मनुष्य प्रामाणिक है, परंतु उसका लिखना शुद्ध अर्धसत्य हो सकता है। विमलका हाल माझूम हुए बिना —

मैं उस पत्रकी ओर देखता हुआ पुटपुटाया —

‘गुलाबका पेड़ — जिसमें एक भी फूल नहीं — सिर्फ़ बारीक काँटोंसे भरा हुआ गुलाबका पेड़!’



३

सोनचंपाकी सुगंध

‘गुलाबका पेड़ — जिसमें एक भी फूल नहीं — सिर्फ बारीक काँटोंसे भरा हुआ गुलाबका पेड़ !’

कितने ही देरतक पुलिस मुहकमेके उस अपरिचित मनुष्यके शब्द मेरे मनमें चक्कर काट रहे थे ।

मनुष्यका मन एक गुंथद सरीखा है । बिजापुरके गुंथदसे भी उसकी रचना अधिक आश्चर्यजनक है । उस गुंथदमें मनुष्यकी आवाज़ अनंत गुनी बड़ी होकर आती है; परंतु इस गुंथदमें वह अनंत कालतक गूँजती रहती है ।

वरना पुलिस मुहकमेके एक मामूली आदमीके द्वारा सहजभावसे लिखा गया वह वाक्य — बात-की-बातमें मुझे भूल जाना चाहिए था वह ! परंतु आज मेरी दृष्टिमें वह पुलिस सब-इन्स्पेक्टर महाकवि हो गया था । उसके उस वाक्यने मुझे नयी दृष्टि दे दी थी । उसकी उस उपमाके कारण मेरी आँखोंके सामने नयी सृष्टि खड़ी होने लगी थी ।

मेरी कहानीमें, पतिर्का कामुकतासे कुम्हला गयी कुलुमका चित्रण करते समय उसके अनुभवोंको मेरे द्वारा दी गयी हरसिंगारके फूलोंकी उपमा, मुझे रूपसे समर्पक प्रतीत हुई थी । परंतु उस पुलिस सब-इन्स्पेक्टरका पत्र पढ़ते ही मुझे लगने लगा — स्त्री-जीवन हरसिंगारका पेड़ नहीं; वह गुलाबका पेड़ है ।

कुसुमकी कहानी मुझे जिस प्रसंगपरसे सूझी थी, उसकी मैं याद करने लगा। वह प्रसंग कारुण्यसे पूरा लबालब भरा हुआ था। परंतु उसे रंगते समय मैं एक बात बिलकुल भूल गया था। चित्रकार इन्द्रधनुष्यके एक ही रंगको सच मानकर उसका चित्र नहीं खींचा करता। स्त्री-पुरुषोंका प्रेम भी इसी तरहका विषय है! उसमें इतने रंग एक दूसरेमें मिले हुए होते हैं कि —

सायंकालतक मैं इसी बातका रद्द रद्दकर विचार कर रहा था। मुझे इस बातका कभी भी आश्चर्य नहीं होता कि जिस प्रीतका ससागके महाकवियोंने यशोगान किया है, उसका मूल शार्ंगमुखमें है। लेकिन, यद्यपि यह सच हो कि पत्थरके बिना मूर्तिका निर्माण नहीं होता, फिर भी पत्थर ही कोई मूर्ति नहीं है। प्रेमका अनुभव भी उसी प्रकारका होना चाहिए। शार्ंगिक आकर्षणके बिना तरुण स्त्री-पुरुषोंके मन एक दूसरेकी ओर आकर्षित नहीं होते, उसमें अस्वाभाविक क्या है? संगमके लिये दो नदियाँ एक दूसरीकी ओर दौड़ पड़े, उसी तरह है यह। संगमके बाद नदियाँ एक दूसरीमें कभी भी दूर नहीं होतीं; परंतु पति-पत्नी अवश्य —

मेरी कहानीकी नायिका कुसुम पतिके अत्याचारसे ऊब उठी थी। मुझसे मिलने आया हुआ इन्स्पेक्टर अपनी पत्नीकी असहकारितासे ऊब गया था। मेरे मनमें आया—कहना चाहिए कि टाम्पत्यसुखका प्रश्न हमारी राजनीतिके बराबर ही बिकट है! अत्याचार और असहकारिताका सुवर्ण-मध्य जिस तरह हमें राजनीतिमें सफल करते नहीं बनता, उसी तरह —

तृप्तानमें फँसे हुए मनुष्यकी तरह मेरे मनकी हालत हो गयी। कामका ढेर सामन पड़ा हुआ था। परंतु बीमार मनुष्यकी जिस प्रकार किसी भी तरह अन्न-पर वासना नहीं जाती, उसी तरह किसी भी काममें मेरा मन नहीं लगता था! जब मनुष्य बैठा रहता है, तब उसका मन भी एक ही बातमें चिपका रहता है। इसलिये यह सोचकर कि देखें पैरोंके साथ मन भी स्वतंत्र होता है या नहीं, मैं घरसे बाहर निकल पड़ा।

मेरे पैर रंकाला^१ की ओर मुड़ गये। न जाने क्यों, मुझे यह लगता है कि मानवी जीवनकी कोई पहेली यदि हल होगी, तो वह दो ही स्थानोंमें हो सकती है। एक तो किसी पर्वतके निकट अथवा समुद्र जैसे जलाशयके साभिध्यमें।

१ कोल्हापुरका एक तालाब।

पर्वतके गगनचुंबी शिखरोंको देखकर असमंजसमें पड़े हुए मनकी महत्वाकांक्षा प्रज्वलित हो जाती होगी, और समुद्रका विशाल विस्तार और उसको हँसते-खेलते पार करनेवाली बाष्पनौकाको देखकर, उसका आत्म-विश्वास जागृत हो जाता होगा।

यह सब ठीक हो, फिर भी जलाशयके किनारे बैठते ही झटसे प्रसन्न हो जाने-वाला मेरा मन आज विषण्ण ही रहा।

बार्याँ ओर दीख रहा सूना संध्या-मठ। मेरा मन कह रहा था — इस संध्या-मठ बनानेवालोंने क्या कभी भी यह सोचा होगा कि आगे चलकर वह इस तरह वीरान हो जायेगा? विवाहके समय पति-पत्नी जो दिव्य प्रेम-मंदिर खड़े करते हैं, वे भी इसी तरह होते हैं। है न?

सच यही है कि कोई कोई विचार पुलिसके गुप्तचरोंकी तरह हमारा पीछा करते रहते हैं। वरना पश्चिम दिशामें दीख रही विविध रंगोंकी छटा और शिशुकी मुट्ठीकी तरह नाचनेवाली रंकालाकी छोटी छोटी लहरोंमें खो जानेके बजाय, मेरा मन उस अनिश्चित प्रश्नकी ओर ही क्यों मुड़ जाता?

यह निश्चय करके कि संध्यामठकी ओर नहीं देखूँगा, मैं सामनेवाले पानीकी ओर देखने लगा। कोमल हरियालीसे आच्छादित विस्तीर्ण मैदान — आकाश अपने प्रतिबिम्बको ठीक तरहसे देख सके, इसलिये निर्मित किया हुआ दर्पण —

मैं यों ही कल्पना करने लगा। मुझे यह लगा कि मेरी कल्पनाएँ काव्य दृष्टिसे कैसी भी हों, पर उनकी धुनमें मनमें चुभनेवाले उस प्रश्नको मैं भुला सकूँगा।

परंतु —

हाथमें पकड़कर पानीके भीतर डुबाया हुआ कार्क, पकड़ छोड़ते ही जिस तरह चटसे ऊपर आ जाता है ठीक उसी तरह वह प्रश्न मेरे मनको फिरसे लू गया।

मैं पानीके पृष्ठभागकी ओर देख रहा था। एकदम मुझे एक बात याद हो आयी। कुछ दिन पहले एक आदमी रंकालामें डूब गया था। वह अच्छी तरह तैर सकता था। परंतु तैरते तैरते उसके पैर भीतरकी काँइके जालमें अटक गये और बात-की-बातमें —

स्त्री और पुरुषके प्रेमका प्रतिबिंब मुझे सामनेवाले सरोवरमें दीखने लगा। ऊपर पानी, लेकिन भीतर प्राण लेनेवाला काँइका जाल! ऊपर दिव्य प्रेमका सुंदर मुलम्मा लेकिन भीतर सिर्फ शरीरसुखकी आग!

अब मुझसे रंकालाके पानीकी ओर देखा नहीं जाता था।

मैं उठकर चलने लगा।

मैंने सोचा महाद्वारकी सड़कसे जानेके बटले यदि अंबाबाई^१ के देवालयसे जाऊँ तो मुझे कम चलना पड़ेगा। इसलिये मैं देवालयकी दिशामें मुड़ा। महाद्वारके बाहर एक फूलोंकी दूकान थी। वहाँसे सुगंध लेकर वायु लहरियाँ दौड़ती हुई आयीं। यह देखनेके लिये कि वह काहेकी सुगंध है मैं मुड़ ही रहा था, तभी —

अस्ताचलकी ओर गमन करनेवाले भगवान् भास्करकी अंतिम किरणें मेरे सामने चमकती हुई दिखाई दीं। मैंने दो-तीन बार एक-दो आदमियोंसे यह सुना था कि इस देवालयकी रचना ही इस खूबीसे की गयी है कि अस्त हो रहे सूर्यकी किरणें ठीक अंबादेवीकी मूर्तिपर पड़े। यह दंतकथा है या सत्यकथा है, यह देखनेका प्रयत्न मैंने कभी न किया था। आज विलकुल संयोगसे—

मैं जल्दी जल्दी भीतर गया। कब एक बार चप्पल उतारकर भीतर जाता हूँ और देवालय बनानेवाले कारीगरोंकी इस कुशलताको आँखोंसे देखकर मनको संतुष्ट करता हूँ, ऐसा मुझे लग रहा था। चक्रव्यूहकी तरह प्रतीत होनेवाले सभामंडपके अनेक खंभोंको पार करता हुआ मैं आगे बढ़ा जा रहा था, तभी —

एक विलक्षण सुगंधके कारण मेरी चाल मंद पड़ गयी। देवालयमें कपूर अगर-बत्ती आदिकी सुगंधका हमेशा अनुभव होता है। परंतु यह सुगंध उनमेंसे न थी। वह सौम्य पर श्रेष्ठ, जितनी मंद उतनी ही मधुर थी!

मेरे नज़दीकसे जा रहे मनुष्यके हाथमें जो फूल थे — सोनचंपाके होंगे वे — उनकी सुगंध थी वह!

वह मनुष्य मेरी बगलसे गुज़रा ही था कि वह सुगंध, यह देखनेकी जिज्ञासा कि सूरजकी किरणें मूर्तिपर पड़ती हैं या नहीं — सब — सबकुछ न जाने कहाँ गायब हो गया!

कोहरेसे ढकी हुई सृष्टिकी तरह उस व्यक्तिके विषयकी एक अस्पष्ट स्मृति मेरे सामने खड़ी हो गयी।

दूसरे ही क्षण वह कोहरा साफ हो गया।

रामभाऊ केलकर ही मेरे नज़दीकसे गुज़रा था।

१ कोल्हापुरकी एक जागत देवी।

पूरे चौबीस साल हो गये थे उस बातको। वह और मैं — दोनों फर्ग्युसनमें स्कॉलर थे। वह था खानदेश तरफ़का, मैं था सांगलीका। उसकी दृष्टि ठीक, तो मेरी कमज़ोर। घरका बड़ा आदमी था, इसलिये आंग चलकर वह बंचईके मेडिकल कॉलेजमें जानेवाला था। इसके विपरीत, कॉलेजमें क्रदम रखते ही मैं इस विवंचनामें था कि बी. ए. भी हो सकूंगा या नहीं। उस समय स्यूटसूटमें रहनेवाले विद्यार्थी बहुत कम रहा करते थे। परंतु रामभाऊ इन अल्पसंख्यकोंका नेता था; और मैं तो धोतीका काछ भी ठीक तरहसे नहीं लगा सकता था।

इसके बावजूद हम दो ध्रुवोंने कॉलेजके दो वर्ष बड़े आनंदमें एकत्र रहकर बिताये थे। कॉलेजके नज़दीकवाली टेकड़ीपर हम दोनों चाँदनी रातमें घूमने जाया करते। मैं 'राजहंस' ^१ गुनगुनाने लगता, तो रामभाऊ फौरन कहता, — 'खाडेकर, तुम निरे बुद्ध हो! अरे अरसिक, टेकड़ीपर चाँदनी रातमें कौनसी कविता कही जाती है, जानते हो?'

और फिर वह 'बालकवि' ^२ की 'फुलराणी' ^३ शीर्षक कविता कहने लगता। उसकी आवाज़ मधुर होनेके कारण ---

**‘प्रणय-चंचला त्या भरूलीला
अवगत नव्हत्या कुमारिकेला!’**^४

किवा

**‘लाजलाजली या वचनानीं
साधीभोली ती फुलराणी’**^५

ये पंक्तियाँ उसके मुँहसे बड़ी मीठी लगती थीं। वह हमेशा प्रेम-गीत पढ़कर,

१ मराठी भाषाके प्रसिद्ध कवि 'गोविंदायज' का एक लोकप्रिय कविता।

२ मराठी भाषाके एक कवि — व्यंकट बापूजा ठांम्बरे।

३ फूलोंकी रानी।

४ 'प्रणय-चंचलाकी भरूलीलाएँ

उस कुमारिकाको अवगत न थीं!'

५ 'यह भोली-भाली फूलोंकी रानी।

उन वचनोंको सुनकर लज्जामें गड़ गयी।'

कहा करता, - 'प्रेमके लिये जिंदा रहनेमें ही नहीं, बल्कि मरनेमें भी बड़ा मज़ा है !'

हम सब उसका मज़ाक करनेके लिये कहा करते, - 'यार, आज प्रेमकी कविताने ही तुम्हें इतना पागल कर डाला है; तो कल विवाह हो जानेपर...'

देवालयसे जल्दी-जल्दी बाहर निकलते समय क्षणार्धमें ये सब बातें मुझे याद हो आयीं।

मैंने बाहर आकर देखा। रामभाऊ कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। वह किस रास्तेसे गया होगा? कहाँ ठहरा होगा?

छि! मैंने ही गलती की। देवालयमें जब वह मेरे नज़दीकसे गुज़रा था, तभी मुझे उसे चिल्लाकर पुकारना था।

मैं बड़ा चिंतित हो गया। लेकिन तुरंत ही मेरे ध्यानमें आया, अपरिचित व्यक्तिको देवालयके पिछवाड़ेका गस्ता मालूम हो, यह संभव नहीं है। वह महाद्वारसे ही बाहर गया होगा।

मैं दौड़ता हुआ महाद्वारकी ओर आया।

पेड़ोंकी दूकानके पास खड़े होकर मैंने बाहर देखा। रामभाऊ फूलोंकी दूकानके नज़दीक खड़ा हुआ था। मैं दौड़ता ही गया और उसकी पीठपर एक धौल जमाते हुए बोला, - 'अरे भले आदमी —'

एकदम चौंककर उसने पीछे मुड़कर देखा। तुरंत ही वह हसकर बोला, - 'कितने ज़ोरसे धौल मारी, यार! हाथमें रखे ये सोनचंपाके फूल नीचे धूलमें गिर पड़ते न?' यह कहते हुए उसने ऐसी भावपूर्ण दृष्टिमें हाथमें रखे फूलोंकी ओर देखा कि मुझे यह शंका आयी कि डॉक्टर अब कोई कविता कहना तो शुरू नहीं कर देता है।

वह फूलोंके दाम चुका रहा, उस समय मैंने उनकी पोशाककी ओर देखा। पिछले चौबीस वर्षोंमें हमारी कभी एक बार भी मुलाकात न हुई थी। परंतु कोई कोई लोग शरीरसे भले ही इतने बढ़ते रहते हैं जैसे कि बर्मीठे बढ़ते हैं, परंतु कुछ लोगोंका शरीर ज्योंका त्यों कायम रहता है। हम दोनों दूसरे वर्गके होनेके कारण ही, एक दूसरेको चर्चसे पहचान गये। लेकिन रह रहकर एक बात ज़रूर मेरे मनमें आ रही थी—कॉलेजमें पढ़ते समय सूट-बूटमें रहनेवाला रामभाऊ, आज एक गांधी टोपी, एक नेहरू शर्ट और एक घुटनेतक पहुँचनेवाली धोतीसे कैसे खुश

है ? यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! क्या, यह बिलकुल डॉक्टर हुआ ही नहीं, या डॉक्टर होकर बीचहीमें देश-भक्त हो गया अथवा दुर्भाग्यसे इसकी सम्पन्नता ...

मेरी ओर मुड़कर प्रसन्नमुखसे रामभाऊ बोला, — ‘क्या, अंबादेवीके दर्शनके लिये आये थे ?’

‘यही सच है कि मनुष्य अपनेपरसे दुनिया पहचानता है !’

वह हँसते हुए बोला, — ‘अरे यार, मुझे ईश्वरपर कहां विश्वास है ? परंतु बीचमें मेरी पत्नी तीन-चार सालतक बीमार थी । अच्छी होनेके बाद वह लगा-तार मेरे पीछे पड़ी थी, ‘अंबादेवीको मैंने मनौती मनाई थी । तुम जाकर उसे चुका आओ !’ मैं ‘हाँ, हाँ’ कहता हुआ दो-तीन सालतक टरकाता रहा; परंतु आखिर करता क्या ? राजाकी आज्ञा न मानना सहज है, लेकिन पत्नीका हुक्म —’

वह इतने जोरसे हँसा, कि सड़कसे आने-जानेवाले लोग हमारी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे । यह देखकर कि इतना बड़ा डॉक्टर होकर रामभाऊ एक गंवारकी तरह कैसे हँस रहा है, मुझे भी —

रामभाऊने पूछा, — ‘तुम तो कोंकणके किसी गाँवमें स्कूल-मास्टर थे न ?’

मैंने उत्तर दिया, — ‘हाँ; पर आजकल यहाँ हूँ ।’

‘क्या कर रहे हो ?’

रास्तेसे चलते चलते किसी मनुष्यका धक्का लग जानेसे जिस तरह क्षण-भर हमें क्रोध आ जाता है, उस तरह रामभाऊके इस वाक्यसे मेरे अहंकारकी स्थिति हो गयी । मैं कोल्हापुर आकर फिल्मके लिये कहानियाँ लिखना करता हूँ, यह बात...

एकदम मुझे एक शंका आयी । व्यवसायके निमित्त रामभाऊ कहीं महाराष्ट्रसे बाहर जाकर तो नहीं बस गया है ? उसने जो प्रश्न अभी मुझसे किया इससे यही लगता है कि वह मराठीका कोई भी सामयिक पत्र नहीं पढ़ता है ।

यह ध्यानमें आते ही कि रामभाऊ उत्सुकतासे मेरी ओर देख रहा है, मैंने कहा, — ‘फिल्मकी कहानियाँ लिखनेके लिये मैं यहाँ आ गया हूँ आजकल ।’

‘तभी !’

उसके इस एकशब्दके उद्गारका मुझे कुछ मतलब ही समझमें न आया । कहीं रामभाऊने मेरे बारेमें कुछ अनाप-सनाप तो नहीं सुन लिया है ? हाँ भई, शराबीके हाथमें दूधका बरतन भी हो, फिर भी दूरसे देखनेवाले यही समझते

हैं कि उसमें शराब है। सिनेमा-जगतके विषय सच्ची झूठी अफवाहोंके कारण, मेरे भी विषयमें यदि गमभाऊ संशंक हो गया हो, तो आश्चर्य क्या है ?

यह ध्यानमें आते ही कि मैं उसकी और तबज्जुब-भरी निगाहमें देख रहा हूँ, उसने हाथमें रखे झोलेसे एक अंक बाहर निकाला और बोला —

‘कल रातको गाड़ीमें नींद नहीं आ रही थी। कुछ पढ़नेके इरादेसे ‘किलोस्कर’ का यह ताज़ा अंक खरीदा। मैं जानता था कि तुम लेखक हो गये हो इसलिये जानबूझकर तुम्हारी ही कहानी पढ़ी। लेकिन —’

इस ख्यालसे कि आम मीठा होगा हम उसे चूसने लगें, और वह निकल जाय एकदम बहुत खट्टा। तो उस समय हमारा मुँह जिस तरह खराब हो जावे, ठीक वही भाव गमभाऊकी मुद्रापर झलक रहा था। यह स्पष्ट दीख रहा था कि उस अंकी मेरी कहानी ‘दुसिंगारके फूल’ उमें बिलकुल अच्छी न लगी थी।

‘दुनियाकी सारी बातोंको भड़कीले रंगोंसे रंगे बिना तुम लेखकोंको क्या चैन ही नहीं पड़ती, दोस्त ?’ - उसने पूछा।

इस प्रश्नका मैं उत्तर दूँ इससे पहले ही वह बोला, — ‘मेलसे लौटना है मुझे।’

‘मैं तुम्हें हरगिज़ नहीं जाने दूँगा ! कितने वरसोंके बाद आज हम मिल रहे हैं —’

‘पर वहाँ मेरे पेशेंट तड़पते रहेंगे न ?’

‘जैसे उस शहरमें तुम्हारे सिवाय दूसरे डॉक्टर ही नहीं हैं ?’

उसने गर्दन हिलाकर ‘ना’ कहा। फिर तुरंत ही शायद यह सोचकर कि ऐमे मूक उत्तरसे मुझे संतोष न होगा, उसने कहा, — ‘जहाँसे रेलकी सड़क साठ मील और मोटरकी सड़क सात मील दूर है वहाँ मैं पिछले दो सालोंसे —’

‘तुम चाहे उत्तर धुवपर रहते हो, फिर भी मैं तुम्हें मेलसे न जाने दूँगा। मेरे घर रूखी-सूखी ग्याओ, दो घंटे गर्वें हाँको और फिर दसकी गाड़ीसे आनंदसे चले जाओ !’

‘अरे पर —’

‘मैं पर-वर कुल नहीं सुनूँगा। कॉलेज छोड़नेके बादसे तुम्हारे दर्शन होनेको पचीस साल लगे। इसी हिसाबसे यदि देखे तो हमारी आगामी भेंट सन् १९६६ ईसवीमें होगी ! तब मैं जीवित रहूँगा या —’

रामभाऊकी आँखोंके सामने कॉलेजका हम दोनोंका सहजीवन खड़ा हो गया होगा।

वह हँसते हँसते मेरे साथ चलने लगा।

• • •

रामभाऊको अटारीपर भेजकर मैं घरमें मस्त चायका ऑर्डर देने गया। यूँ देखा जाय तो इस समय सात बज रहे थे। घंटे डेढ़ घंटेके बाद खानेपर बैठना था। लेकिन मज़ाक और चाय—इन दो चीज़ोंके बारेमें समय कोई भी नहीं देखता। यह हुई एक बात, और दूसरी—

रामभाऊ कॉलेजमें कितना चहावाज़ था यह मैं अभीतक नहीं भूला था। उस समय शहरमें ‘गोल्डन टी’ नामकी एक दूकान खुली थी। उस दूकानकी चाय पीनेके लिये हम दोनोंने सुबह-शाम कई महीने दो-दो मीलके चक्कर काटे थे!

मैं चाय लेकर ऊपर गया। तब रामभाऊ मेरे कमरेमें लगे फोटो देख रहा था। मेरी आइट पाते ही उसने मुड़कर देखा और तुरंत ही वह हँसता हुआ बोला,— ‘मैं चाय नहीं पीता!’

कॉलेजमें सूट-बूटमें रहनेवाला रामभाऊ आजके मामूली वेशमें— उस समय दिनमें छः-सात बार चाय पीनेवाले रामभाऊके ‘मैं चाय नहीं पीता’ ये शब्द—

मुझे यह विश्वास हो गया कि रामभाऊके जीवनमें कोई विलक्षण क्रांति हो गयी है। चायके प्यालोंको खिड़कीमें रखकर मसनदके पास इतमीनानसे बैठते हुए मैंने कहा,— ‘बहुत बदल गये हो यार तुम, रामभाऊ!’

‘और तुम क्या कम बदले हो? तुम्हारी वह ‘किलोस्कर’मेंकी कहानी पढ़कर इतनी हँसी आयी थी कि कुछ न पूछो। कहते थे विवाह नहीं करूँगा और इस लिये कविताएँ भी उस समय तुम ‘कुमार’ उपनामसे लिखा करते थे; और अब ऐसी भयंकर कहानियाँ लिखकर—’

‘भयंकर?’— मैंने साश्चर्य प्रश्न किया।

‘भयंकर नहीं तो क्या? तुमने जो कहानी लिखी है क्या वह मनुष्यकी कहानी है? किसी पशुको देख लिया और स्त्रीपर किये गये उसके अत्याचारोंका वर्णन बिलकुल रंगमें आकर—’

मेरा विश्वास हो गया कि रामभाऊने गांधीजीके आश्रममें काफ़ी साल बिताये होंगे। मैंने बीचहीमें कहा,— ‘तुम पत्नीकी मनौती चुकाने आये हो, इसलिये

ठीक है। वरना मुझे लगता, कि गांधीजीका एक ब्रह्मचारी शिष्य ही मुझसे बातें कर रहा है !’

‘देखो, तुम चाहो तो मुझे मूर्ख कह दो, पर गांधीजीका शिष्य न कहो !’

मैं और भी अधिक असंमजसमें पड़ गया। यह माननेवाला मनुष्य कि पुरुषकी अतिरिक्त वासनाका चित्रण असंभाव्य और अपवादात्मक है, मेरी दृष्टिसे अंध पवित्रताका समर्थन करनेवाले पंथका ही होना चाहिए। परंतु गमभाऊ तो गांधीजीके विषयमें —

मैंने उसमें पृच्छा, — ‘लगता है तुम्हें गांधीजीके प्रति बिल्कुल आदर नहीं है !’

वह हँसकर बोला, — ‘तुम गलती कर रहे हो। गांधीजीके प्रति मुझे महान् आदर है। परंतु उनके विषयमें यदि कहो कि प्रेम हो तो ... अँ हँ !’

मेरी मुद्रापर अंकित आश्चर्यका भाव शायद उसके ध्यानमें आ गया था। वह तुरंत ही कहने लगा, — ‘देखो, कोई भी डॉक्टर गांधीजीके बारेमें अपने हृदयमें प्रेम नहीं रख सकता। यह संभव ही नहीं है। मनुष्य प्राणी सर्व दृष्टिसे कितना दुर्बल है इसका अनुभव डॉक्टरके सिवाय और किसीको भी नहीं होता। लेकिन गांधीजीके हिसाबमें साधारण दुर्बल मनुष्य आता ही नहीं है।’ पकड़ो सुदामा और बनाओ गामा’ — कुछ इस तरह है, उनका तत्त्वज्ञान ...’

उसकी यह नयी कढ़ावत सुनकर मुझे हँसी आये बगैर न रही। मेरे साथ वह भी हँसने लगा।

हँसते हँसते मेरे मनमें आया — गमभाऊ मनुष्यकी दुर्बलताको मान्य करता है; फिर मेरी कहानीकी नायिका कुसुमके पतिका वह चित्र उस झूठ क्यों लगाना चाहिए ?

मैंने झटसे कहा, — ‘गमभाऊ, साधारण मनुष्य कमजोर होता है, यह तो तुम मानते हो न ? फिर मेरी कहानीमें दूसरी कौनसी बात है ? एक पति शरीर-सुखका गुलाम हो जाता है। उसकी अभागिनी पत्नी उस गुलामीका शिकार हो जाती है —’

‘यहीं तुम गलती कर रहे हो ! जब रेलगाड़ीमें मैंने यह कहानी पढ़ी, तब मुझे लगा कि अभीतक तुम अविवाहित ही रहे हो। उस विकृतिके परिणाम तुम्हारे मनपर हुए हैं, और इसलिये तुम इस तरहकी कहानियाँ — तुम्हारे

कमरेमें कदम रखते ही तुम्हारी पत्नी और बच्चोंके फोटो देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई !’

मुझे भय लगने लगा कि गाडी अब किसी दूसरी पॉतपर ही चल देगी। इसलिये मैंने बीचहीमें कहा, — ‘ मेरी कहानीमें गलती कहाँ है यह बताओ न ? ’

वह बोला, — ‘ किसी खास स्थानपर अँगुली रखकर वह नहीं बतायी जा सकती। परंतु अपना ही सुनाता हूँ तुम्हें जिससे — — ’

वह एकदम स्तब्ध हो गया। तुरंत ही उसने अपने जेबमें हाथ डालकर सोनचंपाके दो-चार फूल बाहर निकाले। उनमेंके एक-दो मुझे दिये और अपने हाथमें रखे फूलोंकी सुगंध लेता हुआ वह बोला, — ‘ तुम दत्तक होकर कौकण चल दिये थे न ? उसके बाद शीघ्र ही मैं बंबईके मेडिकल कॉलेजमें भरती हुआ। मेरे ग्रह अच्छे थे, यह कहो, अथवा मैंने मन लगाकर अध्ययन किया, यहा कहो, पर एक भी साल न खोकर मैं डॉक्टर हो गया। भुसावलमें मेरे पिताजी थे ही। मैंने वहीं प्रैक्टिस शुरू कर दी। उस समयका मेरा फोटो देखकर तुम चकित हो जाओगे ! ऐसा लगता हूँ उसमें जैसे विलायतसे एफ. आर. सी. एस. होकर ही सीधा चला आ रहा हूँ ... ’

स्वयं अपनी पोशाककी तरफ़ देखकर उसने एक कहकहा लगाया। मैंने सिर्फ़ स्मित किया। उसमें जो बदल हो गया था, वह मुझे भी दीग्व रहा था। परंतु उसका कारण मालूम हो इसीके लिये तो मैं अधीर हो रहा था। भूखा मनुष्य खानेके लिये पीढ़ेपर आकर बैठ जावे, और परमनेवाला पहले आगममें नमक और चटनी परोसना आरंभ करे, तो परसोइयापर उमे जिस तरह गुस्सा आ जाता है, उस तरह मुझे भी उसके उस शान्तिपूर्वक आरंभका —

वह आगे कहने लगा था, — ‘ डॉक्टर होतेतक प्रेमकी कविताओं और कहानियोंको पढ़कर ही मेरे तरुण मनकी भूख शान्त हो जाती थी। परंतु प्रैक्टिस शुरू करनेके बाद मुझे एक प्रकारकी बेचैनी महसूस होने लगी। टवाखानेमें तो समय चटसे निकल जाता था; परंतु अन्य समय जरूर मन स्त्री-प्रेमका ही अधिक विचार किया करता था। किसी सुंदर तरुणीपर नज़र पड़ जाती तो उसकी मूर्तिको भूलना मेरे लिये कठिन होने लगा। प्रेमकी जो कविताएँ और कहानियाँ पहले मुझे अत्यंत रस-भीनी लगा करतीं, उन्हें जब पढ़ने लगता तो अब आँखें आप ही आप लग जाने लगीं। उन बंद आँखोंके सामने दीखनेवाले स्वप्न-प्रत्येक

स्वप्नमें नयी नयी तरुणी मुझे दिखा करती। विदेशी फिल्मोंकी सुंदर अभिनेत्रियोंके फोटो इकट्ठा करनेका शौक भी मुझे लग गया; और यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि उस समय एक-दो अभिनेत्रियोंके फोटोंको एकान्तमें मैंने चूमा भी था।’

वह ज़ोरसे हँसा। वह हास्य जैसे यही कह रहा था कि, ‘जो किसीसे कभी भी पागल नहीं होता, वह मनुष्य ही नहीं है’!

मैं आगे सुनने लगा।

‘मेरे पिताजी मेरे अनुरूप एक लड़कीकी खोजमें थे। यह तो अच्छा हुआ कि वह जल्द मिल गयी, वरना उस उन्मादक मनःस्थितिमें किसी व्यसनी मित्रकी संगतिमें पड़कर वेश्याके घरकी सीढ़ी भी चढ़ जाता! तारुण्यका उन्माद मदिराका पहला प्याला है —’

‘और जो पहला एक ही प्याला पीता है, उसे आखिरका एक ही प्याला भी लेना पड़ता है!’—मुझसे रहा नहीं जाता था, इसलिये मैं कह गया।

‘मैं जानता हूँ कि गडकरी’के तुम कितने भक्त हो। लेकिन उनका सिद्धान्त शराबके बारेमें थोड़ा-बहुत सच हो सकता है; किंतु स्त्री-प्रेमके बारेमें —’

‘इस विषयमें भी वह सच ही है। मदिरा और मदिराक्षीकी तुलना प्राचीन कालसे सारे कवि करते आये हैं!’—रामभाऊको मात देनेके लिये मैंने कहा।

वह एकदम बोला,—‘वे सब कवि बेवकूफ हैं! इसमें संदेह नहीं कि पहली मुलाकातमें स्त्री मदिराक्षी लगती है; परंतु जब दो मन एक हो जाते हैं—स्त्रीकी निरपेक्ष प्रीतिकी ज्योतिसे जीवनका अँधेरा प्रकाशित होने लगता है —’

मुझसे हँसी न रोकी जाती थी! गिन गिनकर सारे कवियोंको मूर्ख कहनेवाला रामभाऊ स्वयं ही काव्य करने लगा था!

परंतु मेरे हँसनेकी ओर उसका ध्यान ही न था। किसी अद्भुतरम्य चीजको देखनेवाले मनुष्यकी तरह उसकी दृष्टि दीप्त रही थी। वह बोला,—‘सहवाससे मदिराक्षीकी हरिणाक्षी हो जाती है!’

१ राम गणेश गडकरी : मराठी भाषाके प्रसिद्ध साहित्यिक—कवि, नाटककार और विनोदी लेखक। आपका ‘एकच प्याला’ (एक ही प्याला) नाटक जो शराबके दुष्परिणामोंपर लिखा गया है एक अत्यंत श्रेष्ठ रचना मानी जाती है।

मैं और भी अधिक उलझनमें पड़ गया और हँसते हँसते बोला, — ‘हम कहानी लिखनेवाले लोग भी पाठकोंको जितना नहीं झुलाते, उतना तुम —’

‘अब सब कुछ जल्दी जल्दी कह डालता हूँ ! विवाह होनेके बाद, कई दिनों-तक हम दोनों एक स्वप्नसृष्टिमें घूम रहे थे। वहाँ फूल थे, चाँदनी थी। जैसे संसारकी सारी रमणीयता उस स्वप्न-सृष्टिमें अवतीर्ण हो गयी थी। उन पहले तीन-चार वर्षोंमें पत्नीके चार दिनका विरह मुझे चार सालकी तरह लगता ! एक चार मायकेमें वह अधिक दिन रह गयी। मैं एक रात गाड़ीसे वहाँ गया। स्टेशनसे उसका गाँव चार मील दूर था। घने जंगलसे होता हुआ घने अँधेरेमें आधी रातको मैं चार मील पैदल चला गया !’

‘लगता है तुम्हारे शरीरमें तुलसीदासका संचार हो गया था उस दिन !’ — मैंने मज़ाकमें पूछा।

रामभाऊ गंभीरतापूर्वक बोला, — ‘हर एक मनुष्य तुलसीदास ही होता है। वह आरंभमें शरीर-सुखका गुलाम होता है, पर जब वक्त आता है तो उच्च कोटीका भक्त भी हो जाता है !’

उसके वाक्य मुझे बिल्कुल निरर्थक न लगें। परंतु —

मैंने कहा, — ‘तुम्हारी आसक्तिका पता तो चल गया। अब ज़ग भक्तिका हाल भी सुने !’

वह कहने लगा, — ‘मुझे हमेशा लगा करता कि सूट-बूटकी पोशाक, चाय और कुंदाके सहवासमें मिलनेवाला शरीर-सुख — इन तीन चीज़ोंके बिना मैं कभी भी सुखी न होऊँगा। परंतु — तपेदिकसे बीमार पड़ी हुई अपनी बहनकी सेवा-शुश्रूषा-के लिये गयी कुंदा वह प्रसाद अपने साथ ले आयी ! एक तो पहलेसे ही उसका स्वास्थ्य साधारण था — कुछ सुकुमारसी थी वह। ऊपरसे यह भयंकर रोग अपने साथ ले आयी। हमेशाकी दवाओंसे उसे कोई आराम होनेके आसार नज़र नहीं आ रहे थे; तब मैंने एक अलग ही उपाय कर देखनेका निश्चय आया। मैं कुंदाको टेकड़ीपर ले गया और वहाँ गड़रियोंकी बस्तीमें उसे रख दिया। स्वास्थ्य-विज्ञानकी दृष्टिसे बकरी कितनी उपयोगी है, यह अभी-तक हम लोगोंको —’

‘खैर, बकरीकी उपयोगिताको छोड़ो —’ — उसुकतामें उफान आ जानेके कारण मैंने बीचहीमें उसे रोका।

रामभाऊ कहने लगा, — ‘कुंदाको पूर्ण रूपसे अच्छा होनेके लिये दो-तीन साल लग गये । परंतु इस अवधिमें उसका ही नहीं, बल्कि मेरा भी पुनर्जन्म हुआ !’

‘यानी ? क्या, तुम भी बीमार —’ —मैंने अटकते अटकते दो-तीन शब्द कहे ।

‘मेरी बीमारी मानसिक थी ।’ — वह हँसते हँसते बोला, ‘उस समयतक जीवनकी ओर देखनेकी मेरी दृष्टि उपभोगकी थी । परंतु कुन्दाकी परिचर्याके लिये मैं उस जंगली गाँवमें रहा और वहाँ रहते हुए मैंने जो दुनिया देखी — उस दुनियामें एक भी बैंगला न था, सिर्फ झोपड़ियाँ । पुरुष सिर्फ लंगोटीमें अपनी लज्जाकी रक्षा करते थे । पेटके लिये दो कौर भोजन मिलनेकी जहाँ मुश्किल थी, वहाँ चार-चार पाँच-पाँच बार चाय कौन पियेगा ? मनुष्य जैसे मनुष्यका यह जीवन-क्रम खुली आँखोंमें देखते देखते मेरी दृष्टि ही बदल गयी । कुंदाके स्वास्थ्य होतेतक मुझे उस जंगली भागमें रहना ही था । मुझे उन लोगोंकी दया आयी । बैठे बैठे मेरा वक्ता भी नहीं कटता था । इसलिये समय काटनेकी गरज़से मैं आसपासके गाँवमें जाकर गेणियोंका मुफ्त इलाज करने लगा । और बात-की-बातमें मेरी दयाका कर्तव्यमें रूपान्तर कर दो गया इसका स्वयं मुझे भी कोई पता न चला । कोई नदी जाकर समुद्रमें मिल जावे, उस तरह मेरा जीवन उन जंगली और दरिद्री लोगोंमें एकरस हो गया । मैंने अपने आपको उनकी सेवामें समर्पित कर दिया । शीघ्र ही मेरी पोशाक बदल गयी, मेरी चाय छूट गयी । और... जिस शरीरसुखके बिना चार दिन भी काटना मुझे कठिन लगता था, वह मुझे प्राप्त हो इसलिये मैंने तीन सालमें बीमार कुंदाको एक बार भी त्राम न दिया !’

‘सच ?’ — मैंने आश्चर्यसे प्रश्न किया ।

रामभाऊने हँसकर कहा, — ‘मैं जानता हूँ कि बहुतांको इस बातपर विश्वास न होगा । परंतु अपने अनुभवमें कहता हूँ — मनुष्यके मनको चुनौती देनेवाला, उसकी सारी शक्तियोंको काममें लगा देनेवाला कोई भव्य और श्रेष्ठ काम यदि मनुष्यके सामने आकर खड़ा हो जावे, तो वह मनुष्य अपने शरीरसुखको भी भूल जाता है । माँ पहले अपने बच्चोंको भोजन कराती है और फिर बच्चा-बच्चा भोजन खाकर उसीमें आनंद मानती है । मनुष्यका मन भी यह चमत्कार करके दिखा सकता है । परंतु उसे भक्तिका अधिष्ठान चाहिए !’

मैंने उसकी ओर टकटकी लगाकर देखा । उसकी दृष्टिमें मूर्तिमान सत्य दीख रहा था ।

मैंने कहा, — ‘ जरा साफ़ साफ़ पूछ रहा हूँ । माफ़ करना । नाराज न होना ! तुम कुंदासे तीन साल दूर रहे । इन तीन वर्षोंमें तुम्हें शरीरसुखकी याद — ’

‘ कई बार आयी । ’— मेरा वाक्य उसीने पूरा किया । तुरंत ही वह दिल खोलकर हँसा और बोला, ‘ सुखकी याद आना—उसे प्राप्त करनेकी इच्छा होना, शरीरका धर्म है । परंतु जब आवश्यकता हो तब उसे त्याग देना मनका धर्म है । यह धर्म मुझे किसने सिखाया, ब्रताऊँ ? उस जँगली भूभागके हज़ारों जीवोंने और—’

रामभाऊ और भी कोई विलक्षण बात फिरसे कहता है क्या, इस मुद्रासे मैं उसकी ओर देखने लगा ।

जेबसे दस-बीस सोनचंपाके फूल निकालकर उन्हें मुझे दिखाता हुआ वह बोला, — ‘ इन फूलोंने ! इनकी सुगंध हम दूरसे भी ले सकते हैं । पत्नीका प्रेम भी इसी तरह —’

वायुके झोंकेके साथ उसके हाथमें रखे फूलोंकी जो सुगंध आयी, उसने मेरा मन क्षणार्धमें प्रसन्न कर दिया ।



४

हरा चंपा

दसकी गाड़ीसे जानेवाले रामभाऊको विदा देतेतक - बल्कि स्टेशनके मंद प्रकाशमें उसकी आकृति बिलकुल अस्पष्ट होतेतक - मेरा मन आनंदकी लहरोपर तैर रहा था। पानीके प्रवाहके साथ तैरते जा रहे मनुष्यको पानीकी छोटी छोटी लहरोंके मृदु स्पर्शसे जिस तरह गुदगुदी होती है, उस तरह रामभाऊके जीवनके विविध अनुभवोंसे मुझे अपूर्व हर्ष हुआ था। एक पुराना मित्र बहुत दिनोंके बाद मुझे मिला, इसके कारण मेरा मन प्रफुल्लित हो गया था, यह तो सच है ही; परंतु उसपर पूर्णरूपसे बहार आ जानेका कारण दूसरा ही था।

हर एक मनुष्यको अपनी पसंदकी कुछ निजी कल्पनाएँ हुआ करती हैं। कंजूस आदमी अपने धनको बार बार गिनकर देखता है न? अपनी प्रिय कल्पनाओंको पड़तालकर देखनेमें मनुष्यको भी उसी प्रकारका आनंद होता है। रामभाऊका जीवन इसी दृष्टिसे मुझे अत्यंत आकर्षक लगा। बाहरसे पथरीले दीखनेवाले भू-भागमें, बहुत गहरायीपर ही क्यों न हो, जिस तरह पानीका सोता बहता रहता है, उसी तरह व्यवहारी अथवा विलासी मनुष्यके हृदयमें भी मानवताका ज्ञान कहीं छिपा रहता है। - यह मेरी बचपनसे ही प्रिय कल्पना रही है। शहरमें अच्छी चल रही प्रैक्टिसको छोड़कर गाँवोंमें आनंदसे सेवा करनेवाला रामभाऊ, इस

बातको सिद्ध कर देनेवाला गवाह ही था कि, मेरी यह कल्पना कोरी कविकल्पना नहीं है। मेरी दूसरी प्रिय कल्पना तो बहुतांकी जेचती ही न थी। जब मैं यह कहने लगता हूँ कि पति-पत्नीके प्रेमका आरंभ शारीरिक आकर्षणमें भले ही हो, परंतु आगे चलकर उसका रूपान्तर मानसिक आकर्षणमें होता है — इस मानसिक आकर्षणके कारण उनकी अनुरक्ति भक्तिमें बदल जाती है — मौकेपर शरीर-सुख न भी मिला, फिर भी इस एक-निष्ठ भक्तिमें कोई फर्क नहीं आता — मैं इस तरह कुछ कहता हूँ तब मेरे कितने ही मित्र मन-ही-मन मेरा हँसी उड़ाते हैं। उन्हें लगता है, कि जिम तरह कोई कोई लोगोंको डाकके टिकट इकट्ठा करनेका शौक होता है, उस तरह उदात्त कल्पनाओंका संग्रह करनेकी धुन मुझपर सवार हो गयी है ! ऐसे आलोचकोंके मुँह बंद करने लायक सबूत रामभाऊने आज मुझे दिखाया था। शरीर-सुखके मोहका शिकार होकर अपनी रुग्ण पत्नीको उसने तीन सालमें एक बार भी कष्ट न दिया था।

स्टेशनसे लौटते समय रामभाऊका वह अधूरा पर अर्थपूर्ण वाक्य लगातार मेरे कानोंमें गूँज रहा था — ‘ सोनचंपेकी सुगंध हम दूसे भी ले सकते हैं। पत्नीका प्रेम भी उसी तरह — ’

घर आनेपर कौट उतारते हुए शामको रामभाऊके द्वारा दिये गये सोन चंपाके फूलोंकी ओर मेरा ध्यान गया। भवभूतिके इस वाक्यमें कि — ‘ फूल सिरपर धारण करनेके लिये होते हैं; पैरोंतले रोंदनेके लिये नहीं ! ’ मुझे अलग ही अर्थ दिखाई देने लगा। उन फूलोंको मिरहाने रखकर मैं बिस्तरपर लेट गया।

साढ़े दस बज गये ! इसलिये मेरी यह कल्पना थी कि बिस्तरपर लेटते ही बात-की-बातमें मुझे नींद आ जायेगी। पर —

मैंने पलकें बंद कर ली, इस करवटसे उस करवटपर और उस करवटपरसे इस करवटपर मुड़ा। यह कल्पना कि मैं एक बागमें बैठकर सायंकालीन रम्य दृश्य देख रहा हूँ; परंतु आज नींदने मुझसे असहयोग कर लिया था !

मैंने आँखें खोलकर देखा। कोनेमें रखी घड़ीकी टिकटिक आवाज़ कितने स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ रही थी। मुझे ऐसा भ्रम हुआ जैसे समयकी मिलमें बिलकुल मुख्य यंत्रके समीप मैं खड़ा हो गया हूँ।

मेरे मनके भीतरकी टिकटिक मुझे सुनाई पड़ने लगी। वहाँ एक विचार-चक्र लगातार घूम रहा था — दो काँटे अखंड रूपसे आगे सरक रहे थे। उसमेंका

तर्कका काँटा मंद गतिमें चल रहा था। परंतु भावनाका ज़रूर जोरसे दौड़ रहा था। मुझे आश्चर्य हुआ — मेरा मन अभी भी रामभाऊकी बातोंके आसपास ही भ्रमण कर रहा था। वाढ़ उतर जानेके बाद नदीके पत्थर दीखने लगते हैं न? उसी तरह रामभाऊके द्वारा कहे गये आत्मचरित्रके विषयकी झाँकिएँ अब मुझे स्पष्ट दिखाई देने लगी।

एक मन कहता — रामभाऊने जो कहा है, क्या, वह सच सच होगा? छि! वह संभव नहीं मान्य होता। काली औरत जब बाहर निकलती है, तब चंदरेपर पाउडर लगाकर निकलती और लोगोंमें यह भ्रम पैदा कर देती है कि वह गोरी है। मनुष्य भी अपने हृदयको ग्योल्कर दिखाते समय यही सावधानीमें व्रतता है। इस विषयमें रामभाऊकी पत्नीकी गवाह ही अधिक महत्वकी है। परंतु उससे मेरी भेंट कैसे होगी? और संयोगवश कभी किसी समय मेरी और उसकी भेंट हो ही गयी, फिर भी ऐसे नाजुक विषयमें उसमें मुझे क्या पता चलेगा? ऐसा रहस्य प्रयागकी सरस्वती ही है! दूसरा मन कहता — इस विषयमें कुंदाकी गवाहीकी ज़रूरत ही क्या है? रामभाऊके नज़रोंमें मूर्तिमान सत्य चमक रहा था — उसका प्रत्येक शब्द शुद्ध सुवर्णकी तरह था। उसमें कहीं भी कोई भिलावट न थी। यह झूठ नहीं कि अपने अंतरंगको छिपानेकी ओर मनुष्यका रुख रहता है, परंतु रामभाऊ इस नियमका अपवाद है। बिल्कुल छोटे बच्चेकी तरह है वह। और मुझमें झूठ बोलकर उसे ऐसा कानसा लाभ होनेवाला था?

दो मनोकी इस बहसमें मूल प्रश्नका हल होना तो दरकिनार रहा, उलटे मैं और भी असमंजसमें पड़ गया। मुझे क्षण-भर ऐसा लगा कि 'हरसिगारके फूल' शीर्षक पहली कहानी लिखनेका मुझे कहाँसे अक्ल सूझी।

लेकिन मेरे द्वारा लिखी यह कहानी कोई कपोल कल्पित थोड़े ही थी! शरीर-सुखके विषयमें पतिके अत्याचारमें ऊब गयी हुई एक अभागिनी तरुणीको देखकर ही तो —

उसका वह पशुकी तरह वर्ताव करनेवाला पति, 'मेरी शरीर-सुखकी माँग विमलको इतनी विलक्षण क्यों लगनी चाहिये?' — यह प्रश्न पूछनेवाला वह पुलिस इन्स्पेक्टर, और 'वह प्राप्त हो इसलिये मैंने तीन सालमें रुग्ण कुन्दाको एक बार भी त्रास नहीं दिया' — ऐसे कहनेवाला रामभाऊ, — इनमें सच कौन है? या कि तीनों सच हैं?

सहजभावसे बातें करते करते दूसरेकी अँगूठी लेकर हम अपनी अँगुलीमें पहन ले और फिर उसे उतारते समय वह पोरपर ही अटक जावे—स्त्री-पुरुषोंके प्रेमसंबंधका यह विचित्र प्रश्न हल करते समय मेरी ठीक उसी तरहकी स्थिति हो गयी। एक बार उस पुलिस इन्स्पेक्टरका पक्ष समर्थनीय मालूम होता। दूसरी बार मनमें आता—जबतक उसकी स्त्रीका आत्म-चरित्र पढ़नेको न मिले तबतक यह कहना कि इन्स्पेक्टरका कहना ठीक है, गलत होगा। तुरंत ही दिमागसे एक कल्पना आती—रामभाऊकी तरह यदि वह भी थोड़े संयमसे काम लेता, तो अच्छा न होता क्या? दूसरे ही क्षण कोई आकर कानमें गुनगुनाता—संयम मनका धर्म है। शरीरका धर्म सब मनुष्योंमें समान भले ही हो, पर मनका धर्म? मनका धर्म अखरोटके पेड़की तरह है—मामूली फलने फूलनेवाली लता नहीं। अखरोटको कभी जल्दी फल नहीं लगते।

कोई नटखट लड़का खूब ऊधम करके अंतमें सो जाता है, उस तरह मेरा मन भी अंतमें निद्रावश हो गया।

मुझे नींद लगी सही, परंतु वह शान्तिकी न थी। एकके बाद एक भयंकर स्वप्न मैं देख रहा था।

पहले स्वप्नमें मुझे दो नदियोंका संगम दिखाई दिया। उसमेंका एक नदीकी लहरोसे एक ही चिल्लाहट कानोंमें पड़ रही थी—‘कोई आकर मुझे छुड़ाओ। मुझे बचाओ! यह दूसरी नदी मेरा गला दबोच रही है!’

दूसरे स्वप्नमें वृक्षसे लिपटी हुई एक लता दिखाई दी। लता बड़ी नाजुक थी। एकदम जोरका तूफान आया। तूफानके आते ही वह लता थरथर कॉपने लगी। मुझे ऐसा लगा कि वह उखड़कर नीचे गिर पड़ेगी। पर न जाने क्या चमत्कार हो गया! उस वृक्षकी एक शाखा कड़ाकसे टूटकर नीचे गिर पड़ी। लेकिन वह लता ज़रूर ज्योंकी त्यों सुरक्षित रही।

• • •

स्वप्नोंकी तुलना वाचकोसे की जाय अथवा पुलिसके गुप्तचरोंसे की जाय, यह मतभेदका मुद्दा हो सकता है, परंतु जब वे किसीका पीछा करने लगते हैं, तो उसकी नाकमें दम कर देते हैं, इस विषयमें किसीके दो मत न होंगे।

अनेक चित्रविचित्र स्वप्न बिलकुल सुबह तक मेरे पीछे पड़े रहे।

मेरी नींद पूरी नहीं हुई थी। आँखोंपर भी सुस्ती छायी हुई थी। परंतु मैंने सोचा कि फिरसे सोनेके बजाय कहीं बाहर घूम आऊँ, तो ज़रा अच्छा लगेगा।

चाय लेकर मैं घरसे बाहर निकल पड़ा और जल्दी जल्दी चलने लगा। एक बार मनमें आया कि रंकालाकी ओर जाऊँ। परंतु रंकालाके साथ ही रामभाऊकी याद हो आयी। वह न छूटनेवाली पहेली —

मेरे पैर विरुद्ध दिशाकी तरफ़ मुड़ गये। गजगमपुर्गकी सड़कसे जाते हुए मुझे काफ़ी ताज़गी मालूम होने लगी। परंतु सड़कके दोनों किनारोंके बरगदके पेड़ोंको देखते देखते मेरे मनमें एक विचित्र कल्पना आयी। मनुष्यका मन भी इसी तरह होता है। बड़की अनंत जटाएँ और मनुष्यके मनके अगणित विचार-विकार...

मैंने सामने देखा। सूर्यका स्वागत करनेके लिये पूर्व दिशा अपने प्रांगणमें चौक पूर रही थी।

क्षण-क्षणमें बदल रहे विविध रंगोंकी छटा देखते देखते मैं पानीके खज़ानेकी टेकड़ीपर कब आ पहुँचा इसका मुझे पता तक न चला। पूर्वकी ओर मुँह कर मैं एक बेंचपर बैठ गया। पूर्वकी ओरकी रगछटाओंमें मेरा मन रग गया और मंद मंद वायुल्हरियोंपर तैरने लगा। मेरे मनमें यह विचार आ गया कि प्रातः-कालके समय मनुष्यका वचन लौट आता है। इसी समय किसीके ‘नमस्ते खाडेकरजी!’ शब्दोंसे मेरी क्षणिक बाल्यावस्था भंग हो गयी।

मैंने पीछे मुड़कर देखा। गोपालराव मराठे और पीछे तीस-बत्तीस वर्षकी एक स्त्री। मैंने गोपालरावसे नमस्ते करते हुए कहा, — ‘यह तो बड़े तअज्जुबकी बात है, भई!’

‘कैसा तअज्जुब?’

‘आप सुबह घूमने निकलते हैं! रातको थिएटरमें बारह-एक बजेतक जागना और —’

‘आपकी ग़लत-फहमी हो रही है थोड़ी! मैं आज ही पहली बार घूमने आया हूँ!’

इस तरफ़ घूमने आनेका व्यापक रोग आज ही शहरमें शुरू हो गया है क्या, यह मेरी समझमें न आता था!

गोपालराव पीछे मुड़कर देखते हुए बोले, — ‘यह मेरी बहन है। कल रात ही को आयी है। इसे है सुबह घूमनेकी आदत। इसलिये इसके साथ चला आया।

गोपालरावकी बहनने मुझे नमस्ते किया।

मैंने भी उसको प्रति-नमस्ते किया।

‘आपसे मिलनेकी बड़ी इच्छा है इसे।’ — गोपालराव बोले।

‘कुछ समयके पहले ही एक पत्र भेजा था मैंने आपको।’ — बहनने कहा।

‘किस विषयमें?’ — मैंने पूछा।

‘आपकी ‘हरसिगारके फूल’ शीर्षक मुझे बहुत पसंद आयी, यह लिखकर भेजा था मैंने। पत्रके नीचे मैंने ‘एक भगिनी’ लिखकर दस्तखत किये थे।’

कल मुझे एक पत्र मिला था जिसपर डाकखानेकी छाप सिर्फ NA... तक दीख रही थी। उस पत्रमें नीचे दस्तखतकी जगह ‘एक भगिनी’ लिखा हुआ था। उस भगिनीने अपने पत्रमें यह भी लिखा था कि — ‘यदि आपको पढ़नेका समय हो, तो मैं आपके पास अपनी डायरियां भेज दूंगी।’

शरीरको गुप्त धन मिल जावे, ऐसा मुझे लगा। मुझे विश्वास हो गया कि पत्रके NA ... अक्षर नासिककी ही छाप होनी चाहिए। गोपालरावकी बहन उस पुलिस इन्स्पेक्टरकी पत्नी विमल होनी चाहिए, इस विषयमें मुझे ज़रा भी शक न रहा। मेरे मनमें यह कल्पना आ गयी कि यह देखकर कि पति दूसरी पत्नीकी खोजमें इस तरफ़ आया है, विमलने उसका पीछा करना शुरू कर दिया होगा और इसलिये मैं थोड़ा हँसा भी। मेरी हँसी गोपालरावके ध्यानमें आ गयी होगी। वे चकराई हुई दृष्टिसे मेरी ओर देखने लगे।

मैंने उनकी बहनकी ओर देखते हुए कहा, — ‘कल इनके पतिदेव मेरे पास आ चुके हैं।’

पैरोंतलेकी ज़मीन खिसक जावे, उस तरह कुछ उस स्त्रीको लगा होगा। विचित्र दृष्टिसे वह मेरी ओर देखने लगी।

गोपालरावकी मुद्रापर तो आश्चर्यका सागर ही फैला हुआ था। वे बोले, — ‘मतलब?’

‘मतलब यही कि नासिकके पुलिस इन्स्पेक्टर साहब कल मेरे घर आये थे और वे मुझे सब हाल सुना चुके हैं।’

गोपालराव शान्तिपूर्वक बोले,— ‘मेरे बहनोई अभिनेता हैं: पुलिस इन्स्पेक्टर नहीं !’

ठड्मे नारियलका तेल जमकर उसके टुकड़े हो जावे, उस तरह मेरे मनकी स्थिति हो गयी। मैं गोपालरावकी बहनकी ओर देखकर बोला,— ‘कलक आपके पत्रपर डाकखानेकी NA .. छाप थी और वे इन्स्पेक्टर साहब भी नासिकके ही थे। इसलिये मुझे लगा —’

वह बीचहीमें बोली,— ‘वह पत्र मैंने नागपुरमें भेजा था।’

पर फिमल जानेपर जैसे तैमरे मतुलन सम्हालनेकी कोशिश करें और उस गडबडीमें किसीका धक्का लगकर एकदम जमीन चूम ले — ठीक वही हो गया यह।

मैं मनमें शरमा गया। परन्तु साथ ही मनमें यह इच्छा भी पैदा हुई कि गोपालरावकी बहनकी डायरिया पढ़नेकी मिल जायें तो बड़ा अच्छा हो। इसलिये जब गोपालरावने मुझसे कहा कि ‘चलिये, अब हमारे घर चाय लेकर ही जाइए’, तब मैंने उनके निमंत्रणको एक प्याससे बिल्कुल व्याकुल हुए मनुष्यकी तरह तुरंत स्वीकार कर लिया।

• • •

रास्तोंसे चलते चलते गोपालरावने अपनी बहनका जो हाल कहा, उसके कारण तो मुझे ऐसा लगा कि उसके द्वारा लिखे आत्मचरित्रको मैं कब पढ़ता हूँ।

पतिसें झगड़कर वह नागपुरमें एकदम निकल आयी थी। यहाँ आते ही उसने मुझमें मिलनेकी इच्छा भी गोपालरावमें व्यक्त की थी। मैंने सुना कि उसने अपनी आत्म-कहानी भिन्न भिन्न नोट बुकोंमें लिखकर रखी है और उस सारे पोथे-को पढ़कर मैं कहीं ऊब न जाऊँ, इसलिये उसने उनमेंमें मुख्य मुख्य वाक्योंके नीचे लाल पेन्सिलसे निशान भी लगा दिये हैं। यह सुनकर तो मैं चकित हो गया !

गोपालरावके घर पहुँचते ही उन्होंने पॉच नोट-बुकों लाकर मेरे सामने रख दीं। हर एक नोट-बुकमें ऊपर तारीख लिखी थी और उसके नीचे मज़मून था। मैंने जल्दी जल्दी उनके पन्ने पलटकर देखा। कई बार क्रमसे एक-दो दिनका हाल लिखा था, तो किसी स्थानमें दो तारीखोंके बीच छः महीनेका अंतर था !

मैंने पहली नोट-बुक उठायी। उसमें लाल पेन्सिलसे चिन्हित बीचमें लिखा हुआ मज़मून पढ़ने लगा —

‘आज उनकी राह देखते देखते मैं बिलकुल रोनेको आ गयी। एक बज गया, फिर भी —

विवाह हुए अभी छः महीने भी नहीं हुए हैं। लेकिन —

बड़ी आशासे एक सुंदर साड़ी खरीदें और पहली ही धुलाईमें उसका रंग उड़ जावे ... ठीक उसी तरह हो गयी है मेरी गिरस्ती। विवाहके पहले मैं अपने मनमें कितने सपने संजो रही थी। और आज ? वे सारे टूट गये हैं !

यदि पत्नीसे प्रेम नहीं करना था, तो फिर उन्होंने विवाह ही क्यों किया ?

इनका स्वभाव कैसा गऊकी तरह गरीब है। थालीमें जो परोस दिया जाये, उसे चुपचाप खा लेते हैं और अपने कमरेमें जाकर बड़ी बड़ी धार्मिक पुस्तकें लेकर पढ़ने लगते हैं। महाशयजी किसीके न लेनेमें हैं और न देनेमें, और न किसीपर क्रोध करते हैं।

पहले पहल उनके इस भोलेपनपर मुझे बड़ा नाज़ रहा। मैंने उसकी सराहना की; लेकिन अब —

रातको जब उनके कमरेमें क़दम रखती हूँ, तो उनके आसपास घेरा डाले बैठी हुईं उन मोटी मोटी किताबोंपर मुझे बड़ा गुस्सा आता है ! लगता है, चार बड़े बड़े बोरे ले आऊँ—उनमें इन सारी किताबोंको भर दूँ और जाकर किसी रद्दीकी दूकानमें दे दूँ। छि ! यह हिकमत तो बिलकुल बेकार रहेगी। रद्दीकी दूकानसे सारी पुस्तकें वे फिर ले आयेंगे ! मेरे और उनके बीचमें आनेवाली इस रद्दीको तो चुल्हेकी हवाले करना चाहिए !

आजकल एक भी रात ऐसी नहीं जाती जब कि यह विचार मनमें न आता हो। बचपनमें मुझे पुस्तकोंसे बड़ा प्रेम था। परंतु मेरा स्थान छीन लेनेवाली उनके कमरेकी इन पुस्तकोंको देखती हूँ, तो मैं गुस्सेसे जलने लगती हूँ। कमरेमें आनेपर मैं जब पूछती हूँ कि ‘पैर दवा दूँ क्या ?’—तो वे हँसकर उत्तर देते हैं, ‘तुम्हारा पति कोई पहलवान नहीं है ! तत्त्वज्ञानका अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी है वह !’

मैं कुर्सीमें बैठी झपकियाँ लेती हूँ, तो वे मुझसे धीरेसे कहते हैं, — ‘मैं जो पुस्तक पढ़ रहा हूँ उसके खत्म होततक एक बज जायेगा। तबतक तुम क्या इस तरह जागती ही रहोगी ?’

उनकी यह पढ़नेकी धुन - यह धार्मिक बातोंका शौक - मुझे क्या लगता है, यह बात कभी उनके ध्यानमें ही नहीं आती !

और आजकल तो बारह-एक बजेतक वे घर ही नहीं लौटते। शहरमें किसी पंडितजीके प्रवचन शुरू हैं। महीना हो गया; पंडितजीके पीछे पागल हैं और उनका यह पागलपन अभीतक नहीं गया है !'

• • •

इतना मज़मून पढ़ते ही मैं असंमजसमें पड़ गया। कुछ समय पहले गोपालरावने कहा था कि उनका बहनोई अभिनेता है। मैं जो हाल पढ़ रहा था उसका और गोपालरावकी बातका कोई मेल नहीं मिल रहा था।

मैंने संशक दृष्टिसे गोपालरावकी ओर देखा।

वे हँसकर बोले, - 'अरे हाँ, आप पहली ही नोट-बुक पढ़ रहे हैं न? एक बात मैं आपसे कहने भूल ही गया था। हमारी बहनका यह पुनर्विवाह है।'

अब कहीं मुझे पढ़े हुए मज़मूनका मेल मिला। मैंने हाथमें रखी नोट-बुककी ओर अँगुली दिग्वाते हुए गोपालरावसे पूछा, - 'इन धार्मिक महाशयका आग क्या हुआ?'

'उनका यह धर्मका पागलपन बढ़ता ही गया। आगे इज़रत घर छोड़कर चल दिये। लेकिन ...'

गोपालरावने दूसरी नोट-बुक खोली और उसमेंका लाल पेन्सिलसे चिन्हित एक भाग मेरे सामने रख दिया।

मैं पढ़ने लगा —

'सासजीने बिस्तर पकड़ लिया है। उनके सारे प्राण इस लड़केपर हैं। ज़त्रसे वे परदेश चले गये हैं सासजीकी आँखोंके आँसू नहीं रुके। अन्तमें उनका पता लगा। हरिद्वार चल दिये थे वे। मैंने उन्हें पत्र भेजा, - 'कुछ भी करो और घर लौट आओ।'

उन्होंने उत्तर भेजा, - 'यदि मैं घर आया तो मेरा व्रत भंग होगा। लौकिक दृष्टिसे मैं और तुम यद्यपि पति-पत्नी हैं, फिर भी इसके आगे यदि तुम्हें यह स्वीकार हो कि तुम मेरी बहन हो और मैं तुम्हारा भाई हूँ, तो मैं ...'

माँ और बेटेका वियोग न हो, इसलिये मैंने उनकी बात मंजूर कर ली। वे लौटकर घर रहने आ गये। उनके इतने नज़दीक रहते हुए मैं उनसे दूर दूर रहूँ!

पहले कुछ दिन मैंने तड़प कर काटे। लगातार लगता - वे मुझे मारते, खूब पीटते, फिर भी मुझे कोई आपत्ति न थी। परंतु उन्होंने मुझे इस तरह दूर नहीं कर देना चाहिए था।

आगे चलकर इस सबकी मुझे आदत पड़ गयी। आजन्म कारावासकी सज़ा पाया हुआ कैदी आदत पड़ जानेसे हँसते-खेलते सारे व्यवहार करने लगता हूँ, उसी तरह मैं भी सासजीकी सेवामें और घरके काम काजोंमें खोई रहने लगी। उन्होंने मुझे जो आज्ञा दे रखी थी, वह मेरे हाथसे कहीं भंग न हो जावे, इसलिये वे मुझे कुछ धार्मिक पुस्तकें पढ़नेको देने लगे। उन सारा पुस्तकोंमें इसी अर्थका बहुतसा मजमून रहा करता था कि स्त्री-पुरुषोंका प्रेम पाप है और स्त्री-पुरुषोंको नरकमें पहुँचा देनेवाली मोहिनी है।’

• • •

नोट-बुकका पृष्ठ यहीं खत्म हो गया था। मैं उसे उलटकर दूसरा पढ़नेवाला था, तभी गोपालराव बोले, - ‘आगे दो सालके बाद मेरे बहनकी सासजीका देहांत हो गया। पतिकी भी मृत्यु हो गयी। मैं उसे घर ले आया। उसे बंधड़ेमें रख दिया और मास्टरनीके ट्रेनिंगकी व्यवस्था कर दी। वह मास्टरनी हो गयी। उसके बाद ...’

तीसरे नोट-बुकको अलग करके उन्होंने चौथी उठायी और उसमेंका एक पृष्ठ खोलकर मेरे सामने वह नोट-बुक रख दी।

मैं पढ़ने लगा —

‘जबतक ट्रेनिंगमें थी तबतक मुझे प्रेम, विवाह, गिरस्ती आदि बातोंकी विशेष याद ही न आती थी। ट्रेनिंगसे निकलकर एक दो सालतक पढ़नेमें मेरा मन इतना रम गया था कि कुछ न पूछिये। परंतु पहले उस्ताहका आदेश अनुरते ही मुझे अपनी जिंदगी सूनी लगने लगी। शालाकी किसी छोटी लड़कीको जब अपने नज़दीक र्थीचती, तब मेरे मनमें यह मीठी इच्छा पैदा हो जाती कि वह मुझे ‘माँ’ कहकर पुकारे। परंतु वह ‘बहनजी’ कहकर ही पुकारती। और फिर मुझे लगता - पानी देखकर मनुष्यकी प्यास तृप्त नहीं होती। पीनेके लिये उसे प्राप्त करना पड़ता है। ममता भी उसी तरह है।

मैं शालामें लड़कियोंको एक ‘बेबी’का गीत सिखाया करती थी। वह ‘प्रिय’ बेबी हर रोज़ मुझे सपनेमें दिखा करती। उसके नन्हे नन्हे पाँव मेरे शरीरमें

लगते, तो मेरे रोमांच खड़े हो जाते। परंतु वह सपना बात-की-बातमें टूट जाया करता। जागकर मैं विस्तरपर छटपटाती पड़ी रहती। मेरे मनमें आता—मैंने पूर्व-जन्ममें ऐसा कौनसा पाप किया था कि भगवानने मुझे पतिका तो दिया ही नहीं, लेकिन बच्चेका भी सुख न दिया ?

इसी समय मेरे परिचयकी दो मास्टरनियोंके पुनर्विवाह हुआ। वे दोनों रूपमें मुझमें खराब ही थीं। मेरे मनमें एक ही विचार आने लगा—यदि मैं भी फिरसे विवाह कर लूं तो ? दिलमें आया कि विधवा-विवाह मंडलकी अर्ज़ी भेज दूं। लेकिन किसी भी तरह हिम्मत नहीं पड़ती थी। मेरे दोनों भाई बगवरीके थे। परंतु जड़ा भाई सदाशिव अपनी पत्नीमें लड़कर कहीं फगर हो गया था। यदि गोपालसे बात निकालूं—उसने मुझे पढ़ा लिखाकर गस्तेमें लगा दिया था। उसे यह बात पसंद होगी या नहीं, इसकी शका थी --

मैं मनमें इसी तरह कुढ़ती रहती। परंतु बंबईमें गोपालके घर उसके एक स्नेहीसे मेरी मित्रता हो गयी। वे मैट्रिक पास थे। एक अच्छी नाटक कंपनीमें वे दो सौ रुपये माहवारपर नौकर थे। गोपाल कहता था कि उनका आचरण बिलकुल पवित्र है। उनकी पत्नीका कुछ दिनोंके पहले ही स्वर्गवास हुआ था। उनके केवल एक ही संतान थी। वह भी एक छोटी लड़की जो हमेशा अपनी ननिहालमें ही रहा करती थी।

शीघ्र ही हम दोनों एक साथ घूमने जाने लगे। उन्हें घर आनेके लिये यदि थोड़ी देर हो जाती, तो मैं अस्वस्थ हो जाया करती। उनके आनेपर हम दोनोंकी बातोंके बीच यदि कोई तीमरा आ टपकता, तो उसपर भी मुझे गुस्सा आ जाता ! वे दूसरा विवाह करनेवाले थे। उन्हें भी लगता था कि यदि किसी विधवासे विवाह हो जाये तो अधिक अच्छा !

मुझे यह लगा कि आजतक मुझे तग करनेवाले दैवको अब मुझपर दया आयी है !

विवाह हो जानेपर हमारे पहले दिन बड़े आनंदमें बीते। उनके आग्रहसे मैंने नौकरासे इस्तीफा दे दिया। नाटक कंपनीके साथ हमें हर महीने दो महीनेके बाद नये नये शहर देखनेको मिलते थे। इसके कारण हमारे दिन बड़े मौजमें कटने लगे।

इस कल्पनासे कि आज नहीं तो कल मुझे बच्चा होगा, मैं बिलकुल पागल हो

गयी थी। लेकिन बीचमें जब कभी मैं उनकी कम्पनीका नाटक देखने जाती, तो मेरा दिल कुछ बेकरार हो जाता। नाटक मंडलीमें जो लड़की नायिकाका अभिनय करती थी, वह अत्यन्त रूपवती थी। उनकी तरफ़ बहुधा नायकका अभिनय रहा करता था। वे नायिकाको अपने नज़दीक लेते हुए इतने प्रेमसे उसकी ओर देखा करते—उस समय बजनेवाली तालियोंसे ऐसा लगता कि कहीं थिएटर ही तो लड़खड़ाकर न गिर पड़ेगा? उन तालियोंको सुनते हुए मेरे मनमें आता—इस लड़कीके कारण कहीं मेरा प्रेम-मंदिर तो नहीं ढह जायेगा?

नाटक समाप्त होनेपर वे घर लौटते, और जब मैं उनसे अपनी शंका कहती, तो वे कह देते,—‘पगली कहींकी! अरी, वह प्रेमका नाटक था। मेरा सच्चा प्रेम तो तुमसे ही—’

मनौती मनाकर हुए लड़केको माँ जिस तरह चूम चूमकर परेशान कर देती है, ठीक उसी तरह वे मेरी दशा कर डालते थे। उनके प्रेमके आवेगसे मेरा जैसे दम-सा घुट जाता था। परंतु साथ ही मनको कितना उत्साह लगता! पूर्वी बारिशमें जब ओले बरसने लगते हैं तो उनकी मार शरीरपर चपचप लगती है। लेकिन ओलेके साथ गिरनेवाली बारिशके कारण गर्मी भी शान्त हो जाती है। उनके प्रेमकी वर्षामें मुझे भी वे दोनों अनुभव हुआ करते।

लेकिन मुझे रह रहकर यह ज़रूर लगता कि उन्हें अपना मन थोड़ा कब्ज़ेमें रखना चाहिए। सुबह चाय देने जाती, तो वे मुझसे चुहल करते—और वह भी उस समय जब कि कमरेका दरवाज़ा खुला रहता और यह जानते हुए भी कि नौकरानी दरवाज़ेसे कब निकल जाये इसका कोई ठिकाना नहीं!

आगे उनके नये नाटककी प्रैक्टिस शुरू हुई। एक दिन शामको छः बजे वे घर लौटकर आये। पड़ोसिनोंके साथ मैं सिनेमा जानेके लिये तैयार हुई थी; पर उन्होंने मुझे नहीं जाने दिया। यह भी कह देते कि ‘सिरमें पीड़ा है।’ पर वह भी न कहा। उन्होंने सीधे शब्दोंमें यही कहा—‘तुम्हारे बिना मुझे चैन नहीं पड़ती!’

दूसरे दिन पड़ोसिनोंने मेरा ऐसा मज़ाक उड़ाया कि—

आगे शीघ्र ही मैं गर्भवती हुई—आकाश मुझे बहुत छोटा लगने लगा।’

• • •

मैंने नोट-बुकमें अँगुली रखकर वह बंद की और गोपालरावसे पूछा—

‘इतने भावुक युगलका आगे चलकर मनमुटाव हो गया?’

‘वे एक दूसरेका मुँह भी नहीं देखेंगे अब!’

मेरे मनमें आया—यही सच है कि प्रीतिको भगवानने एक विचित्र अभिशाप दे रखा है। किसी सुंदर तालाबका पानी कम होकर आगे चलकर उसमें सिर्फ़ कीचड़ बच रहे, उसी तरह प्रारंभका प्रेम लुप्त होकर मनुष्योंके मनमें अति परिचयसे पैदा हुआ तिरस्कार ही शेष रह जाता है क्या, कौन जाने!

गोपालरावने पॉचवीं नोट-बुक खोलकर मेरे सामने रख दी थी।

मैं पढ़ने लगा—

‘किसीने यह कहा है कि बागमें जिस तरह फूल, उसी तरह घरमें बच्चे! कितना सच है यह!

दिनू और मनूको खेलनेके लिये घर काफ़ी नहीं होता और मुझे उनका सब कुल यथायोग्य करनेके लिये दिन काफ़ी नहीं होता। आजकल मुझे इसका भी पता नहीं चलता कि सूरज कब निकला और कब डूब गया।

मनू हुआ था उस वक़्त डॉक्टरने उनसे कहा,—‘इस जचक्रीने इनके स्वास्थ्यको बिल्कुल गिरा दिया है। इसलिये अब आगे ...’

इतना कहकर डॉक्टर सिर्फ़ हँसे थे। लेकिन उस हँसनेका मतलब जितना वे समझे थे, उतना ही मैं भी समझ गयी थी। मैंने मनमें कहा,—‘अब मुझे बच्चा न भी हो, तो कोई हर्ज़ नहीं।’

मैं उनसे दूर दूर रहने लगी। मुझे उसमें मुश्किल ऐसी कोई बात न लगी।

उन्हें शायद मेरा इस तरह दूर दूर रहना पसंद न था। वे कहने लगे,—‘सच तो यही है कि बच्चे हो जानेपर पत्नीका प्रेम पतिके प्रति कम हो जाता है।’

मैं उत्तर देने लगी,—‘तो पति भी बच्चोंसे प्रेम करे न? उसे रोकता कौन है?’

यह उत्तर सुनकर वे हँस देते। परंतु वह हँसी मुझे अजीब-सी लगती। बिल-कुल कुम्हला गये फूलकी तरह।

आगे चलकर शीघ्र ही उनकी नाटक मंडली टूट गयी। कई दिनोंतक उन्हें कोई काम ही न मिला था। मैं फिरसे मास्टरनी हो गयी। शालाका काम—दो बच्चोंकी देख-भाल—उनका खाना-पीना—बीमारी...

रातको बिस्तरपर पड़ते ही गहरी नींद लग जाती।

लेकिन वे मुझे सुगन्ध से नहीं सोने देते थे। बीच-बीच में मुझे हिलाकर जगा दिया करते। मैं पूछती, 'क्या है?' तो कह देते, 'कुछ नहीं!'

जब उन्हें लगता कि मैं फिर सो रही हूँ तो नौकरों की बात निकालते और मुझसे पूछते, - 'क्या, अमुक फिल्म कंपनी में जाकर कोशिश करूँ?'

मैं कहती, - 'फिल्म कंपनी की बात मैं क्या जानूँ?'

अनजाने मेरे हाथ से नोट-बुक बंद हो गयी।

मेरे मन में आया - छोटे से ज़ख्म पर यदि धूल बैठ जाये तो वह पककर चर्चने लगता है, उसी तरह पति-पत्नी के मतभेदों की दशा होती होगी।

शायद यह ध्यान में आते ही कि मैं शून्य दृष्टि में सामने देख रहा हूँ, गोपाल-राव ने मुझसे कहा, - 'ऊच गये हांग आप यह सब पढ़ते पढ़ते। अब सिर्फ यह आखिरी भाग और पढ़ लें जिससे आपको मालूम हो जायेगा कि मेरी बहन गुस्से से अपने पति के घर से क्यों चली आयी?'

उनके द्वारा खोला हुआ सफा मैं पढ़ने लगा -

'खांडेकर की 'हरसिंघार के फूल' कहानी पढ़कर मुझे कितना अच्छा लगा! एक विचित्र पहेली, जो आज कई दिनों से हल नहीं हो रही थी, वह आज हल हो गयी। सच तो यही है कि पुरुषों का प्रेम शरीर से ही होता है। पिछले तीन वर्षों में इस कटु सत्य का मुझे कितनी ही बार अनुभव हो चुका है।

हरे चंपा की सुगंध दूर से बड़ी मोहक मालूम होती है; परन्तु उसे बिल्कुल नज़दीक से लगातार सूँघने लगें, तो थोड़ी देर में सिर कैसा मुन्न हो जाता है! सच तो यही है कि पुरुषों का प्रेम यदि फूल है, तो वह हरे चम्पा का है!

दो पहर को खांडेकर को पत्र भेजा।

सायंकाल को एक सहेली मेरे घर रहने के लिये आयी।

उसने मुझसे पूछा, - 'तेरे पति देव कहाँ गये हैं?'

मैंने उत्तर दिया, - 'उन्हें एक फिल्म कंपनी में काम मिल गया है। पाँच छः दिन हुए वे आउट-डोअर शूटिंग के लिये गये हैं।'

यह सुनकर उसे बड़ी खुशी हुई। मुझसे बातें करने का उसे बड़ा शौक था।

रात को बारह बजे तक हम दोनों गप्पें हँक रही थीं। बारह बजे के करीब द्वार बजा। मैंने जाकर उसे खोला।

वे लौट आये थे।

मैंने पूछा, — 'खाना खायेंगे क्या ? पकाऊँ ?'

उन्होंने गर्दनके इशारेसे 'ना' कहा और वे अपने कमरेमें चल दिये ।

मैं आकर अपने सहेलीके साथ सो गयी । थोड़ी ही दूरपर दिन्, और मन् दोनो सोये हुए थे ।

मुझे नींद लग एक घटिका भी नहीं हुई होगी... मुझे लगा — कोई मेरे पैरको गुदगुदा रहा है । शायद चूदा मेरे पैरको कुतर रहा होगा, यह सोचकर चौंककर उठी । देवती हूँ तो —

गंशनीके अम्पट उजेलेमें उनकी आकृति मुझे बड़ी डरावनी लगी । अपनी सहेलीकी ओर अँगुली दिग्वाकर मैंने बाहर जानेकी सूचना दी ।

परंतु किसी भी तरह उनका कदम जगहमें न हटता था !

मन्को नींदमें चौंककर रोते हुए उठनेकी आदत थी । यह सोचकर कि वह यदि अभी उठ गया, तो आफत हो जायेगी । उनका हाथ पकड़कर मैं उन्हें कमरेके बाहर ले गयी ।

मेरा ख्याल था कि उन्हें समझा-बुझाकर मैं चटमे लौट आऊँगी । परंतु शगबीकी तरह उनके होश भी शायद थे !

उनके चेहरेपर विवशता और क्रूरताका इतना विलक्षण मिश्रण था कि मेरे मुंहमें शब्द ही बाहर नहीं निकलता था !

मैंने उनकी पकड़से मुक्त होनेकी बहुत कोशिश की । लेकिन ...

उनका कमरा मुझे कारागार ही लगा । मेरे मनमें आया — मैं आजन्म कारागारकी सज़ा पायी हुई बंदिनी हूँ !

मन्की चीख मुझे एकदम सुनाई दी । पर —

उस चीखसे मेरी सहेली जाग गयी थी । वह जोर जोरसे मुझे पुकार रही थी । मन्को गोदमें लेकर वह हमारे ही कमरेकी तरफ आयी । लाजसे मेरी जो हालत हुई उसका वर्णन कैसे करूँ ?

मैंने मनमें निश्चय किया — यह जुल्म अब आग में नहीं सहूँगी । मुझे पुरुषके प्रेमकी ज़रूरत थी । मुझे लगा था कि वह प्रेम सोनचंपाके फूलकी तरह होता होगा । परंतु अनुभव कुछ और ही हुआ । प्रेम कोई जुल्म करनेका परवाना नहीं है !'

भीतरसे चायका ट्रे आया। इसलिये मुझे नोट-बुक बंद कर देनी पड़ी।

चाय पीते पीते गोपालराव बोले —

‘मुझे भी कुछ नहीं सूझ रहा है! बहन पतिके जुल्मसे ऊबकर वापस घर आ गयी है। मेरा बड़ा भाई अपनी पत्नीसे तंग आकर —’

‘यानी?’ — होंठोंतक लिया हुआ चायका प्याला होंठोंको न लगाते हुए मैंने प्रश्न किया।

गोपालराव बोले, — ‘यही सच है कि पलासके पत्ते तीन। सदूभाऊकी गिरस्तीका ऐसा ही हुआ। बेचारा पत्नीके त्राससे ऊबकर घर छोड़कर भाग गया है। उसका वह अंतिम विलक्षण पत्र —’

‘अभी यहाँ तुम्हारे पास है वह पत्र? —’ मैंने बीचहीमें प्रश्न किया।

गोपालराव बोले, — ‘बंबईके डॉक्टर साने उसे ले गये हैं। इस विषयपर एक किताब लिख रहे हैं वे।’

मैं थोड़ा निराश हो गया।

चायका कार्यक्रम समाप्त होनेपर मैं सामने रखी नोट-बुकोंके पन्ने पलटाने लगा। एक नोट-बुकके अंतिम पृष्ठपर ‘श्रीमती सिंधु आपटे’ नाम लिखा हुआ दिखाई दिया। मैंने गोपालरावसे पूछा, — ‘यह तुम्हारी बहनका नाम है क्या?’

उन्होंने गर्दन हिलाकर ‘हां’ कहा।

मुझे एक बात याद हो आयी और मैं सोचने लगा। आपटे और अभिनेता! शालामें पिछली कक्षाओंमें मेरे बाद बंझ आपटे नामका एक विद्यार्थी था। मैं यह भी जानता था कि आगे चलकर वह एक प्रसिद्ध अभिनेता हो गया है। मैंने कई लोगोंसे सुना था कि आपटे बड़ा सज्जन और सदाचारी अभिनेता है। उसकी इस ख्यातिके कारण ऐसा नहीं होता था कि वह इस तरहका कोई अजीब आदमी होगा। इसलिये मैंने गोपालरावसे पूछा —

‘तुम्हारे बहनोईका नाम क्या है?’

‘बंडोपंत आपटे!’

कुछ समय पहले पढ़े हुए वे वाक्य मेरी नज़रोंके सामनेसे नाचते हुए चले गये—

‘हरे चंपाकी सुगंध दूरसे बढ़ी मोहक मादूम होती है। परंतु उसे बिलकुल नज़दीकसे लगातार सूँघने लगे, तो थोड़ी देरमें सिर कैसा सुन्न हो जाता है!’

५

केवड़ेके काँटे

‘हरे चम्पेकी सुगंध दूरसे बड़ी मोहक मालूम होती है। परंतु उसे बिलकुल नज़दीकसे लगातार सूँघने लगे, तो थोड़ी देरमें सिर कैसा सुन्न हो जाता है ! पुरुषका प्रेम यह फूल है, तो भी वह हरे चम्पाका फूल है।’

घर आतेतक ये विचित्र वाक्य लगातार मेरे मनमें चक्कर काट रहे थे। सत्यकी अपेक्षा सौन्दर्यमें ही मनुष्यको मोहित करनेकी शक्ति अधिक होगी। वरना यद्यपि मुझे बीच बीचमें यह लग रहा था कि इस वाक्यका अनुभव इकतर्फा है — यही नहीं, बल्कि सिर्फ एक व्यक्तिका है, फिर भी मेरे विचार इस वाक्यके इर्द-गिर्द ही क्यों घूमते रहते ?

घर आया और सीधा मैं अपनी अटारीकी ओर मुड़ा। मेरी कल्पना थी कि लिखनेमें या पढ़नेमें मन लगा दूँगा, तो वह विचित्र वाक्य मेरी स्मृतिसे जाता रहेगा।

डेस्कके पास हमेशाकी तरह मैं पलथी मारकर बैठ गया। संकल्पित लेखोंके सारे नोट्स देखे ! परंतु किसी भी तरह मुझे यह नहीं लगता था कि सामनेकी पेन्सिल उठाऊँ और लिखना शुरू करूँ। रह रहकर सिधु आपटेके उस हस्त-लिखितका स्मरण होने लगा। दिलमें आया — यदि उसका पूरा आत्मचरित्र पढ़ लेता, तो उसकी परिस्थितिपर अधिक प्रकाश पड़ता।

मेरे अस्वस्थ मनमें प्रश्न-चक्र घूमने लगा। प्रत्येक व्यक्तिका जीवन क्या एक भिन्न ही स्वतंत्र जग होता है, या कि बाह्यतः भिन्न दीखनेवाले इस अनंत जगकी आत्मा एक ही होती है क्या? प्रेम विष है या अमृत? क्या निसर्गकी यही इच्छा है कि मनुष्य कभी भी सुखी न हो?

इस प्रकारके प्रश्नोंके चक्रव्यूहमें प्रवेश करना सरल होता है; परंतु उससे बाहर निकलना?

छि!

मैं और भी अधिक बेचैन हो गया। डेस्कके पासमें उठकर मैं कमरेके द्वारमें जाकर खड़ा हो गया। बाहर दीनकी चद्दपर रखे गनलोंकी ओर मेरा ध्यान गया। एक भी गुलाबके पौधेपर फूल नहीं था।

कलवाले उस पुलिम इन्स्पेक्टरके वाक्योंकी मुझे याद हो आयी। उसका अनुभव कर्कश स्वरसे चिल्लाकर कह रहा था — ‘स्त्री-पुरुषका प्रेम गुलाबका पेड़ है। पर जिसमें एक भी फूल नहीं, सिर्फ बाराक कांटोंसे भरा हुआ गुलाबका पेड़ है।’

परंतु इन वाक्योंके पीछे पीछे रामभाऊ भावपूर्ण स्वरमें कह रहा था — ‘स्त्री-पुरुषका प्रेम सोनचंपाका फूल है। सोनचंपाकी सुगंध हम दूरसे भी ले सकते हैं। पत्नीका प्रेम भी उसी तरह —’

मेरी कहानीकी नायिकाको प्रेम हरमिगारके फूलकी तरह लगा था। परंतु आज सिधु आपटे अचानक मिली और उसके दुखके कारण बोझिल हुआ हृदय कह रहा था — ‘पुरुषका प्रेम हरे चंपाकी फूलकी तरह है!’

मेरा मन कहने लगा — ‘यह सच है कि स्त्री-पुरुषोंके प्रेमके इतने पहलू होते हैं कि जगके सारे फूलोंकी उपमा उन्हें सार्थ हो सकती है। मैंने जो कहानी लिखी उसमें इस विचित्र प्रेमका एक ही पहलू रंगा गया है। इसी कारण —’

जीनेपर किसीके पैरोंकी आदृष्ट सुनाई दी। मुझे लगा, श्रीमतीजी चाय लेकर आ रही होंगी।

श्रीमतीजी ऊपर आयीं; लेकिन उनके हाथमें चायकी प्याली न थी, सिर्फ दो पत्र दीख रहे थे।

मुझे आश्चर्य हुआ कि आज इतने जल्दी डाक कैसे आ गयी। मैंने झटसे दोनों पत्रोंको हाथमें लेकर देखा। ऊपरका तो मेरी पत्नीके ही पतेपर था! पतेके

अक्षरोंसे मैं ताड़ गया कि वह उसकी एक सहेलीका पत्र है जो बंबईमें मास्टरनी है। उन दोनोंमें बड़ा पत्र व्यवहार चला करता था। परंतु आजतक मेरी पत्नीने सुमतीका एक भी पत्र मुझे नहीं दिखाया था, इसलिये मैंने हँसे-हँसे कहा, — ‘एक पुरानी कहावत मालूम है न !’

बारिश शुरू होते ही छोटा लड़का ओलतीके नीचे जिस तरह हाथ फैलाकर खड़ा हो जाता है, उसी तरह जब मैं बोलने लगता हूँ तो इस विश्वाससे कि मुझे कोई मीठी चुटकी ली जायेगी, मेरी पत्नी मेरी ओर उत्सुकतासे देखने लगती है।

परंतु आज वह उत्सुकता उसकी मुद्रापर दिग्विहीन दी।

उसे हँसानेके लिये मैंने कहा, — ‘दो सहेलियोंके मनकी बात तीसरेको कभी न सुननी चाहिए। उसमें फिर मैं ठहग पुरुष। स्त्रियोंके बीच पुरुष लेंडूगा ...’

हँसनेके बजाय थोड़ी रुष्ट मुद्रा करके वह बोली, — ‘उसने आपके बारेमें क्या क्या लिखा है, वह ज़रा पढ़कर तो देखिये एक बार !’

इससे कुछ और अधिक न कहकर वह नीचे चल दी।

पत्नीके इन अंतिम उद्गारोंमें मैं अमंजसमें पड़ गया। यह स्पष्ट था कि उसकी सहेलीने मेरे विषयमें कुछ विचित्र ज़रूर लिखा होगा। परसों जब बंबईमें था तो एक अपरिचित तरुणीके साथ सिनेमा देखनेका मुझे मौका आ गया था। मेरी पत्नीकी यह सहेली भी उसी खेलको गयी होगी ! हम दोनोंको थिएटरमें एकत्र देखकर उसके मनमें कुछ ...

कहते हैं कि सशय स्त्रीका जन्मसिद्ध साथी है, सो यह झूठ नहीं। वैसे देखा जाय तो मेरी पत्नीकी यह सहेली एम. ए. थी और अध्यापिकाके नाते उसकी बड़ी ख्याति थी। वह विदुषी मानी जाती थी। पर ...

मैंने मनमें कहा — यह तो सरलतासे सिद्ध हो जायेगा कि उस दिन मेरे साथ सिनेमा देखने गयी हुई तरुणी मेरे एक मित्रकी साली थी। वह उसे लेकर सिनेमा आया था। परंतु थिएटरके दरवाज़ेसे ही एक आकस्मिक कामके लिये उसे लौट जाना पड़ा, तो इसके लिये मैं क्या करूँ ?

हाथमें रखे पत्नीके नामके पत्रको खोलनेकी भी तकलीफ़ उठानेकी ज़रूरत न थी। लेकिन भीतरका कागज़ निकालकर उसे पढ़नेके बदले मैं यह सोचनेमें ही निमग्न हो गया कि उसमें क्या लिखा होगा। सच तो यही है कि मनुष्यके मनको कटु अनुभवका विलक्षण भय लगता है। दीयेके प्रखर प्रकाशसे कष्ट न

हो, इसलिये उसके आसपास जिस तरह कागज़ लपेट देते हैं, उसी तरह कल्पनाके आच्छादनके बिना अनुभवको वह देख ही नहीं सकता।

पाँच मिनट मैं ज्योंके त्यों स्वस्थ—सच पूछा जाय तो मन ही-मन बिल्कुल अस्वस्थ बैठा रहा। फिर जरूर मेरे मनकी दशा विचित्र हो गयी। मुझे यह विश्वास हो गया कि उस स्त्रीने मेरे विषयमें जरूर कोई बहुत बुरा बात लिखी होगी। यह सोचकर कि दम घोट देनेवाले धुएँसे जला देनेवाली आग अच्छी, मैंने झटसे उस लिफाफेका पत्र बाहर निकाला।

पत्रके बीचमें ही लिखे मज़मूनके नीचे लाल स्याहीसे रेखाएँ खींची थीं। उन्हें देखकर मुझे हँसी आयी। मुझे लगा—पत्र लिखते समय भी मास्टरनीजीको यही लगता होगा जैसे हम कोई प्रश्नपत्र ही निकाल रहे हैं!

मैं उस मज़मूनको पढ़ने लगा—

‘तुम जानती ही हो कि भाऊराव’ का ‘दोन ध्रुव’^२ मैंने बहुत बार पढ़ा है। उस तरहका ऊँचे दर्जेका उपन्यास लिखनेवाला सभ्य लेखक ऐसी वाहियात कहानी लिखे, इसका मुझे बड़ा दुख होता है। कहानीका ‘हरसिंगारके फूल’ नाम पढ़कर मेरे मनमें कितनी कोमल कल्पनाएँ उत्पन्न हुई थीं! परंतु भाऊरावने उस कहानीमें कहाँका गंदा वर्णन किया है! क्या कहते हैं, एक बड़ाज़ शरीरसुग्गके विषयमें अपनी पत्नीपर अत्याचार करता है! यह क्या कोई कहानीका विषय हुआ? इसमें कहाँका ध्येय है और कला भी कहाँ है? लोकप्रियता प्राप्त करनेके लिये वाहियात साहित्य सृजन करने-वाले लेखकोंमें हमारे भाऊराव भी शामिल होंगे, यह मुझे स्वप्नमें भी सच नहीं लगता। लेकिन—

आज मध्याह्नकी छुट्टीमें मास्टर्स और मास्टरनियोंने मुझे इतना तंग किया कि क्या कहूँ? किसी तोतेके नन्हे बच्चेको कौए चोंच मारें, उस तरह मेरे मनकी स्थिति हो गयी।

बूढ़े डॉइंग-मास्टर बोले, — ‘सारे लेखक एकजात सियार हैं। कोई

१ वि. स. खांडेकरजीका उपनाम।

२ ‘दो ध्रुव’ उपन्यासका मराठी नाम।

बकरीकी खाल ओढ़ते हैं और कोई उसे नहीं ओढ़ते हैं - बस इतना फर्क होता है।'

संस्कृत पढ़ानेवाली अध्यापिकाजी बोलीं, - 'स्त्रियों और पुरुषोंके संबंध ही इन लेखकोंका प्रिय विषय होता है ! इसके सिवा वे कुछ जानते ही नहीं । इतना बड़ा युद्ध हो रहा है - उसपर ये लोग कहानियाँ क्यों नहीं लिखते ?'

पिछले साल ही बी. टी. पास कर शालामें नियुक्त हुए देशपांडे बोले, - 'देखिये, सुमतीजी, आपके ये ग्वाड़ेकरजी शीघ्र ही एक साप्ताहिक पत्र निकाल रहे हैं !'

देशपांडेके इस वाक्यको सुनकर सारे लोग कहकहा लगाकर हँसने लगे । गरम करछुलसे शरीरको दाग दें, उम तग्ह उस हँसीसे मेरा मन जला उठा।'

पत्रमें और भी कुछ मजमून था । लेकिन मेरे मनमें विचारोंका ऐसा तूफ़ान उठा कि पत्रको वहीं रखकर मैं कमरेमें टहलने लगा ।

मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ा कि स्त्री-पुरुषोंके संबंधकी बातें उन्मादक होती हैं और तरुण-तरुणियोंके मन ऐसी बातोंकी ओर अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं । इसलिये ऐसा साहित्य निर्माण करनेवाले अनेक लेखक होते हैं, लेकिन मैंने जो कहानी लिखी उसका हेतु पाठकोंके विचारोंको गुदगुदाना हरगिज़ न था ।

परंतु यह कहनेका मुझे क्या अधिकार था ? गुनहगारके कटघरेमें खड़ा हुआ मनुष्य न्यायाधीश नहीं हो सकता । मेरी कहानीका हेतु क्या है इसका फैसला पाठकोंको ही करना चाहिए । उन पाठकोंमेंसे एक - मेरी पत्नीकी सहेली - एम. ए. पास एक विदुषी —

सुमतीके उस पत्रकी ओर ध्यान जाते ही मेरा सारा शरीर इस तरह सिहर उठा जैसे मैंने साँप देखा हो । क्षण-भर मनमें आया - स्त्री-पुरुषोंके संबंध जैसा नाजुक विषय मैंने कहानीके लिये फ़जूल चुना ? इस विषयपर लिखना मानो काँटेदार तारपर कसरत करना है ! 'हरसिंगारके फूल' कहानी मुझे एक विलक्षण करुण दृश्यसे सूझ पड़ी ! एक सफेद फीके चेहरेकी और निस्तेज आँखोंवाली अबलाकी वह करुण कहानी... स्त्रीकी गुलामी कितनी भीषण होती है, इसका मुझे जो बोध हुआ... इस भावनासे कि यह जुल्म बंद होना चाहिए, उस विषय-पर मेरे द्वारा किया गया विचार...

खिड़कीसे आनेवाली हवाके झोंकेसे वह पत्र फड़फड़ाने लगा। मानो ऊँची आवाज़से वह मेरा उपहास ही कर रहा था।

उस पत्रके नज़दीक ही एक दूसरा पत्र पड़ा हुआ था। अब मेरे ध्यानमें आया कि उसे मैंने पढ़ा ही नहीं है।

मैंने चटपट उसे खोला और भीतरके मज़मूनपर नज़र दौड़ायी। डॉक्टर कर्वेने शामको मुझे खानेपर बुलाया था। उसका निमंत्रण-पत्र था वह। उन्होंने लिखा था— ‘आज ऐसा कोई खास प्रसंग नहीं है। परंतु मेडिकल कॉलेजके मेरे एक मित्र डॉक्टर साने कॉकणसे वापस आ रहे हैं; उन्हें आपकी कहानियाँ बड़ी अच्छी लगती हैं। आप दोनोंका इस अवसरपर परिचय हो जाये, इसलिये आपको निमंत्रण किया है। डॉक्टर साने रातको दस बजेकी गाड़ीसे चल देनेवाले हैं।’

आगेका मज़मून पढ़नेके बदले येरी आँखें पढ़े हुए भागके एक ही शब्दपर गड़ गयीं— डॉक्टर साने।

कुछ समयके पहले गोपालरावसे बातचीत करनेके सिलसिलेमें यह नाम निकला था। उन्होंने कहा था कि उनके बड़े भाईका अंतिम पत्र डॉक्टर सानेके पास है। उन्होंने यह भी कहा था कि डॉक्टर साने इस विषयपर कोई किताब—

तुरंत ही मेरे मनमें आया—यह कैसे कहा जा सकता है कि ये बंबईके ही डॉक्टर साने होंगे, और अगर बंबईके हो भी, तो वही होंगे जिनकी मुझे ज़रूरत है—

मुझे ऐसा लगा कि कब शाम होती है!

● ● ●

शामको घूमने न जाकर मैं सीधा डॉक्टर कर्वेके दवाखाने गया। मेरा यह तर्क कि उनके सामने बैठा हुआ सौम्य मुद्रावाला और तीक्ष्ण दृष्टिका व्यक्ति ही डॉक्टर साने है, शकत न निकला। हमने प्रसन्नमुखसे एक दूसरेसे नमस्ते किया।

तुरंत साने हँसते हुए बोले, — ‘तुम्हारी वह कहानी तो मुझे बड़ी अच्छी लगी, भई!’

वे किलॉस्करमेंकी ‘हरसिंगारके फूल’ के विषयमें कह रहे हैं, या कि ‘सह्याद्रि’^१ में प्रकाशित हुई मेरी दूसरी कहानीके विषयमें कह रहे हैं, यह

मेरी समझमें न आता था। मैं कुछ कहने जा रहा था तभी डॉक्टर कर्वे बोले, — ‘भाऊराव, मैं एक-दो पेशेंट देख आता हूँ। तबतक तुम और साने ज़रा घूम आओ!’

मैं सानेसे एकान्तमें बहुत बातें करना चाहता था। इसलिये कर्वेकी सूचनाको मैंने तुरंत मंजूर कर लिया। ‘टेंबलाई’ पर जानेका निश्चय करके मैं दवाखानेसँ बाहर निकला। डॉक्टर साने साथ थे ही।

लेकिन कारमें बैठते ही मुझे लगने लगा कि कहीं मेरे मनकी इच्छा मेरे मनमें ही न रह जाये।

कार स्टार्ट होते ही डॉक्टर सानेने मुझसे कहा, — ‘यहाँ अनाथ बच्चोंका एक आश्रम है न? चलो, ज़रा वहाँ हो आयें।’

मैंने ड्राइवरको उस तरह सूचना दे दी। लेकिन डॉक्टर सानेका अनाथ बच्चोंके आश्रममें क्या काम है, इस विषयमें मुझसे कुछ भी तर्क करते न बनता था। मेरे मनमें थोड़ी देरके लिये यह प्रश्न भी खड़ा हो गया कि दो-पहरको ज़रा डॉक्टर कर्वे फुरसतमें थे, उस समय साने उनको साथ लेकर इस आश्रममें क्यों न हो आये? सानेको रातकी दस बजेकी गाड़ीसे बंबई जाना था। फिर अभीतक आश्रम न जाकर —

आश्रमके सामने गाड़ी खरँद करती हुई खड़ी हो गयी। हम दोनों भीतर गये। दरवाज़ेमें ही नमूताई तीन सालके एक लड़केके साथ ‘चांदोबा, चांदोबा, भागलास का?’^१ गीत गा रही थीं। उनकी उस शुभ्र साड़ी और प्रसन्न मुद्राको देखकर मेरे मनमें आया — आश्रमसे परिचित सब लोग नमूताईको देवी कहते हैं, यह बात कोई झूठ नहीं है।

डॉक्टर सानेको देखते ही नमूताईको आश्चर्य हुआ! लेकिन वह क्षणभर ही! तुरंत ही उन्होंने हम लोगोंका हँसते हुए स्वागत किया।

नमूताई हमें मेहमानके कमरेमें ले जा रही थीं तभी दो-चार बच्चें ‘माताजी, माताजी’ कहते दौड़ते हुए आये और उनसे लिपट गये। वह दृश्य सचमुच बड़ा मनोहारी था। देवीकी मूर्तिके चरणोंमें पड़े हुए खिले फूलोंकी तरह उन बालकोंकी मुद्राएँ दीख रही थीं।

१ ‘हे चंदा, भाग क्यों गये?’

हमारी ओर देखकर नमुताई बोली, — ‘मेरा यह सरकस देखकर आप लोगोंको हँसी आती हो, है न ?’

हम दोनों ही हँस पड़े। परंतु उस हँसीमें उपहास न था; आदर था।

बच्चोंसे खेलते खेलते ही नमुताई सानेसे बातें करने लगीं।

सानेने प्रश्न किया, — ‘बहुत दिनोंसे आपका कोई पत्र नहीं मिला था। इसलिये सोचा —’

शरीरसे झूमनेवाले बालकोंकी ओर देखकर नमुताईने कहा, — ‘पत्र लिखने बैठती हूँ तो ये बंदर आ जाते हैं और कलम हाथमें लेकर खुद ही पत्र लिखने लगते हैं।’

हम दोनों सिर्फ हँसे।

नमुताई आगे कहने लगीं, — ‘और सच कहूँ डॉक्टर, इस नन्हेंकी दुनियामें इतनी रंग गयी हूँ, कि मुझे बाहरकी दुनियाकी कभी याद ही नहीं आती !’ किंचित् ठहरकर बिल्कुल सहजभावसे वे कह गयीं, — ‘आपकी भी !’

नमुताईके इस उद्गारके कारण मेरे मनमें एक क्षणार्धमें अनेक विचार आ गये। नमुताई और डॉक्टर सानेका क्या कोई रिश्ता-विद्वता है ? यदि उनका रिश्ता होता, तो सानेके मित्र नाते डॉक्टर कबें उनकी नमुताईकी पृच्छताछ किये बिना न रहते। परंतु वैसा कभी भी न हुआ था। यही नहीं, बल्कि बातचीतके दौरानमें एक-दो बार नमुताईका जब उल्लेख आया था, तब वे उनके बारेमें कुछ तिरस्कारसे ही बोले थे।

वह कोई चायका वक्त न था। परंतु डॉक्टरसे नमुताईका आग्रह तोड़ा न गया।

चाय लेकर जब हम आश्रमसे बाहर निकले, तब सानेने कहा, — ‘चलो, कम-से-कम पाँच-दस मिनटके लिये टेंबलाई भी हो आये जिससे यजमानसे झूठ बोलनेका पाप हमें न लगेगा !’

मेरे ध्यानमें आ गया कि डॉक्टर साने टेंबलाई जानेके लिये जो इतने हाथ-पाँव पटक रहे हैं सो सिर्फ इसलिये कि डॉक्टर कबेंसे कह सकें कि हम टेंबलाई हो आये हैं। यह स्पष्ट दीख रहा था कि वे डॉक्टर कबेंसे यह बात छिपाकर रखना चाहते थे कि हम नमुताईके पास गये थे।

मैं भी सानेसे एकान्तमें खुलकर बातें करनेका मौक़ा देख ही रहा था।

टेंबलाईके टेकड़ीपर पहुँचते ही मैंने उनसे कहा,—‘आपने मेरी ‘हरसिगारके फूल’ शीर्षक कहानी पढ़ी है न?’

डॉक्टरने गर्दन हिलायी।

‘बहुतसे लोगोंको वह पसंद नहीं आयी।’

‘सभी लोग बुद्धिमान नहीं होते।’

‘आज मेरी पत्नीकी एक सहेलीका पत्र आया है। वह तो उस कहानीको पढ़कर बिलकुल घबड़ा गयी है!’

रुमालसे जगह झाड़कर उसपर बैठते हुए डॉक्टर बोले,—‘पुगने जमानेमें स्त्रियोंकी यह धारणा थी कि डॉक्टरसे जँचवा लेनेके बजाय मर जाना अच्छा। हमारे समाजका मन भी अभीतक उसी स्थितिमें है। स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे प्रेम करें—पर करें—लुके छिपे—उसके सुखदुःखके अनुभव प्राप्त करें तो वे भी चोरी चोरी। उन अनुभवोंको कहनेकी मनाही है हमारे समाजमें। मैं आजकल जो पुस्तक लिख रहा हूँ उसमें आपकी कहानीकी तरह कितनी ही सत्य-कथाएँ हैं?’

‘उस पुस्तककी पांडुलिपि आपके पास है क्या?’

डॉक्टरने नकार दर्शानेके लिये गर्दन हिलायी। परंतु मेरी उत्सुकताको ध्यानमें लेकर वे बोले,—‘तुम अगर घंघई आओगे, तो मैं वह तुम्हें पढ़नेको दूँगा। उसकी हरएक कहानी पढ़कर तुम्हें इसकी कल्पना हो जायेगी कि केवल लाज और संकोचके कारण हम गृहस्थीके सुखको किस तरह चाँपट कर रहे हैं। प्रेम हर-एकके जीवनका महत्वपूर्ण भाग है। परंतु उसकी ओर सिर्फ स्वप्निल दृष्टिसे देखकर काम नहीं चलेगा। झूठी लजा, थोथा ध्येयवाद और वनावटी पवित्रताकी चद्दर ओढ़कर प्रेमके दुःखोंको दुनियासे छिपाया जा सकता है, परंतु वे मनको जला देते हैं। पिछले सप्ताहकी ही एक बात है, मुनो। एक एम. ए. पास अध्यापिका मेरे पास पेशेंटकी हैसियतसे आयी। देखिये उसका नाम? क्या नाम है...’

डॉक्टर याद करने लगे।

मुझे एकदम सुमतीके सुबहवाले पत्रका स्मरण हो आया।

डॉक्टरको चुप बैठे हुए देखकर मैंने हँसते हुए कहा,—‘नाम जाने दीजिये।

उस अध्यापिकाका हाल सुना दंगे, तो कम-से-कम मेरी कहानीके लिये एक विषय मिल जायेगा ।’

‘बस, इतना ही चाहते हो ? तो फिर मैं तुम्हें इन नमुताईका ही हाल सुनाये देता हूँ !’

इस कल्पनासे कि अब क्या सुननेको मिलेगा, मैं असमंजसमें पड़ गया ।

डॉक्टरने मुझसे पूछा,— ‘नमुताईके बारेमें आपका क्या मत है ?’

‘देवी है बेचारी !’

डॉक्टर अपने आप ही हँसे ।

मैं क्षण-भर ठहरकर बोला,— ‘यह अकेला मेरा ही मत नहीं है । यहाँके सारे लोग इन्हें देवी मानते हैं !’

‘और एक समय उसे पहचाननेवाले सारे लोग उसे राक्षसनी कहते थे ।’

मैं स्तब्ध हो गया !

हवा भी रुक गयी थी । मानो नमुताईकी पिछली कहानी सुननेके लिये उसने भी अपनी साँस रोक रखी थी ।

डॉक्टर कहने लगे,— ‘नमुताईके पतिके मित्रने ही यह सब हाल मुझसे कहा है । यदि उसकी प्रामाणिकतापर मुझे विश्वास न होता, तो मैं—’

मैंने बीचहीमें कहा,— ‘आपको दसकी गाड़ीसे जाना है, इसलिये—’

कहानी सुननेकी मेरी उत्सुकताको ध्यानमें लेकर वे हँसे । परंतु तुरंत ही गंभीर होकर वे बोले,— ‘नमुताईका पति और मेरा मित्र दोनों बालमित्र थे । वह मित्र आगे डॉक्टर हो गया । नमुताईका पति बड़े कष्टसे बी. ए. हुआ । सम्पन्नता बुद्धिमत्ता—इन दोनोंमेंसे उसके पास कुछ भी न था । जब उसे नौकरी लगी, उसी समय उसका स्वास्थ्य कुछ ठीक न था । परंतु विवाह होनेके दो-चार साल बाद तो उसका स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब हो गया । उसका वह डॉक्टर हुआ मित्र उससे जानबूझकर मिलने गया । उसे कुल मिलाकर हालत कोई अच्छी न दिखी । परंतु डॉक्टर हमेशा ही आशावादी हुआ करता है । उसने दवाएँ लिख दीं । पर-हेज़ आदिकी सूचनाएँ भी दे दीं । और भी एक बात वह कहना चाहता था, परंतु वह कैसे कहे वह वह नहीं समझ पा रहा था । वह उस बातको बिना कहे ही चला गया !’

डॉक्टर बीचहीमें ठहर गये । बहुधा उनके मृत मित्रकी मूर्ति उनकी आँखोंके सामने खड़ी हो गयी ।

क्षण-भर रुककर वे आगे बोलें, — ‘छः महीनेके बाद वह डॉक्टर फिर अपने मित्रसे मिलने गया । दवा, परिचर्या आदि सब बातें ठीक चल रही थीं । परंतु रोगी क्षीण होता जा रहा था ! पतिके लिये हरगोज़ रातको जाग्रण करनेवाली नमुताईको दो दिन आगम मिले, इसलिये रातको रोगीके पास बैठनेके लिये डॉक्टर आनंदसे तैयार हो गया । लेकिन नमुताईने उसे रोगीके कमरेमें नहीं सोने दिया । उसकी पतिनिष्ठाकी सराहना करता हुआ वह नजदीकवाले दूसरे कमरेमें जाकर सो गया ।

‘कोई भयंकर स्वप्न देखनेके कारण वह रातको जाग पड़ा । नजदीकवाले कमरेमें पतिपत्नीकी कुछ बातें हो रही थी । वे उसे स्पष्ट रूपसे सुनाई न दीं : लेकिन पतिके — ‘अरी, कम-से कम अब तो तंग न कर मुझे’ कर्कश उद्गार कानोंमें पड़ते ही वह चकमक गया ।

‘सारी रात वह बिस्तरपर तड़प रहा था । परंतु आधी रातको सुने हुए उन उद्गारोंकी पहली किसी भी तरह उससे हल न हुई ।

‘दूसरे दिन अपने मित्रके अंतरंगमें प्रवेश करनेका उसने निश्चय किया । पहले तो उसने उससे कोई पता न चलने दिया । परंतु जब उसके मुँहसे वह रहस्य बाहर निकाला —

‘नमुताईका पतिसे प्रेम था — भक्ति थी; परंतु वह भक्ति शुद्ध और निर्दोष न थी । उसमें शरीर-सुखकी विलक्षण आसक्ति थी । पति रुग्ण-शैयापर था, उसकी सेवा वह मन लगाकर कर रही थी । परंतु इस एक विषयमें वह उसका कहना बिल्कुल न मानती थी । पतिको जिस सुखकी ज़रूरत न थी, वह सुख —

‘उस डॉक्टरने पत्नीको पतिसे दूर रखा । इसका बदला लेनेके लिये उसने उस डॉक्टरपर मिथ्या आरोप लगाया ! वह उसकी मित्र मंडलीमें फैल गया । उसके घरमें थोड़ीसी गड़बड़ी पैदा हो गयी । परंतु उसने वह सब चुपचाप बरदाश्त कर लिया । शेरनीके मुँहसे उसका भक्ष्य खींच लिया जावे, उस प्रकार नमुताईके बारेमें उसने किया था । इसके कारण उसके विचित्र गुस्सेपर उसे दया आयी । क्रोध न आया ।

‘आगे चलकर कुछ दिनोंके बाद उसका पति उस डॉक्टरके घर मर गया । फिर प्रश्न खड़ा हुआ कि नमुताईका आगे क्या किया जावे ? यदि वह नर्सिंगका

कोर्स लेना चाहती, तो वैसा प्रबंध कर देनेके लिये डॉक्टर तैयार था। परंतु नमुताईने नर्सिंगका कोर्स लेनेसे इन्कार कर दिया। उसने एक ही इच्छा प्रकट की - 'जहाँ बहुतसे छोटे छोटे बच्चे हों, वहाँ मुझे कोई काम दिला दीजिये !'

'डॉक्टरके परिचयसे उसे एक अनाथ बच्चोंके आश्रममें काम मिल गया। वहाँका काम उसने इतनी अच्छी तरह किया कि आश्रमके प्रमुख कार्यकर्ताओंमें उसकी गणना होने लगी। स्वयं डॉक्टरको भी उसके इस परिवर्तनका बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अनेक बार मनमें कहा होगा - 'निसर्ग कलीको फूल बना सकता है; परंतु काँटोंको फूल बना देनेकी शक्ति मनुष्यमें ही दिगवाई देती है।'

एक स्त्रीकी शरीर-सुखकी आसक्तिका वात्सल्यमें परिवर्तन हो जानेकी यह कहानी मुझे बड़ी उद्बोधक मालूम हुई। मैं आगे कुछ कहनेवाला था तभी डॉक्टर साने अपनी कलाईपर बंधी घड़ीकी ओर देखते हुए बोले -

'अरे, आठ बज गये न अब ?'

वे तुरंत उठ भी गये।

उनके साथ कारमें बैठते-बैठते मैंने कहा, - 'डॉक्टर, नमुताईकी कहानीका एक रहस्य अभी बतानेको रह गया है ?'

'कौनसा ?'

'पतिके उस मित्र डॉक्टरका नाम ! आपने उसका नाम नहीं बताया है। फिर भी मैं उसे जान गया हूँ। कहिये तो बता दूँ ?'

'हाँ, बताओ।'

'डॉक्टर साने !'

● ● ●

भाग दूसरा

६

सदूभाऊ

सफरपर खाना होनेका दिन आते ही, मेरा मन ज़रा नागज़ ही हो जाता है। या देखा जाये तो नये नये स्थानोंको देखने और नये नये लोगोंसे पहचान करनेकी मुझे बड़ी इच्छा है। परंतु उसे तृप्त करनेके लिये घड़ घड़ आवाज करती जानेवाली खटारा मोटरमें, अथवा खड़ खड़ करती और धुएँके बादल उड़ाती जानेवाली रेलगाड़ीके किसी कोनेमें, आठ-दस घंटे काटनेकी मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ती। लेकिन हाँ, अगर अलाउद्दीनका चिराग हाथ आ जावे, तो मैं इसी समय रूस जानेको भी तैयार हूँ !

इस स्वभावके कारण सफरका दिन निकला, कि बिस्तरसे उठते उठते मेरे मुँहसे अनजाने, 'उठो, भई ! आज सफरपर जाना है !' निकल पड़ता है और यह कहते हुए मेरा स्वर कुछ इतना दर्द-भरा-सा हो जाता है, कि उसे यदि कोई सुन ले, तो उसका यही खयाल हो जायेगा, कि मेरे शब्दकोशमें, सफरपर जानेका मतलब फाँसीपर जाना ही लिखा है।

ठंडके दिनोमें कम्बलपर कम्बल ओढ़कर सोये हुए मनुष्यसे वह गरमाहट नहीं छोड़ी जाती न ? उसतरह मुझे भी घर छोड़ना उतना ही कठिन लगता है। सफर नज़दीकका हो, या दूरका हो, पर उसपर निकलते समय मैंने किचकिच न की हो, ऐसा दिन ही मेरी ज़िंदगीमें कभी न आया।

पर आज मामला कुछ और था। मैं बिलकुल चुपचाप उठा। उषा (मेरी पत्नी) को इसपर आश्चर्य हुए बिना न रहा। उसने पूछा, 'बंबई का भाषण शायद स्थगित हो गया मालूम होता है ?'

मैंने उत्तर दिया, — 'नहीं तो। आज जाना है न !'

वह कुछ भी न बोली। लेकिन मुँहकी अपेक्षा स्त्रियोंकी आँखें ही अधिक बोलनेवाली होती हैं ! उसकी दृष्टि मुझसे कह रही थी, — 'आजके सफरमें जरूर कोई खास बात मालूम होती है। यों बाहर जानेके लिये आप हमेशा बूढ़े जैसे उकता जाया करते हैं, लेकिन आज जरूर एक छोटे बालकके शौकका संचार हो गया दीखता है आपमें।'

पति-पत्नीके द्वारा एक दूसरेपर की गयी आलोचना और प्रति-आलोचना टिपरी^१ के खेलकी तरह मनोरंजक खेल होता है। ऐसे समय वाक्यसे वाक्य बढ़ानेमें ही दोनोंका मजा आता है। यदि कोई ब्रह्मचारी यह संवाद सुन ले, तो उसे यह भ्रम हो जाता है कि छोटी-मोटी बातोंको लेकर पति-पत्नी व्यर्थ ही झगड़ रहे हैं। लेकिन ऐसे छोटे-मोटे झगड़ोंमें ही गृहस्थीका सच्चा मज़ा होता है, यह वह ग़रीब क्या जाने ?

उषाका ख्याल था कि उसकी मूक आलोचनाका मैं कुछ उत्तर दूँगा। गेंदकी प्रतीक्षा करनेवाले फील्डरकी तरह वह बड़ी उत्सुकतासे स्तब्ध रही। पर यह देखकर कि मैं चुप ही हूँ उसे विलक्षण आश्चर्य हुआ। किसी गुफ़ाके मुखपर जाकर छोटा बच्चा जोरसे चिल्लावे और प्रतिध्वनीकी आशामें गुफ़ाकी ओर देखे; पर उत्तरमें वहाँसे कोई आवाज़ न आये, तो वह जिस तरह निराश हो जाता है, वही उसकी स्थिति हो गयी।

लेकिन हंडीके एक चावलसे यह देख लेना कि सब चावल पक गये हैं या नहीं, स्त्रियोंको सिखाना नहीं पड़ता। यह ताड़कर कि आजका रंग कुछ और है, उषा तुरंत ही बोली, — 'मैं पहले ही जान गयी हूँ !'

'क्या ?'

'आपको यह लग रहा है कि बंबई कब जाता हूँ !'

१ हंडीका एक सामूहिक खेल। इसमें तालपर लोग आपसमें अपने इंडेसे दूसरेका हंडा बजाते हैं।

मैं हँसा। मेरा हास्य कह रहा था - सी. आइ. डी. में सरकार स्त्रियोंको ही अधिक भरती क्यों नहीं करती ?

वह विजयी मुद्रासे बोली, - 'आज आपको जानेकी इतनी जल्दी क्यों है, बताऊँ ?'

'हूँ !'

'कोई नयी फिल्म लगी होगी ?'

मैंने गर्दन हिलाकर नकार दशाया। क्षण-भर रुककर वह बोली, - 'नहीं तो किसी मित्रका विवाह जमाना होगा ?'

अब ज़रूर मैं चुप न बैठ सका। मैंने कहा, - 'तुम्हाग शायद यह ख्याल हो गया है कि तुम्हाग पति किसी 'वधुवर मंडल' का संचालक है !'

हँसते हँसते वह बोली, - 'खैर, न बताइये कि आप चंवरई क्यों जा रहे हैं ! आपके घर लैटनेपर तो मुझे सब पता चल ही जायेगा।'

'किससे ?'

'बताऊँ ?'

'बताऊँ ?' शब्दको कहते समय उसने इतनी गंभीर मुद्रा कर ली थी, कि क्षण-भर मुझे यह लगा कि चंवरईमें मैं कहाँ कहाँ जाता हूँ...और क्या क्या किया करता हूँ, इस विषयकी एक एक बातका पता उस किसी अपनी सहेलीके द्वारा चल जाता होगा।

वह विलक्षण गंभीरतासे मेरी ओर देख रही थी। नीलाममें, किसी चीज़की कीमतको बढ़ानेके लिये जिस तरह नीलाम बोलनेवालेकी कोशिश हुआ करती है, उसतरह मेरी उत्सुकता बढ़ानेकी उसकी यह हिकमत थी।

मैंने कहा, - 'यह तुम्हें कौन बतायेगा कि मैं चंवरई क्यों गया था ?'

'इधर आइये, बताती हूँ।'

मैं किंचित् आगे बढ़ गया।

सामनेके दर्पणमें मेरे प्रतिबिम्बकी ओर अँगुली दिखाकर वह हँसने लगी। मुझसे भी अपनी हँसी न रोकी जाती थी।

तुरंत ही वह बोली, - 'ऐसी कहावत है न कि स्त्रियोंके पेटमें कोई भी बात नहीं रहती। यह कहावत झूठ है। आजकल पुरुषोंके ही पेटमें कुछ नहीं रहता !'

स्त्रियोंकी दिलगी उड़ानेवाला एक प्रतिश्लेष तत्काल मुझे सूझ पड़ा। लेकिन

जीभसे ही मैंने उसे लौटा दिया। हँसते हँसते मैंने उधासे कहा, — ‘यही समझ लो कि यह सिद्ध करनेके लिये कि तुम्हारा यह नया नया सिद्धान्त सच है, मैं तुम्हें बताये देता हूँ कि बंबई जानेके लिये आज मैं इतना उत्साहित क्यों हो रहा हूँ। इस बार वहाँ डॉक्टर सानेसे मेरी भेट होनेवाली है। ‘हरसिंगारके फूल’ कहानीके प्रकाशित होनेके बाद मुझे क्या क्या अनुभव हुए यह तो तुमने देखा है न ? अब सानेकी सहायतासे उन अनुभवोंपर एक उपन्यास लिखनेका सोच रहा हूँ।’

• • •

मैंने बंबईमें चापूरावके घरमें कदम रखा ही था, तभी मुझे पता चला कि मेरे नामसे एक फोन आया था !

‘किसका ?’ — कपड़े उतारते हुए मैंने पूछा।

‘डॉक्टर सानेका !’

चापूरावके द्वारा कागज़पर नोट कर लिया हुआ संदेशा मैं बड़ी उत्सुकतासे पढ़ने लगा —

‘मेरी पत्नीकी एक सहेली द्वारा आत्म-हत्या करनेकी कोशिश करनेका समाचार मुझे अभी अभी मिला है। इसलिये हम दोनों नामिक जा रहे हैं। बहुत करके तो कल लौट ही आयेगे। आतेके साथ ही आपको फोन करूंगा। रहनेकी फुरसत हो, तो दो-चार दिन आप जरूर रहिएगा। लेकिन आपको रहनेका अगर कहीं समय न रहा, तो मेरे पास सदूभाऊ (सदाशिवराव) मराठेका जो पत्र था, वह डाकसे मैं आपके पास भेज रहा हूँ। मेरा इस पत्रका काम हो चुका है। आप उसे पढ़ लें और फिर कोल्हारपुमें श्री. गोविंदराव मराठे (मोहन टांकीज़के मनेजरको) दे दें।’

डॉक्टर सानेको इसी समय नामिक जाना पड़ा इसका मुझे बड़ा दुःख हुआ। ‘हरसिंगारके फूल’ कहानीसे पैदा हुई अनेक शंका-कुशंकाओंके बारेमें मुझे उनसे बातें करनी थीं। लेकिन हम किसी पदार्थ-संग्रहालयको बड़ी उत्सुकतासे देखने जावें और उसी दिन वह बंद हो ! ठीक उसी तरहकी स्थिति हो गयी मेरी। लेकिन मानने सदूभाऊका पत्र भेज दिया था। इसके कारण मेरी बंबई-यात्रा बिलकुल ही निरर्थक नहीं होगी, यह सोचकर मैंने अपने मनको संतोष दिया।

सानेका संदेश पढ़नेके बाद डाकियाकी ओर मेरी आँखें लगातार लगी हुई थीं। इतनी उत्सुकतासे जीवनमें डाककी बात मनुष्य दो ही प्रसंगोंपर जोहता है : परीक्षाका रिज़ल्ट अथवा पत्नी जब मायकेमें होती है !

अंतमें डाकियाने अपने आगमनकी घंटी बजायी और मैंने डॉक्टरके द्वारा भेजा गया वह मोटा लिफाफा हाथमें लिया और एक आरामकुर्सीपर जाकर लेट गया।

गोविंदरावका और मेरा काफी अच्छा परिचय था। इसके बावजूद मैंने उनके बड़े भाई सदाशिवरावको कभी नहीं देखा था। देखा भी कैसे? कोल्हापुर आये मुझे सिर्फ तीन ही साल हुए थे। परंतु यदि अश्वरामें मनुष्य पहचाननेमें कोई भूल न होती हो, तो एक बात किसीको भी स्वीकार करनी पड़ती कि उनका फरार हुआ बड़ा भाई सदूभाऊ सीधा एकमार्गी और सरल स्वभावका आदमी था।

लेकिन उसके पत्रका पहला ही वाक्य पढ़कर मैं चकित हो गया। जब मुझे गोविंदरावसे यह मालूम हुआ था कि वह अपनी पत्नीसे तंग आकर घरमें भाग गया है, तब मैंने उसके बारेमें थोड़ी अधिक पूछताछ की थी। लेकिन इस पूछताछमें, सिवाय इसके कि वचनमें उसे कसरतका बड़ा शौक था, और कोई विशेष जानकारी मुझे न मिली थी।

इस कल्पनासे कि उसके पत्रमें भी पहलवानी पेयोंका ही प्रतिबिम्ब पड़ा हुआ दिखाई देगा, मैंने उसे पढ़ना शुरू किया था। लेकिन —

उसका पहला वाक्य पहलवानका न था; वह कविका था।

‘मेरा एक मन अभी भी घरमें ही चक्कर काट रहा है! परंतु मेरा दूसरा मन — उसे लग रहा है कि कब एक बार इस घरसे बाहर जाता हूँ! गोविंद, क्या तुमने कभी देखा है कि सूअरको कैसा मारते हैं? कुछ समयके पहले मैं गोमान्तक गया था। जब कैसलरौक स्टेशनपर गाड़ी पहुँची, उस समय रोगटे खड़े कर देनेवाली चीखें कानोंमें पड़ने लगीं। जब गाड़ी रुकी, तब मैं जानबूझकर नीचे उतरा और मैंने आसपास नज़र दौड़ायी। स्टेशनके नज़दीक ही एक सूअरको मारनेका पवित्र कार्य हो रहा है! बहुतसे लोग उस अभागे प्राणीपर लहू बरसा रहे थे। मैंने उसी तरफ़के एक मुसाफिरसे पूछा, — ‘क्यों भैया, इसका एकदम प्राण क्यों नहीं ले लेते ये लोग?’

उसने यह उत्तर दिया, — ‘बिना इसतरह मारे सूअरका मांस स्वादिष्ट नहीं लगता!’

मुझे लगता है — भाग्य भी मनुष्यको इसी तरह तंग करता है! वह उसे

एक घाव दो टुकड़े करके नहीं मार डालता। सूअरका मांस स्वादिष्ट लगे इसलिये उसे कष्ट दे देकर मारनेवाले लोगोंकी तरह वह भी —

छोड़ो इसे ! नसीबको गालियाँ देकर हम उसे हरा नहीं सकते ! उससे लड़नेकी ताकद यदि मुझमें होती तो —

बचपनमें एक एक घंटेतक ज़मीनसे न हटते हुए मैं अपनेसे बड़े बड़े साथियोंके भी छक्के छुड़ा देता था। अगर कुश्ती बराबरीकी होती फिर भी मुझे लगता कि मैं ही जीता हूँ। चीमड़ साथीके नामसे मेरी ख्याति थी। परंतु दुर्भाग्यके साथ उस चीमड़पनसे लड़नेमें अब मुझे कोई लाभ नहीं लगता। कुश्ती शुरू होते ही कोई साथी डटकर अखाड़ेसे भाग जावे, उस तरह मैं गिरस्तीसे भाग जा रहा हूँ। आगे चलकर मैं क्या करूँगा यह स्वयं मैं भी नहीं जानता ! कहते हैं कि भविष्यकाल भाग्यवानोंके लिये हुआ करता है। मुझे जैसे अभागे मनुष्योंको उसकी आँखसे आँख मिलानेकी हिम्मत ही नहीं पड़ती। आजतक मुझे ऐसा लगता था कि अपने भाग्यका यह रोना मैं किसीसे भी न कहूँ ! पर —

तुम शायद यह सोचोगे कि गिरस्तीका सारा भार तुमपर डालकर मैं एक भीरुकी तरह भाग गया, इसलिये —

गोविंद, तुम्हारा भाई भीरु नहीं था ! उसे उसकी बद-किस्मतीने डरपोक बना दिया। उस बद-किस्मतीका नाम —

पत्नी !

बचपनमें मैंने काव्यकी पुस्तकोंमें पढ़ा था कि गिरस्ती कल्पवृक्ष है। लेकिन मुझे अनुभव बिलकुल निराला हुआ। वह विषवृक्ष है !

क्या, तुम्हें इसकी कल्पना है कि मेरा विवाह एक अमीरकी लड़कीसे कैसे हुआ ? उसे मंगल था। उसके ज़मींदार आपने हजार कोशिशें कीं, पर उसे मंगली वर नहीं मिला। मेरे दुर्भाग्यसे मेरी कुंडलीमें मंगल निकल गया ! यह आशा उत्पन्न होते ही कि एक ज़मींदारकी लड़की बहू बनकर अपने घरमें आयेगी, माँको लगा कि अंबादेवीने उसपर बड़ी कृपा कर दी है। पिताजीको आकाश छोटा हो गया !

लेकिन मुझपर किसी भी देवताने कृपा न की। मेरे हिस्सेमें एक राक्षसनी ज़रूर आ गयी। विवाहके बाद मुझे इसका पता तक न चला कि

स्वर्ग कहाँ है। परंतु यह जरूर मैं शीघ्र ही जान गया कि नरकमें मैं बहुत दूर नहीं हूँ।

विवाह हुआ उस समय मुझे एक लागडॉटकी कुश्ती लड़नी थी। मुझे विश्वास था कि मैं यह कुश्ती जरूर जीतूँगा। लेकिन मेरे साथी - कोई मज़ाकसे और कोई ईर्ष्यासे लगातार मुझे अपमानित और लज्जित करने लगे। उन्हें पूरा विश्वास हो चुका था कि विवाह हो जानेके कारण मैं पत्नीके चक्करमें पड़ जाऊँगा और यह कुश्ती हार जाऊँगा। वे जो कुछ कह रहे थे उसपर मुझे भी विश्वास था। हमारे अखाड़ेमें कैलेंडरपर लंग स्त्रीका चित्र भी नहीं रखा जाता था। स्त्रीके दर्शनसे पहलवानके मनमें अटसंट विचार आने लगते हैं और फिर —

ये सारी कल्पनाएँ शायद झूठ भी हों। परंतु उस समय उनपर मेरी इतनी श्रद्धा थी, कि विवाह होनेके बाद मैंने तुरंत यह निश्चय किया कि पत्नीसंबंधी विचार मनमें नहीं आने दूँगा।

दूसराका जो अनुभव हो, परंतु इस निश्चयके पालनमें मुझे कोई मुश्किल न हुई। तुम हँसोगे। शायद तुम्हें यह सच भी न लगेगा। परंतु मैं सौगंद खाकर कहता हूँ - शादीके बाद मैंने जो पहला स्वप्न देखा, उसमें स्त्री न थी, चुंबन न था, कुछ भी न था। एक कुश्तीका अखाड़ा था और मैं तालियोंकी कड़कड़ाहटके बीच उसमें उतर रहा था।

मेरा निश्चय पूरा होगा, ऐसा मेरा विश्वास था। पर —

बीचहीमें मेरी पत्नीके पिताका पत्र आया कि वह मायके पहुँचा दी जाये। उसके साथ दूसरा कौन जाता? तुम उस वक्त बहुत छोटे थे।

मैं ही उसके साथ गया। समुरजीने मुझसे चार-पाँच दिन रहनेका आग्रह किया। उसे न मानना उचित न था। इसलिये मैं रह गया। मुझे सास थी ही नहीं। घरकी सारी तालियाँ एक रसोईदारिनके जिम्मे थीं।

वहाँ जानेपर पहली ही रातको —

यह देखनेके लिये कि पैरोंमें ठंडा ठंडा क्या लग रहा है, मैंने आँखें खोलीं। सर्पके भयसे मैं जाग गया था। लेकिन मेरे पैरोंपर सर्प नहीं सरसरा रहा था। वे हाथ - मेरी पत्नी थी वह !

उसके स्पर्शसे मुझे आनंद हुआ, यह मैं अस्वीकार नहीं करता। मेरे मनमें यह भी आया कि उससे खूब खूब बातें करूँ। पर —

शरीरसुखको छोड़कर पतिसे उसे किसीकी भी इच्छा न थी। मेरे उसे समझाते ही उसने मुझे धमकी दी,—‘यदि मेरे मन जैसा न हुआ, तो मैं चिह्नाकर पिताजीको पुकारूँगी!’

पराये घरमें एक तमाशा खड़ा न हो इसलिये मैं चुप रहा। परंतु उसके इस विचित्र साहसके कारण मेरे मनमें एक प्रकारका मनमुटाव उत्पन्न हो गया। स्त्रीमुलभ लज्जा उस नवविवाहितामें न हो, इसका मुझे आश्चर्य भी हुआ।

व्यर्थ ही कहानीको लंबी नहीं करूँगा। पहली ही भेटमें उसने मेरे मनको यह विचित्र धक्का दिया था! आगे चलकर जब हम लोग पिताजीका सूतक मना रहे थे, उस समय भी एक दिन इस प्रसंगकी पुनरावृत्ति हुई।

मैं दुखसे चूर हो गया था। और वह —

मुझे यही लगने लगा कि वह पिछले जन्ममें कोई राक्षसनी होगी!’

मैं बीचहीमें ठहरकर सामने देखने लगा। मुझे नमूनाईका हाल याद हो आया जो सानेने मुझसे कहा था। मेरे मनमें यह कल्पना आ गयी कि पुरुष और अत्याचारका जगके द्वारा कर दिया गया मेल एक संकेत है। स्त्रियाँ भी अत्याचारी हो सकती हैं — यह सदूभाऊके पत्रसे —

‘राक्षसी-महत्वाकांक्षा’^१ की ‘मदालसा’^२— साहित्यके उदाहरणोंकी क्या ज़रूरत? राजघरानेसे लेकर फिल्मी दुनियातक इस स्वभावकी स्त्रियाँ द्वारा मचाये गये गड़बड़झालोंकी अनेक सत्यकथाएँ मेरी आँखोंके सामने खड़ी हो गयीं।

सदूभाऊके पत्रकी ओर देखकर मेरे मनमें आया, देशभक्तिके नामपर लाखों लोगोंके प्राण लेनेवाले युद्ध जिस तरह दुनियामें हो रहे हैं, उसी तरह पवित्रताके परदेकी ओटमें एक दूसरेसे ऊब उठे हुए युगलोंको एक पिंजड़ेमें बंद कर देनेवाली विवाहकी परम्परा भी अखण्ड रूपसे जारी है। गृहस्थीको पुराने लोग

१ एक मराठी नाटक।

२ उस नाटककी एक स्त्री-पात्र।

समुद्रकी उपमा दिया करते थे ! वह अत्यंत समर्पक है। परंतु समुद्रमें तैरनेके लिये मनुष्यको 'लाइफ़ बोट'की ज़रूरत होती है। उसके बदले यदि एक पत्थर उसके गलेमें बाँधकर उससे तैरनेके लिये कहा जाय तो—

हवाके झोंकेसे मेरे हाथमें रखे पत्रके पन्ने फड़फड़ाये। मानो सदूभाऊ ही मुझसे कह रहा था— 'अभी क्या हो गया है ? आगे सुनो !'

मैं आगे पढ़ने लगा।

'यह बात न थी कि मैं विरक्त हो गया था अथवा मुझे शरीरसुखकी इच्छा न होती थी। परंतु बीमार मनुष्यको कोई आप्रहंसे पकवानोंका भोजन परोसने लगे तो, क्या उसे सुख होगा ? मेरी पत्नीके दिमागमें यह कभी भी न आया कि मनुष्यका मन भी अनेक बार बीमार रहा करता है !'

धीरे धीरे मेरा मन पत्नीकी माँसे तुलना करने लगा। माँकी कृश मूर्त्तिके प्रति मुझे बचपनसे बड़ा आदर था। राजा शिविने एक कबूतरकी प्राण-रक्षाके लिये स्वयं अपने शरीरसे मांस काटकर दिया था न ? हमारी माँ भी कुटुम्बके लिये जीवन-भर वही करती आयी है, ऐसा मुझे बचपनसे लगा करता। हमेशा मेरे मनमें आता कि उसकी कृशताका कारण यही होना चाहिए।

यह तो तुम देखते ही आये हो कि माँके हिसाबसे तुम्हारी भाभी कितनी मोटीताज़ी है। उसकी जब माँसे तुलना करने लगता, तो एक विचित्र कल्पना रह रहकर मेरे मनमें आती—दूसरोंके रक्त-मांसपर ज़िदा रहनेवाले लोग ही इस तरह मोटेताज़े होते हैं ! दूसरोंके लिये जो अपना जीवन खपाया करते हैं, उनके शरीरपर इतना मांस कहाँसे आयेगा ? मेरा मन कहने लगा—अपनी माँ धीरे धीरे जलती जानेवाली अगरबत्ती है और मेरी पत्नी तेलकी जानपर कूदती और हँसती रहनेवाली दीयेका ज्योति है।

कौन जाने गर्मीके दिनोंमें बिच्छू कहाँसे आ जाते हैं; परंतु वे हर रोज़ घरमें निकलते रहते हैं। मनुष्यका मन जब व्याकुल होने लगता है, तो विचित्र विचार इसी तरह उसके मनमें बार बार झोंकने लगते हैं। उन विचारोंकी धुनमें बिलकुल पागल हो जाता है वह। पिताजीके मृत्युके बाद

ब्रस-छः महीनोंमें शरीरमुखको छोड़कर और कुछ न देखनेवाली पत्नीके कारण मेरे मनमें इतने विचित्र और विलक्षण विचारोंकी भीड़ उमड़ने लगी — किसी मधु-छत्तेको कोई उकसा दे और फिर मधुमक्खियोंके झुंडके झुंड गरजते हुए वृक्षके तले सोये हुए मनुष्यपर टूट पड़े; ठीक वही स्थिति मेरी हो गयी थी।

रह रहकर मेरा मन पत्नीकी माँसे तुलना किया करता। शरीरकी गठन, आँख, स्वभाव, बर्ताव, किसी भी विषयमें उसका माँसे साम्य न था। पिताजी कितनी ही आँखें दिखाते, फिर भी माँ कभी भी आँख उठाकर उनकी ओर न देखा करती। उनके मुँहसे कठोर शब्द बाहर पड़ते फिर भी वह कभी पुटपुटाकर भी उत्तर न दिया करती। ऐसी माँकी छत्र-छायामें मैं बढ़ा था, इसलिये —

यदि सब लिखने लगूँ तो एक उपन्यास हो जायेगा। लेकिन यह उपन्यास दूसरे उपन्यासोंकी तरह दिलचस्प न होगा। लेखक जो उपन्यास लिखा करते हैं, उनमें एक पुरुष और एक स्त्री एक दूसरेमें प्रेम करते हैं और ऐसा दिखाया जाता है कि दुनिया उनके प्रेममार्गमें कोंटे फैला देती है। ये सारे लेखक या तो अनाड़ी होने चाहिए अथवा कम-से-कम दांगी तो जरूर ही होने चाहिए। बेचारोंके दिमागमें एक मामूली बात नहीं आती — विवाहके पहले प्रेममार्गपर फूल फैले हुए होते हैं किंतु विवाह हो जानेपर वे फूल सूख जाते हैं, उनकी पँखुड़ियाँ हवामें उड़ने लगती हैं, और फिर उनके नीचे छिपे हुए कोंटे — बबूलके, थूहरके, नाना प्रकारके कोंटे पद पदपर पैरोंमें चुभने लगते हैं। प्रेमकहानी लिखनेवाले लेखक जहाँ अपनी कहानियाँ समाप्त करते हैं वहीं जीवनकी सच्ची कहानियाँ शुरू होती हैं। इतना समझने लायक अकल तो उनमें होती ही है कि बाज़ारमें चॉकलेट बिक जाते हैं, कोयनेल नहीं बिकते !

लिखते लिखते मैं जाने कहाँके कहाँ बह गया ! लेकिन जब मौत नज़दीक आ जाती है, तो मनुष्यको लगने लगता है कि क्या क्या बोलें और क्या क्या न बोलें। मेरा भी वही हो गया है। घरबार और भाई-बहन आदिको छोड़कर चले जाना मुझे मृत्युकी तरह ही कठिन लग रहा है। मैं महसूस करता हूँ कि यह एक तरहकी आत्महत्या ही है; लेकिन —

गोविंद, माफ़ करना। कोई भी मनुष्य आत्म-हत्या यों ही नहीं करता। कष्टोंसे ऊबकर अथवा दुखोंके कारण विरक्त होकर ही मनुष्य मौतको गले लगानेके लिये दौड़ पड़ते हैं। मैं भी इसी तरहके एक असहनीय विचित्र दुखके कारण —

व्यर्थ ही अपनी रामकहानीको अब अधिक लंबी नहीं करता ! पहली भेंटके समय ही पत्नीके प्रति मेरे मनमें जो अचाह उत्पन्न हुई वह लगातार बढ़ती गयी। मैंने उसे उसके सच्चे रूपमें देखा, तो उसके मायकेमें उस रातको ! विवाहकी वेदीपर जब 'अंतरपट' दूर हुआ, तब उसकी ओर मैंने ध्यानसे देखा था। परंतु उस देखनेमें सिर्फ नवीनताका आनंद था। छोटे बच्चेको कोई खिलौना मिल जाये, तो वह उसकी ओर सराहनाभरी दृष्टिसे देखने लगता है न ? उसी तरह था मेरा वह देखना।

अपने पुराने तरीकेके कारण विवाह होनेके बाद आठ-पन्द्रह दिनतक उससे मेरी बातें न हुईं। स्नेहियों और साथियोंके चिढ़ानेके कारण मैंने भी उसकी ओर विशेष ध्यान न दिया।

उसके मायकेमें उस रातको एक घड़ीके भीतर मेरे सारे सुख-स्वप्न भंग हो गये। अधाधुंध खेलनेवाला छोटा लड़का मेज़पर रखी सुंदर फूल-दानीके टुकड़े टुकड़े कर डाले, उस तरह उसके निर्लज्ज बर्तावके कारण मेरी स्थिति हो गयी। जब याद आती है, तो उस रातका वह विचित्र दृश्य मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो जाता है।

और जब माँकी याद आती है तब —

उस स्मृतिमें भी इसी तरहकी एक रात है; लेकिन कितनी सात्त्विक स्मृति है वह ! मैं ज्वरसे बिस्तरपर बेहोश पड़ा हुआ हूँ। सामने रामचन्द्रजीकी तसवीर है। माँ उस तसवीरके चरणोंमें गिरकर उससे कहती है — 'मुझे ले जाओ, लेकिन मेरे सदूको जीवदान दे दो।' उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी है। वही आँसू मेरे बदनपर गिरते हैं और मेरा ज्वर उतरता है। माँके उन शब्दोंको टालनेका भगवानको भी साहस नहीं होता।

एक बार लगता है — इतनी सज्जन माँकी ममता न मिलती, तो शायद निर्लज्ज और उदंड पत्नीसे भी मेल करनेकी इच्छा मेरे मनमें

पैदा हो जाती। लेकिन छायासे धूपमें आनेवाले मनुष्यको ही धूपका कष्ट अधिक होता है। मेरे बारेमें भी वही हुआ।

जितना लिखूँ उतना थोड़ा ही है। कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने निजके जीवनपरसे एक खासा उपन्यास लिख सकता है। यह बात मुझे पूर्ण रूपसे जँचती है। लेकिन मनको डंक मारनेवाले बिच्छुओंकी वेदनाओंको भुला देनेके लिये मैं आजकल उपन्यास बहुत पढ़ता हूँ — यह यद्यपि सच है, फिर भी वैसा कोई उपन्यास मुझसे लिखने न बनेगा। और जिसे दुनियाको छोड़कर कहीं दूर चले जाना है, वह इस क्षणमें पड़े भी क्या ?

इस उपन्यासके आगामी प्रसंगोंका यदि थोड़ा भी वर्णन करूँ, फिर भी तुम्हें मेरे दुखकी कल्पना हो जायेगी।

पिताजीकी मृत्यु हो गयी थी। मैं इस महान् दुखको थोड़ा भी भूले इसलिये मैं रोज रातको उसे ज्ञानेश्वरी, दासबोध^१ अथवा संत तुकारामकी गाथा आदि धार्मिक ग्रंथ पढ़कर सुनाया करता था। जबतक वह न कहती कि बस करो, तबतक मैं अपना पढ़ना बंद नहीं करता था। उम्रके कारण और दुखसे वह बारह-एक बजेतक जागती रहती थी। उसे अच्छा लगे, इसलिये मैं इतनी राततक पढ़ता रहता था। यह बात थोड़े ही है कि मुझे वेदान्तमें बड़ी रुचि थी अथवा परमार्थकी प्यास लगी हुई थी ! लेकिन एक बात मैं कभी भी नहीं भूला — बुढ़ापा दूसरा बचपन होता है। इस बचपनमें छोटे लोगोंको सयानोंकी सँभाल करनी पड़ती है। मेरे बचपनमें मेरी माँने मेरे हठ पूरे किये, मेरी सेवा की, मुझे सम्हाला, मुझपरसे अपने प्राण निछावर कर दिये। बुढ़ावस्थामें उसकी सेवा करके ही, उस ऋणको मैं चुका सकता हूँ।

परंतु मेरी पत्नीको मेरी इस भावनाकी कोई कद्र न थी, रातको जब बारह-एक बजेके करीब मैं अपने कमरेमें कदम रखता तो वह ईर्ष्यासे हँसती और कहती — ‘आइये, कथावाचकजी !’ इस समयका उसका वह ताना, उसके अपमानकारी वे शब्द — उन्हें कहनेकी पद्धति — माँके

दुखके विषयमें उसकी लापरवाही और शरीर-सुखकी वह तीव्र इच्छा — उन अनुभवांसे मेरा मन बिलकुल ऊब उठा ! फल जब अधिक पक जाता है, तब वह सड़ता है और उसकी बदबू आती है । उसकी शरीर-सुखकी आसक्ति मुझे इसी तरह लगने लगी । मानो उसके धनी बापने मुझे सिर्फ उसी कामके लिये खरीद लिया था ।

यह दुख कहता भी किससे ? माँ बहुत बड़ी, तुम बहुत छोटे और पतिके हरिद्वार चले जानेके कारण ताई^१ स्वयं ही दुःखी । मैं मनमें कहा करता — यदि मनुष्यको कैंसर या तपेदिक हो जाये, तो कम-से-कम उसके लक्षण तो बाहर दीखने लगते हैं । लोग उस रोगीपर दया करने लगते हैं । लेकिन इन रोगोंसे भी अधिक भयंकर मानसिक दुख मनुष्यको संसारमें चुपचाप सहन करना पड़ते हैं । कोई एक शब्दसे भी उनके इन दुखोंकी पूछताछ नहीं करता ।

मैं यह मुँदी मार सह रहा था तभी हमारे पिताजीके भाईबंदोंने हमपर नालिशें ठोक दीं । मुखसे प्राप्त होनेवाली रुखी सूखी रोटीमें उन्होंने धूल मिलाना शुरू कर दिया । घरमें जाकर जबतक वकीलोंके जेब न भर दें तबतक अदालतमें उनके मुँह नहीं खुलते । अंतमें उनके जेब भरनेके लिये मैंने बंबई जाकर नौकरी कर ली !

मैं पत्नीको अपने साथ बंबई नहीं ले जाना चाहता था । लेकिन आगे चलकर माँने बहुत आग्रह किया । इसलिये मैंने बंबईमें एक घर लिया और वहाँ अपनी गृहस्थी जमायी । वहाँ मुझे टाइफाइड हो गया । अठ्ठाईस दिनके बाद मैं बिस्तरसे उठा । अधिक छुट्टी मिलना सम्भव न था । इसलिये मैं तुरंत अपने कामपर हाज़िर हो गया ।

नौकरी करके शामको जब घर लौटता तो इतना थक जाता कि —

गन्ना पेरनेके बाद जो चिपाड़ा बच रहता है, उस तरह मैं हो गया था उन दिनों ।

शीघ्र ही मेरी पत्नी बंबईसे ऊब उठी । उसने मायके जानेकी इत्

१ बहनके लिये आदर-सूचक मराठी शब्द ।

पकड़ी। उसके उदास बर्तावके कारण मुझे भी क्रोध आ जाता; इसलिये उसे मायके चले जानेकी मैंने खुशीसे अनुमति दे दी।

जानेके दिन बड़ी गड़बड़ी होनेके कारण मैं उसका ट्रंक भरने लगा। इस ट्रंकके सामानको ठीक तरहसे जमाते हुए मेरे हाथ एक नोट-बुक लगी। कई स्त्रियोंको कहावतें या भजन नोट करके रखनेकी आदत हुआ करती है। इस नोट-बुकमें भी ऐसा ही कुछ मज़मून होगा, मैं उसे जहाँके तहाँ रख रहा था। लेकिन—

संशय मनुष्यका पिछले जन्मका बैरी होता है। मुझे यह जाननेकी इच्छा हुई कि आखिर देखू तो इसे कौनसी कहावतें और कौनसे भजन अच्छे लगते हैं। इसलिये मैंने वह नोट-बुक खोली।

फूलोंकी टोकनीसे तक्षक निकल पड़े, उस तरह मेरी स्थिति हो गयी।

मैंने जो पृष्ठ खोला था उसपर एक गज़ल उतारी हुई थी। वह सिर्रि श्रृंगारिक ही नहीं थी! करीब करीब अश्लील थी! उसकी पहली ही दो पंक्तियाँ इतनी घिनौनी थीं कि—

ऐसा न लगता था कि वे अक्षर मेरी पत्नीके हैं। इसलिये मैंने नोट-बुकका पहला पृष्ठ उलटाया। उसपर एक पुरुषका नाम था।

नोट-बुकके पन्ने उलटाते हुए उसमें एक पत्र मिला। पत्र बड़ी घनिष्टताका था। उसके नीचे दस्तखत न थे। सिर्रि 'तुम्हारा बालमित्र' लिखा हुआ था।

मेरे दिलमें आया कि इस नोट-बुकके बारेमें उससे कुछ पूछूँ। लेकिन मैंने अपनी इच्छाको बलात रोक लिया।

आगे चलकर वह मायकेमें ही अधिक रहने लगी। माँके आग्रहसे मैं उसे महीने दो महीनेके लिये बंबई ले आया करता था। परंतु उसके सहवासमें मुझे रत्तीभर भी सुख न हुआ करता।

माँकी मृत्युके बाद वह सालभरतक मायकेमें ही थी।

एक दिन अचानक मेरे ससुरका तार आया। उस तारमें लिखा था, वह बहुत बीमार है।

कर्तव्य और दया सगे भाईबंद हैं। मैं दौड़ता हुआ उसे देखने गया; लेकिन—

मैं वहाँ गया उस समय वह अच्छी तरह हँस-खेल रही थी। बीमारीसे उठे मनुष्यकी तरह उसका चेहरा भी नहीं दीख रहा था। मेरी समझमें नहीं आता था कि उसने यह बीमारीका नाटक क्यों किया !

उस दिन मैंने नौकरसे अपना बिस्तर बाहर बगमदेमें लगानेके लिये कहा। उसने उस तरह लगा दिया। उस बिचारेका उसमें कोई अपराध न था। परंतु सिर्फ इतनी-सी बातपर ही वह उसपर बुरी तरह चिगड़ पड़ी। उसने ज़बरदस्ती वह बिस्तर उठवाया और अपने कमरेमें जाकर लगवाया।

इस सारे प्रकारसे मुझे बड़ी अरुचि हुई। मैं शर्मसे बिलकुल गड़ गया ! पत्नीकी बीमारीका समाचार पाकर मैं उसके स्वास्थ्यकी पूछताछ करने यहाँ आया था ! चार दिन मज़ा उड़ानेके लिये नहीं !

घरके लोग मेरे विषयमें क्या कहेंगे —

लेकिन मेरे मनकी इस चुभनकी उसे कोई परवाह न थी। विवश होकर मैं उसके कमरेमें सोया। लेकिन पहलेकी तरह मैंने उसकी धमकियोंकी परवाह न की और उसकी विवशताका मैं शिकार भी न हुआ। बीमार पत्नीके विषयके अपने कर्तव्यका पूरा करनेके आनंदमें तीन-चार दिनोंके बाद मैं बंबई लौट आया। इन चार दिनोंमें मेरे मनको बेचैन कर देनेवाली एक घटना ज़रूर हुई। शहरका एक रंगीला आदमी मेरी पत्नीका कुशल समाचार पूछनेके लिये दो-तीन बार आया। एक बार तो वह बिलकुल उसके बिस्तर-पर ही जाकर बैठ गया। कहते हैं पहले वह किसी नाटक कंपनीमें था। बीच-बीचमें वह आप ही आप कोई गीत गुनगुनाता। बहुधा कोई श्रृंगारिक फिल्मी गज़ल हुआ करती वह।

उसकी इस गाढ़ी मित्रतापर मैंने अपनी नापसंदगी ज़ाहिर की। परंतु मेरी पत्नीने मेरी बात हँसीमें उड़ा दी।

मेरे बंबई आनेके डेढ़ महीने बाद मेरे ससुरका पत्र आया —

उसे दोहद-लक्षण शुरू हो गए थे।

मेरे सारे बदनमें जैसे आग लग गयी। अब मुझे पूरी कल्पना आ गयी कि उसने बीचहीमें तार करके मुझे क्यों बुलवा लिया था ! वह निर्लेजताका नाटक —

ऐसी स्त्रीके साथ आगे गृहस्थी चलाना मेरे लिये असंभव है ! उस रंगीन आदमीसे पैदा हुए शिशुको अपनी गोदमें खिलाना —

और यदि मनका उतना बड़प्पन दिखाऊँ भी, तो आखिर उसका फल मुझे क्या मिलेगा ? मेरी मूर्खतापर वह हँसती ही रहेगी ! एक पाप जब पच जाता है, तो सौ पापोंका भी फिर मनुष्यको भय नहीं लगता । यह सब बरदाश्त करनेकी ताकत मुझेमें नहीं है । मनुष्य काढ़ेको खुशीसे पी लेगा, पर विषको ?

उसके पापको उसीके मत्थे मढ़ना पहले ही कठिन है । ऊपरसे दोनों कुलोंकी प्रतिष्ठाका प्रदन ! कल तुम और ताई दुनियामें मूढ़ नहीं दिखा सकोगे । तुम सब लोगोके सुखमें इस तरह आग लगानेकी अपेक्षा —

मैं ही कहीं चला जाता हूँ । मेरी खोज न करना । जिस दिन मेरा विवाह हुआ, उसी दिन ज़िंदगीके सुखकी बाजी मैं हार गया । इसलिये —

मेरी अंतिम प्रार्थना यही है कि भगवान तुम्हें और ताईको सुखी रखे ।

तुम्हाग अभागा भाई —

सदाशिव '

• • •

पत्र समाप्त होते ही मुझे क्षण-भर अच्छा लगा । किसी तहखानेके अँधेरेमें चलते समय मनुष्यको जो बेचैनी मादूम होती है, उस तरह वह पत्र पढ़ते हुए मुझे हो गया था ।

उस पत्रके सद्भाऊके अंतिम शब्द — 'मेरी अंतिम प्रार्थना यही है कि भगवान तुम्हें और ताईको सुखी रखे !'

उनका स्मरण होते ही टैवकें निर्दय खेलका बोध होकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये । सद्भाऊकी ताईको पहले पतिसे तो सुख मिला ही न था; परंतु सुखकी आशासे किया हुआ पुनर्विवाह भी उसे तापदायक ही हो गया था । उसके दूसरे अभिनेता पतिका उसपर वह जुलम —

मेरे मनमें आया — सच तो यही है कि मनुष्य निष्ठुर निसर्गके खिलौने हैं । हज़ारों वर्षोंसे बढ़ते आ रहे सुंदर शहरको भूकम्पके एक धक्केसे मटियामेट करनेमें निसर्गको कभी दुख हुआ है क्या ? मनुष्यके मनोविकारोंका भी वह इसी तरह दुरुपयोग करता था । शान्त धरणी एकदम हिलने लगे, उसी तरह मनुष्य

भी किसी एक विकारसे प्रभुब्ध हो जाते हैं और गृहस्थी, साथी, मुख, बल्कि जीवनका साग सौन्दर्य बात-की-बातमें इस प्रशोभकी वंदीपर बलि हो जाते हैं।

यदि टेलिफोनकी घंटी न टनटनाती तो कौन जाने विचारांगके इस प्रवाहके साथ मैं कहाँ बहता हुआ चला जाता !

फोनपर मैं बातें करने लगा, — 'हैलो !'

'हैलो ! ग्वांडेकर हैं क्या ?'

'मैं ग्वांडेकर ही बोल रहा हूँ। आप कौन हैं ?'

'मैं हूँ डॉक्टर साने। अभी नासिकमें लैटा हूँ। करीब आध घंटेमें आपके घर पहुँच रहा हूँ। कहीं बाहर न जाइयेगा !'

• • •

मेरी समझमें न आता था कि डॉक्टर साने मेरे घर इतनी दिलचस्पीसे क्यों आ रहे हैं — शायद वे नासिकका सब हाल मुझमें कहना चाहते हों। शायद —

तर्क करना ऑक्मिचौलीके खेलका तरह ही होता है। ऑक्मिचौलीमें हमारे बिलकुल नज़दीक ही छिपा हुआ साथी हमें कहाँ दीखता है ? तर्क करने समय भी मनुष्यकी यही हालत होती है। उसे ठीक स्वाभाविक बात ही नहीं सूझ पड़ती।

डॉक्टर साने जो इतनी गड़बड़ीसे आये थे तो मुझे अपने घर भोजनका निमंत्रण देने। उनकी पत्नीका आग्रह था कि मुझे यह निमंत्रण स्वीकार करना ही चाहिए। जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि उनकी पत्नी मुझे बचपनमें पहचानती है, तब तो मैं चकरा ही गया।

परंतु मेरा चकराना डॉक्टरके ध्यानमें न आया होगा। मेरे सामने पड़े हुए सद्भाऊके पत्रकी ओर देखकर वे हँसते हुए बोले, — 'यह पत्र कैसा लगा आपको ?'

किसी मनोरंजक उपन्यासके बारेमें कोई पूछे, उस तरह यह डॉक्टरका प्रश्न मुझे लगा।

मैंने उत्तर दिया, — 'बहुत भयंकर पत्र है यह !'

'भयंकर ?' — डॉक्टर पहलेसे भी अधिक जोरसे हँसे। तुरंत ही वे बोले, 'शल्य-क्रियाका नाम सुनते ही आपके रोंगटे खड़े हो जाते हैं; परंतु हर रोज पचीस शल्य-क्रियाएँ करनेवाले डॉक्टरसे पूछिये। वह कहेगा — पचीस पेड़ोंके फूल तोड़ने और शल्यक्रियाएँ करनेमें कोई बहुत अंतर नहीं है।'

मैंने तरस खाते हुए कहा,—‘गरीब बिचारा सदूभाऊ !’

डॉक्टर मृदु स्वरमें बोले,—‘और उसकी वह अभागिनी पत्नी !’

‘अभागिनी या दुष्ट ?’ यह प्रश्न बिलकुल मेरी जिह्वापर आ गया था। मैं वह पूछ ही रहा था तभी डॉक्टर बोले—

‘इस विषयमें सारा दोष केवल उस स्त्रीका ही नहीं है ?’

‘आपका मतलब ?’

‘वह यदि मैं अभी कहने लगू तो फिर आप हमारे घर भोजनके लिये आनेमें टालमटोल करने लगेंगे। इसलिये आपको एक प्रामेसरी नोट लिख देता हूँ। रातको भोजनके बाद उस स्त्रीका सारा हाल सुना दूंगा—’ मुझसे हाथ मिलाते हुए वे बोले।

‘अच्छा ! ठीक आठ बजे आ जाऊंगा !’

मैंने घड़ीकी ओर देखा। हालहीमें पाँच बजे थे। अभी तीन घंटे—

घोड़ेको कोड़ा मारकर आगे बढ़ा सकते हैं, पुलिसको चकवा देकर मोटरकी गति फी घंटा अस्सी मील की जा सकती है, परंतु घड़ीके कार्यकी गति कोई कभी नहीं बढ़ा सकता !

मुझे ऐसा लगा कि कब आठ बजते हैं !

● ● ●

७

विमल

डॉक्टर सानेके घर जातेतक मेरा मन बिलकुल अस्वस्थ हो गया था ।

मेरे भीतरका कहानी-लेखक सदूभाऊके पत्रका दूसरा पहलू सुननेके लिये बहुत उतावला हो गया था ! दूसरे दिन किसी मेलेको जाना हो, फिर भी पिछली रातमें जागते ही छोटा बच्चा माँसे पूछता है न 'दिन निकल आया क्या'? कहानी लेखक श्री. खाडेकरकी भी हालत उसी तरह हो गयी थी । बिचारेने तीन घंटेमें दस चार घड़ीकी ओर देखा होगा । परंतु उस देखनेका क्या फायदा था ? घड़ी सच्ची तत्त्वनिष्ठ सीपाही होती है । राजाके क्रोधकटाक्षसे उसकी गति मंद नहीं होती अथवा रमणीके प्रेमकटाक्षसे वह बढ़ती भी नहीं है ।

लेकिन कहानीकारकी तरह ही मेरे भीतरका मनुष्य भी अधीर हो गया था । रह रहकर मेरे मनमें आ रहा था— 'डॉक्टर सानेकी पत्नी मुझे जानती है, पर मैं उसे — '

यही कहिये न कि घरानांक इतिहास लिखनेकी प्रणालीकी उपयुक्तता आज ही मुझे जँची ! परंतु इस समय उसका कोई उपयोग होनेवाला न था, क्योंकि सानेके घरानेका इतिहास बंजरईके चाहे जिस घरमें कैसे मिलेगा ?

डॉक्टर सानेकी पत्नीका और मेरा कहाँ परिचय हुआ होगा, इस विषयका

तरह तरहकी कल्पनाएँ करता हुआ मैं उनके घर पहुँचा। मुझे लगा—अव क्षणार्धमें अपनी पहली हल हो जायेगी !

लेकिन ड्रॉइंग-रूमके द्वारमें आकर प्रसन्नमुखसे मुझे नमस्ते करनेवाली एक स्त्रीकी ओर दृष्टि जाते ही मैं और भी अधिक असमंजसमें पड़ गया।

डॉक्टरने कहा,—‘ये हैं लीलादेवी, और ये—’

‘इन्हें मैं पहचानती हूँ। पचीस साल हो गये, पर इनमें विशेष ऐसा कोई फर्क नहीं हुआ है ! बिलकुल जैसा थे वैसे ही हैं !’—लीलादेवी बोलीं।

उन्होंने सींकसे मेरी तुलना न की, यही मेरी किस्मत थी !

‘पेड़ बढ़ा करते हैं, पत्थर कभी भी नहीं बढ़ते !’—मैं मजाकमें कह गया।

लीलादेवीने तुरंत उत्तर दिया,—‘पत्थरमें ही भगवानकी मूर्तियाँ निर्मित हुआ करती हैं।’

मैं अपने आपको बड़ा हाज़िरजवाबी समझता हूँ; परंतु इस अनपेक्षित श्लेषसे मैं थोड़ा गड़बड़ा ही गया !

डॉक्टरने हँसते हँसते कहा,—‘पुराणोंमें भक्तोंके द्वारा भगवानके पराभवकी कथाएँ हैं न ? उसी तरहका प्रसंग दीख रहा है यह।’

डॉक्टरकी बातसे यह स्पष्ट दीख रहा था कि लीलादेवी मेरे लेखकोंकी निःसीम भक्त हैं। इसका मुझे कोई विशेष आश्चर्य न हुआ।

आजकल कहानियाँ और उपन्यास पढ़ने लायक निश्चितता सिर्फ मध्यम वर्गकी स्त्रियोंको ही मिलती है और इसलिये आजकलके लेखकोंके अनेक भक्त इस वर्गमें ही मिलते हैं।

मैं हाथ-मुँह धो रहा था उसी समय पिछले सालकी इसी तरहकी एक घटनाका मुझे स्मरण हो आया। एक युवती जानबूझकर मुझसे मिलने आयी थी। उसने मुझसे पूछा,—‘आपको आपका कौनसा उपन्यास अच्छा लगता है ?’

मैंने उत्तर दिया,—‘पाँदरे दग।’^१

वह बोली,—‘मुझे ‘दोन ध्रुव’^२ अधिक पसंद है।’

मैं कुछ भी न बोला।

१ ‘रूपहले बादल’।

२ ‘दो ध्रुव’।

प्रत्येककी रुचि अलग अलग होती है, इसलिये दुनिया चल रही है। नहीं तो बहुत पहले ही उसे धर्मशालाका स्वरूप प्राप्त हो जाता!

वह आगे बोली, — ‘सत्रह बार मैंने उसे पढ़ा है!’

मैं उसकी ओर आश्चर्यसे देखने लगा।

उसने मुझसे प्रश्न किया, — ‘आपने कितनी बार पढ़ा है उसे?’

मैंने उत्तर दिया, — ‘सिर्फ एक बार।’

वह क्षणभर स्तम्भित ही हो गयी। फिर उसने आश्चर्यपूर्ण स्वरमें मुझसे पूछा, — ‘सिर्फ एक बार ही?’

मैंने उत्तर दिया, — ‘हाँ। और वह भी पांडुलिपिको जाँचकर प्रकाशकको देते समय!’

मेरी यह बात उसे ऐसी लगी थी जैसे किसी जाग्रत देवस्थानमें कोई नास्तिक देवताकी निंदा करे। आज लीलादेवीसे बातें करते हुए कहीं ऐसा ही कोई प्रसंग तो न आ जावे, इस प्रकार विचार करता हुआ मैं स्नानगृहसे बाहर आया।

भोजन मेज़पर ही परोसा गया था। डोंकटके दोनों बच्चे कुछ समयके पहले ही खा चुके थे। इसलिये हम तीनों ही एकसाथ उसी जगह खानेपर बैठे। मेरे मनमें रह रहकर यह आता था कि लीलादेवीसँ उनकी नासिककी सहेलीका हाल पूछूँ। परंतु किसी भी तरह ऐसा करनेकी मुझे हिम्मत न पड़ती थी।

भोजन आरंभ होनेपर लीलादेवीने पूछा, — ‘मुझे आपने पहचाना क्या?’

रास्तेमें यदि कोई ऐसा प्रश्न मुझसे पूछता है, तो मैं ‘हाँ हाँ’ कहकर उत्तर दे देता हूँ और चुपचाप आगे सटक जाता हूँ। ऐसे समय यदि नाम चटसे याद आ जाये, तो ठीक ही होता है। वरना कामका बहाना बनाकर सटक जानेके लिये बहुत रास्ते खुले रहते हैं।

लेकिन इस समय मैं इस प्रश्नको पूछनेवाली लीलादेवीके घरमें भोजन कर रहा था। और बैठा था ठीक उनके सामने। चक्रव्यूहमें फँसे हुए अभिमन्युकी तरह स्थिति हो गयी थी मेरी। गनीमत हुई कि लीलादेवी ही मेरी मददके लिये दौड़ पड़ी। वरना —

वे हँसती हुईं बोलीं, — ‘उस समय मैं बहुत छोटी थी। हम लोग सांगलीमें आपके घरके नज़दीक रहा करते थे। आपके दादाकी मुझे अब भी याद है —’

पतिकी ओर मुड़कर वे बोलीं, — ‘ इनके बाबाकाका इतनी दिलचस्प कहानियाँ कहा करते थे कि — ’

यह बात नहीं कि जादूके शब्द सिर्फ अद्भुतरम्य बातोंमें ही होते हों। उनके प्रभावका हमारे आपके साधारण जीवनमें भी अनुभव होता है। मेरे जीवनकोशका इसी प्रकारका जादूका शब्द ‘ बाबाकाका ’ है। लीलादेवीने उनकी याद दिलायी और एक क्षणके भीतर मेरे और उनके बीचकी परायेपनकी दीवाल एकदम दूर हो गयी।

लीलादेवी बाबाकाकाकी मनोरंजक स्मृतियाँ कह रही थीं और उन्हें सुनता हुआ मैं भोजन कर रहा था। अन्तमें छाछ लेते हुए मैंने कहा, — ‘ आज मैं बच्चेसे भी छोटा बच्चा हो गया हूँ । ’

‘ मतलब ? ’ — लीलादेवीने हँसते हुए पूछा।

‘ माँ कहानियाँ कहकर बच्चेको हठसे खिलाती है न ? आपकी बातोंने ठीक वही काम किया है आज ! बेहिसाबसे खा गया मैं ! ’

‘ इस तरह घबरानेकी कोई ज़रूरत नहीं। घर डॉक्टरका ही है । ’ — साने गंभीरतासे बोले।

कुरसीपरसे उठते हुए मैंने लीलादेवीसे कहा, — ‘ आपका खाना मुझे बड़ा अच्छा लगा। रोटी, टॉमेटो, छाछ, फल — ऐसा भोजन भारी नहीं होता ! नहीं तो हमारे यहाँका ‘ साद भात ’। विदेशी कपड़ेकी तरह भातका भी बहिष्कार करनेका आन्दोलन हमारे देशमें शुरू करना चाहिए । ’

लीलादेवी सिर्फ हँसी।

डॉक्टर उनकी ओर देखकर बोले, — ‘ यह अच्छा हुआ कि सुनारने ही कान टोंच दिये ! ’

लीलादेवीके द्वारा दिये गये पान लेकर बाहर आते हुए डॉक्टर बोले, — ‘ कितने ही दिनों लीला भात खाना छोड़नेके लिये तैयार ही न होती थी । ’ क्षणभर ठहरकर वे बोले, — ‘ हम लोग अभीतक जीवनको नयी दृष्टिसे देखना ही नहीं जानते। जीवनका कोई भी महत्वपूर्ण भाग देखिये — अन्न हो, धर्म हो, प्रेम हो — पाँच सौ साल पहले जहाँ थे, वहीं हम आज भी हैं । ’

डॉक्टरकी मुद्रापर झलकनेवाले आवेशको देखकर, मैं ताड़ गया कि यह उनका अत्यंत प्रिय विषय होगा। लेकिन हथर-उधरकी बातोंकी अपेक्षा सद्बुभाजकी

पत्नीकी जानकारीकी मुझे अधिक ज़रूरत थी। इसलिये मैं बीचहीमें बोला, — ‘प्रेमकी बात अनायास ही निकल आयी है। इसलिये अब सदूभाऊकी पत्नीका हाल —’

डॉक्टर हँसे, क्षण-भर स्तब्ध बैठे, और फिर बोले, — ‘सदूभाऊके उस पत्रपरसे यदि आप कोई कहानी लिखे, तो उसको पढ़कर पाठकोंको किसके प्रति सहानुभूति मालूम होगी?’

‘सदूभाऊके प्रति।’

‘परंतु मुझे उसकी पत्नीके प्रति सहानुभूति है।’

मैं क्षण-भर चकित हो गया।

डॉक्टर आगे बोले, — ‘इस पत्रको पढ़ते ही तुम्हारी तरह मेरा भी मत हो गया था। परंतु जीवनकी विचित्र पहेलियाँ केवल भावनाओंसे हल नहीं होतीं। इसलिये मैंने सदूभाऊके ससुरालके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेकी तरीकेसे कोशिश की, और फिर —’

मेरे मनमें एक विचित्र प्रश्न चमक गया। स्वयं अपना व्यंग्य छिपानेके लिये तो सदूभाऊने यह सारा उद्योग न किया हो?

डॉक्टरने कहा, — ‘यह तो आप जानते ही हैं कि सदूभाऊके सास न थी। गाँवोंके ज़मींदार कोई शुक्राचार्य या महात्मा गांधी नहीं होते। लड़कीपर बचपनसे पिताके व्यभिचारके संस्कार पड़े थे। घरके बाहर जो व्यभिचार वह करता था, उन्हें तो छोड़ ही दो। पर खुद घरमें— बिलकुल खुल्लम खुल्ला लड़कीकी आँखोंके सामने —’

सदूभाऊके पत्रमें लिखा था कि घरकी सारी तालियाँ रसोईदारिनके जिम्मे रहती थीं। इसका मतलब अब मेरी समझमें आया। मैं ध्यानसे डॉक्टरकी बातें सुनने लगा —

‘ज़मींदारकी इकलौती लड़की थी वह। आप कल्पना कर सकते हैं कि वह कितने लाड़प्यारमें रहती होगी? न स्कूल जाना और न घरका काम-काज। ऐसी दशामें वह छोटीसे बड़ी हुई। गाँवके ज़मींदारका घर यानी एक धर्मशाला ही होता है वह! इसलिये उस रंगीन युवककी विवाहसे पहले ही उसके साथ घनिष्ठता हो गयी। यह न समझिये कि मैं उसकी वकालत कर रहा हूँ। लेकिन शारीरिक सुखकी अपेक्षा जीवनमें और भी कुछ महत्त्वका है, यह उसे कहीं भी देखनेको न

मिला। धनीकी लड़की होनेसे अपने गरीब पतिसे वह ज़रा शानसे ही बर्ताव करने लगी। जिसे जीवनमें यह कल्पना ही न आयी कि विवाह सिर्फ़ शरीरका मिलन नहीं है; वह भावनाओंका मिलन है, विचारोंका मिलन है, वह —'

लीलादेवीके भीतर आ जानेके कारण डॉक्टर एकदम रुक गये। तुरंत ही वे हँसकर बोले, — 'मेरे भाषण इसे हर रोज़ सुनना ही पड़ते हैं। क्या करे बेचारी? विवाहकी बेड़ी पैरोंमें पड़ जानेपर आजन्म कारावासका दण्ड भोगना ही चाहिए। परंतु आज ज़रूर मैं कैदीको पूरी छुट्टी देनेवाला हूँ!'

लीलादेवीने डॉक्टरकी ओर देखकर, उनका निषेध करनेके लिये ऐसी गर्दन मोड़ी, कि मुझे इस कल्पनाका कि कलहसे ही प्रेममें मिटास आती है, वह मूर्तिमान चित्र ही लगा।

डॉक्टर आगे बोले, — 'अब आपकी साहित्य-चर्चा शुरू होने दीजिये। मैं होता हूँ अध्यक्ष! जिससे कि सोनेके लिये किसीकी अनुमतिकी आवश्यकता न होगी।' तुरंत ही मेरी ओर मुड़कर वे बोले, — 'लीलाको आपकी कहानियाँ और उपन्यास बड़े अच्छे लगते हैं, फिर भी हालहीमें आपने जो कहानी लिखी है, उसपर वह बहुत नाराज़ है।'

लीलादेवी डॉक्टरकी ओर आश्चर्यसे देखने लगी।

मैंने कुतूहलसे प्रश्न किया, — 'कौनसी कहानी आपको नापसंद है?'

डॉक्टरने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, — 'हरसिंगारके फूल!'

वे अधिक और कुछ न कह दें, इसलिये लीलादेवी बीचहीमें बोली, — 'हुश! आप यह क्या कह रहे हैं?'

पति-पत्नीके इस संवादने मुझे असमंजसमें डाल दिया। मैंने दोनोंकी ओर देखा। लीलादेवी नज़रसे डॉक्टरको 'नहीं नहीं' का इशारा कर रही हैं, यह मेरे ध्यानमें आ गया। परंतु यह सारा मामला क्या है, यह ज़रूर मेरी —

लीलादेवीकी ओर पीठ फेरकर डॉक्टरने मुझसे कहा, — 'आपने महाराष्ट्रका बड़ा भारी अपराध किया है!'

'कौनसा? क्या, यह कि मैंने महाराष्ट्रमें जन्म लिया?'

हँसते हँसते डॉक्टर बोले, — 'दो-तीन महीने पहले महाराष्ट्रको एक विलक्षण प्रतिभा-शालिनी लेखिका मिल रही थी। परंतु आपकी इस 'हरसिंगारके फूल'

शीर्षक कहानीने सारा घुटाला कर दिया ! आपकी कहानी यदि प्रकाशित न हुई होती, तो — ’

डॉक्टरके मज़ाकका सारा रुख अब कहीं मेरी समझमें आया ।

मैंने लीलादेवीसे कहा, — ‘ऐसा कई बार हो जाता है । एक ही कल्पना अचानक सूझ जाती है — ’

लीलादेवीने कहा, — ‘वह कहानी मैंने कल्पनासे नहीं लिखी थी ।’

डॉक्टर हँसते हुए बोले, — ‘नहीं कैसे कहती हो ? मूलकी विमलको तुमने कमल बना दिया ! हनुमानने द्रोणागिरी उठाया था, उस तरह तुमने तो नहीं उठाकर उसे सतारामें लाकर रख दिया ? और — ’

लीलादेवीने गंभीरतापूर्वक कहा, — ‘मेरी एक बचपनकी सहेलीकी ही कहानी है वह ।’

बचपनकी सहेली — विमल — नासिक —

डॉक्टरका मज़ाक जारी ही था । वे बोले, — ‘यह तो मेरा भाग्य है कि विमलके पतिको, जो पुलिस इन्स्पेक्टर था, तुमने डॉक्टर नहीं बना दिया ? नहीं तो — ’

अब तो मुझे पक्का विश्वास हो गया । मेरे पास जो पुलिस इन्स्पेक्टर आया था उसकी पत्नीकी कहानी जाननेका यह कितना अच्छा अवसर आ गया था !

मैंने लीलादेवीसे कहा, — ‘आपने मेरी बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं । अब आप अपनी कम-से-कम एक कहानी तो मुझे पढ़नेको दीजिये न ? दूसरेके घर हम अगर दस बार भोजन कर आवे, तो हमें कम-से-कम क्या एक बार भी उसे अपने घर न बुलाना चाहिए ?’

उन्होंने पहले पहल तो बड़ी आनाकानी की । लेकिन पहलौठी कितनी ही लजाए, फिर भी दिलसे वह यही चाहती है कि दूसरे मेरे बच्चेको देखें और उनकी सराहना करें ! नये सिक्खड़ लेखकोंको भी यही लगा करता है ।

डॉक्टर सानेके घरसे मैं लीलादेवीकी नोट-बुक लेकर ही निकला ।

• • •

मैं घर आया । उस समय ग्यारह बज रहे थे । ऊपरसे कल रातको गाड़ीमें क़रीब क़रीब जाग्रण ही हुआ था । नींदका गिरफ्तारीका वॉरंट टालना असंभव होनेके कारण, लीलादेवीकी नोट-बुकको मेज़पर रखकर मैंने रोशनी बुझायी और जाकर बिस्तरपर लेट रहा ।

परंतु किसी भी तरह मुझे नींद नहीं आती थी। पति-पत्नीमें न कुछ कारणसे अबोला उत्पन्न हो जाता है न ? उसी तरह नींदके विषयमें मेरी स्थिति हो गयी। वह मेरे आसपास ही चक्कर काट रही थी। मुझे उसकी ज़रूरत भी थी ! परंतु किसी भी तरह वह मुझे हाथ नहीं लगाने देती थी !

मैं ताड़ गया कि यह बेचैनी लीलादेवीकी नोट-बुकने पैदा कर दी है।

मैं झटसे उठा। रोशनी जलायी और लीलादेवीकी नोट-बुक खोली। पहली दो-तीन कहानियाँ अधूरी ही थीं। नामपरसे उनके कथाभाग भी मुझे बिल्कुल अलग लगे।

चौथी कहानीका नाम देखते ही मैं रुक गया —

‘रौंदा हुआ कमल !’

विमलको कमल बनाकर कहानी लिखनेवाली लीलादेवीपर मुझे हँसी आयी। लेकिन वह क्षणभर ही। बड़े बड़े मराठी लेखक भी जिस मोहके शिकार हो जाते हैं, उसका संवरण कोई नया सिक्खड़ लेखक करे, यह कैसे संभव है ? अनुभव-पर कल्पनाकी कलम बाँधना ही ललित कथा है। पर —

मैं पढ़ने लगा —

‘कमल बैठी हुई अँधेरेकी ओर शून्य दृष्टिसे देख रही थी। उसके मनमें आया — भगवानने अँधेरेको साथके लिये इतने तारे दिये हैं; परंतु मनुष्योंके दुखोंको दुखोंका ही साथ दिया है। यह देखती हूँ तो लगता है — किसी कहानीके राजाकी तरह सृष्टिका निर्माण करनेवाले ईश्वरकी दो पत्नियाँ होंगी। एक उसे प्रिय और दूसरी अप्रिय ! पहलीसे निसर्ग पैदा हुआ होगा और दूसरीसे मनुष्य ! इसी लिये वह भगवानको इतना अप्रिय है।

बाहर अँधेरा बढ़ रहा था। कमलके मनमें भी वह बढ़ रहा था। वह कह रही थी — बाहरका अँधेरा कल सुबह हट जायगा। परंतु मेरे मनका अँधेरा ? उसे दूर करनेवाला सूरज कभी भी न निकलेगा। अब सुखकी आशा करूँ तो वह अगले जन्ममें ही कर सकती हूँ। लेकिन —

अगला जन्म किसने देखा है ? उसने अँधेरेकी ओर देखकर अपनी

आँखें पोंछी। चटसे एक कल्पना उसके मनमें आ गयी — चित्रपट^१ अधेरेमें ही देखते हैं !

ज़रूमपरसे हाथ फेरे बग़ैर मनुष्यको अच्छा ही नहीं लगता। दुखकी बात भी यही है। उसकी याद करनेमें ही मनुष्यको एक तरहका सुख हुआ करता है। अयोध्याके सिंहासनपर बैठनेके बाद भी अपने वनवासका जीवनपट देखनेमें सीताजी और रामचन्द्रजीको आनन्द होता ही था कि नहीं ?

मैं चकित हो गया। नोट-बुक एक ओर रखकर मैं सोचने लगा।

किसी मासिक-पत्रमें इतना ही मज़मून यदि गुमनाम छाप दिया होता, तो पाठकोंको यही लगता कि वह मैंने ही लिखा है। मेरी रुचि-अरुचि, मेरे व्यंग्य, मेरे लेखनका विशिष्ट ढंग — सभी बातोंका लीलादेवीने अनुकरण किया था, और वह भी रही तरहसे नहीं, बल्कि बड़ी शानसे ! मेरे मनमें आया — राजाके हूब-हू स्वाँग बनानेवाले ठग निकलते हैं न ? उस तरह किसी लेखकके हूब-हू स्वाँग बनानेवाले ठगके निकलनेकी कहानी कोई लिखे, तो वह बड़ी मजेदार होगी !

मैं बड़ी उत्सुकतासे आगेका मज़मून पढ़ने लगा —

‘कमलकी आँखोंके सामनेसे उसके जीवनका चित्रपट जल्दी जल्दी दौड़ने लगा।

वह नौ-दस वर्षकी थी ! उसके पिताकी वकालत अच्छी चलती थी। परंतु उन्हें कीर्तन करनेका शौक था। निंदक लोग कहा करते — ‘वकालत चले, इसी लिये ये कीर्तन करते हैं !’ कमलको कभी भी यह सच न लगा। पिताके साथ वह रातको बारह बारह बजेतक बड़े शौकसे जागा करती। पूर्वरंग (कीर्तनका आरंभ) समाप्त होनेपर जब कथा-भाग शुरू हो जाता, तब उसकी नींद बात-की-बातमें उड़ जाती।

उसके पिताको सात-आठ आख्यान बड़े प्रिय थे। उनमें रंभा शुकको वश करने कैसे आयी, विश्वामित्र मेनकाके सौन्दर्यपर किस तरह मोहित

हो गया, पराशर जैसा श्रेष्ठ ऋषी भी नौकामें एक मछुवेकी लड़कीको आलिंगन करनेके लिये किस प्रकार उन्मत्त हो गया था, इत्यादि कथाएँ वे बड़े रंगमें आकर कहा करते थे। वे श्रोताओंको बार बार जताकर कहा करते — ‘स्त्री सिर्फ सौन्दर्यकी खान नहीं है, वह पापकी भी खान है।’ श्रोताओंमें वृद्ध और विधवाओंकी संख्या अधिक होनेके कारण बहुधा बहुतसे लोग गर्दन हिलाकर कीर्तनकारजीके इस मतको स्वीकार करते थे। यह देखती, तो छोटी कमलसे भी चुप नहीं बैठा जाता था। वह भी अपनी गर्दन हिला देती।

उसके पिताकी आवाज़ बड़ी मीठी थी। इसके कारण वे बीच बीचमें जो भजन या गीत कहा करते, उन्हें कमल बड़े भक्तिभावसे सुना करती। वे सब उसे कंठस्थ हो गये थे। ‘सावध सावध बाबा, ही नार विषाचा प्याला!’^१ जैसी कितनी ही पंक्तियाँ वह अपनी सहेलियोंको हमेशा गाकर सुनाया करती थी। उनका अर्थ उस उम्रमें किसीकी भी समझमें न आता था।

लेकिन कमलके मनपर एक बात अनजाने अंकित हो गयी; स्त्री और पुरुषका एक स्थानमें एकान्त मिलन बड़ा पाप है।

इसी समय उसके पड़ोसमें रहनेवाले एक हमालने पेटमें चाकू घुसेड़कर अपनी पत्नीका खून कर दिया। उस भयंकर दृश्यको देखनेवाली भीड़में कमल भी थी। भीड़में जो औरतें थीं वे अँगुलियाँ चटकाकर पुटपुटा रही थीं — ‘पति काहेका ? राक्षस है मरा !’ वह दृश्य और वे शब्द ! उस कमलको विश्वास हो गया कि पति राक्षससे कोई विशेष भिन्न प्राणी नहीं होता !

इसी समय उसके घरमें एक विलक्षण घटना घटी।

कमलके एक बड़ा भाई और तीन छोटे भाईबंद थे। इन सब भाईबंदोंमें उसे दादा ही अधिक अच्छा लगा करता था !

वह उसके साथ विशेष खेलता नहीं था। परंतु जब खेलने लगता, तो उससे कहता, ‘कमल, करंजुवा^२से खेलनेके दिन अब नहीं रहे !’

१ ‘भाइयो, सावधान हो जाओ, यह नारी जहरकी प्याली है।’

२ लड़कियाँ करंजुवाके बीजोंको हाथसे उछाल खेल खेल करती हैं।

कमल पूछती, - ' फिर हमें किससे खेलना चाहिए, दादा ? '

वह शान्तिपूर्वक उत्तर देता, - ' बंदूककी गोलियोंसे ! '

यह सुनकर कमल हँस पड़ती । ' पागल हो गये हो तुम, दादा ! ' इस अर्थके गीतकी एक पंक्ति गुनगुनाती हुई वह करंजुवाके खेलमें फिरसे खो जाती ।

लेकिन एक दिन आधी रातको उसे पता चला कि दादाके कहनेका कोई भयंकर अर्थ है ।

कीर्तन समाप्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था । लोग उसके पिताके चरणोंको छूकर घर वापस जा रहे थे । इसी समय पॉच-छः पुलिसवाले उनके घरमें घुसे । और यह कहकर कि हमें तुम्हारे घरकी खानातलाशी लेनी है, उन्होंने उसके पिताको एक कागज़ दिखाया । उसको देखते ही वे घबराकर चुपकेसे नीचे ही बैठ गये ।

सुबह चार बजेतक खानातलाशीकी गड़बड़ी जारी थी । कमलके पिता माथेपर हाथ धरे बैठ गये । उसकी माँ भगवानकी मूर्तिके सामने जाकर फूट फूटकर रोने लगी । उसके छोटे भाईबंद डरे हुए खरगोशकी तरह एक कोनेमें जाकर छिप गये । केवल दादा ही —

जहाँ पुलिसवालोंने उसे बिठा दिया था वहाँ बिलकुल घुम्मा होकर बैठा हुआ था । उसकी मुद्रापर भय न था; आँखोंमें आँसू न थे — कुछ न था । किसी देवालयमें बैठे हुए देवताकी तरह वह शान्त चित्तसे सब कुछ देख रहा था ।

सुबह करीब चार बजे खानातलाशीका काम पूरा हुआ । निम्न दादाके कमरेसे कुछ कागज़ उठाकर अपने साथ ले गयी ।

कमलके मनमें आया — पुलिसवाले अगर दादाके कागज़ ले गयी हैं, तो ले जाये । दादा दूसरे कागज़ ले आयेगा ।

लेकिन जब वे उसके दादाको भी अपने साथ ले जाने लगे, तब जरूर उसका कलेजा टूट गया । उसकी माँ फूट फूटकर रो रही थी । परंतु कमल साहस बटोरकर आगे बढ़ी और निम्न दादाके बोली, - ' छोड़ो, मेरे दादाको कहीं ले जा रहे हो ? '

पुलिसवालोंने कोई उत्तर न दिया । वे सिर्फ़ हँसे ।

हम लोगोंके रोते हुए वे हँस रहे हैं, इसपर कमलको बड़ा क्रोध आया। अपने दादाको छुड़ानेके लिये वह पुलिसवालोंपर झपट पड़ी और उनमेंसे एकके हाथको कसमसाकर काट खाया। लेकिन पुलिसवालेने उसे इतने जोरसे धक्का दिया, कि—वह नीचे गिरी, यही गनीमत रही; अगर कहीं सीढ़ीपर गिरती, तो उसके प्राण ही निकल जाते !

आगे चलकर इस प्रसंगका स्वप्न उसे कितने ही वर्षोंतक दिखा करता था। फिर वह चीखकर जाग पड़ती। और फिरसे उसे वह स्वप्न न दिखे इसलिये बिलकुल सुबह होतेतक जागती रहती।

षड्यंत्र, अत्याचार, क्रांति इत्यादि शब्द उस समय पहली बार ही उसके कानोंमें पड़े। उन शब्दोंका पूरा मतलब उसकी समझमें न आया। परंतु वह इस बातको कभी न भूली कि इन शब्दोंके कारण सरकारने मेरे दादाको जेलमें बंद कर दिया है।

उस आधी रातको कमलके पिताके घरमें दुखने जो एक बार प्रवेश किया, तो फिर वह वहाँ हमेशाके लिये ही जम गया। शीघ्र ही मधुमेहके रोगसे उनकी मृत्यु हो गयी। जहाँ फूल चुने थे, वहाँ उपले बीननेका मौक़ा आ जानेके कारण, उसकी माँ वह शहर छोड़कर अपने गाँव चली गयी। वहाँ उसकी थोड़ी ज़मीन थी। उसीपर गुज़रबसर करने लगी।

लेकिन उस गाँवमें कमलकी शिक्षाका कोई प्रबंध न था। इसलिये उसने उसे उसकी एक मौसीके घर रख दिया। इस मौसीका पति शराबी था। इसके कारण घरमें हर रोज़ रातको जो झगड़े हुआ करते उन्हें सुनते सुनते कमलके कान पक गये। पति और राक्षस—इन दो शब्दोंका उसकी कल्पनाने पहले जो गठबंधन किया था, वह अब और भी अधिक दृढ़ हो गया।

मौसीके घर उसे एक ही मनोरंजन था। जब वह ऊब जाती, तो या तो उपन्यास पढ़ने लगती, या कविताएँ बनाती। उससे कविताएँ लिखते कैसे बनने लगा, इसका स्वयं उसे भी कोई पता न चलता था। परंतु बगीचेमें उड़ती हुई तितली देखती, अथवा आकाशमें चमकनेवाले चंद्रमाकी ओर उसका ध्यान जाता, तो वह स्वयं अपने आपको भूल जाती। फिर उसे नयी नयी मजेदार कल्पनाएँ सूझने लगतीं। और—

कितने ही बरसोंके बाद उसका दादा जेलसे छूटा। उससे मिलनेके लिये वह मौसीके घर आया। उसने बड़े शौकसे उसे अपनी कविताओंकी नोट-बुक दिवायी। उसकी दो-चार कविताएँ पढ़कर वह बोला, — ‘भाड़में जाकर डाल दे उस नोट-बुकको। देशमें बाग नहीं खिला है — आग लगी हुई है!’

जेलमें गांधीजीके दो-चार बड़े बड़े शिष्योंका उसे साथ मिला था। उसका विश्वास हो चुका था कि गांधीजीके उपायोंसे ही देशका कल्याण होगा। वह एक गाँवमें आश्रम खोलनेवाला था। चरखा, हरिजनोंके बच्चोंकी शिक्षा, ग्रामोद्धार आदिके बारेमें वह बातें कर रहा था। स्त्रियोंमें इन बातोंका प्रचार करनेके लिये उसे एक महिलाकी आवश्यकता थी ही। कमल आनंदसे उसके साथ चल दी।

पहले कुछ दिन वह आश्रम उसे स्वर्गकी तरह लगा। शरीरोंकी सेवा, उनसे खुलकर बातें करने और निसर्गके सान्निध्यमें सारा समय व्यतीत करनेमें कितना आनंद भरा है — इसका यह पहला ही अनुभव था उसे।

परंतु कुछ दिनोंके बाद उसके दिलमें यह बात खटकने लगी कि मेरे सुखमें कुछ कमी है। दादाके प्रति उसके मनमें आदर-भाव था। परंतु उसकी वैराग्यकी कल्पनाएँ उसे बड़ी अजीब-सी लगतीं।

एक दिन वह गाँवके ज़मींदारके घर बुलावेमें गयी थी। वहाँ उसके हाथको इत्र लगाया।

वह आश्रमको लौटकर आयी। उस समय सायंकालकी सामूहिक प्रार्थनाका वक्त हो गया।

कमल दादाके पास जाकर खड़ी हो गयी। प्रार्थनाके लिये उसने अपना मुँह भी खोला। इसी समय दादाकी भेदक दृष्टि कमलकी ओर देखने लगी।

‘यह सुगंधि कहाँसे आ रही है?’ — उसने प्रश्न किया।

‘मेरे हाथमें इत्र लगा है!’ — डरते डरते कमलने उत्तर दिया।

वह गुरगुराता हुआ बोला, — ‘जाओ, पहले अपने हाथ धो आओ। जाओ!’

बड़ा अजीब पागलपन था उसका यह। एक दिन वह कहींसे एक उप-

न्यास पढ़नेको ले आयी। उसे वह पढ़ने लगी। दादाने देखा तो उससे वह छीनकर आश्रमके बाहर फेंक दिया।

वह उससे हमेशा कहा करता, - 'चरखेके सिवा मनुष्यका दूसरा साथी नहीं है !'

एक छुट्टीमें उस गाँवमें एक तरुण आया। वह अपने मामाके घर रहने आया हुआ था। वह बी. ए. फाइनलमें पढ़ रहा था। उसकी आवाज़ भी बड़ी मीठी थी। गांधीभक्त होनेके कारण वह कभी कभी आश्रममें आने लगा। धीरे धीरे कमलसे उसकी मित्रता हो गयी। दोनों शामको घूमने जाने लगे। वे नदीपर जाते और पानीमें पैर डुबाये काव्य-गायन करते रहते। ऐसे समय कमलको लगता जैसे वह कोई सुंदर सपना देख रही हो।

एक दिन वह सायंकालको प्रार्थनाके समयतक लौटकर नहीं आयी। जब दादाने उससे पूछा, 'इतनी देरतक क्या कर रही थी ?' - तो उससे इस प्रश्नका कोई संतोषजनक उत्तर देते नहीं बना। वह नाराज़ हो गया। उसने उसे रात-भर एक कमरेमें बंद रखा।

कमल आश्रमसे निकल जानेके लिये उत्सुक हो गयी। इसी समय उसकी माँ बीमार पड़ी। अनायास ही उसे आश्रम छोड़नेका बहाना मिल गया।

उसकी माँको लगता था कि यह उसकी अंतिम बीमारी है। वह उत्तराधिकारियोंका सारा प्रबंध करने लगी। मेरे जीते जी कमलका विवाह हो जाये, इसकी उसने रट लगा दी। शीघ्र ही उसे एक मन-चाहा संबंध मिल गया। पति पुलिसका सब-इन्स्पेक्टर था। वह हालहीमें सतारा बदल कर आया था !

माँको दुख न हो, इसलिये कमलने इस संबंधके बारेमें कोई शिकायत न की। लेकिन यह सोचकर कि मेरा भावी पति पुलिसका सब-इन्स्पेक्टर हैं, उसे कोई विशेष आनंद न हुआ। इसके विपरीत एक प्रकारका डर ही उसके मनमें पैदा हो गया ! उसके मनमें यह कल्पना आकर बार बार चक्कर काटने लगी कि मेरे दादाको पकड़ ले जानेवाले कठोर पुलिस-वालोंकी तरह मेरा पति भी निर्देयी होगा।

विवाहके बाद शीघ्र ही कमलकी और उसकी जो पहली मुलाकात हुई —

उसने यह पढ़ा था कि एक शब्दसे अर्थका अनर्थ हो जाता है। परंतु एक स्पर्शसे मनुष्यके जीवनमें भयंकर परिवर्तन हो जाता है, यह अनुभव अभी उसे होना था।

उसके पतिने उसका हाथ अपने हाथमें लिया। फूल मसल डाले जावें, उस तरह उस स्पर्शने उसके मनकी स्थिति कर डाली। उसकी कल्पना-की मृदुता उस स्पर्शमें बिलकुल न थी। गाँवके उस तरुणके नदी-तीरवाला वह स्पर्श — सितारके तारपर अँगुली रखी जावे, उस तरह उसने अपने हाथमें लिया था। उसका मन उस अनुभवसे इस प्रसंगकी तुलना करने लगा।

कोई भुलमरा अन्नपर एकदम टूट पड़े अथवा कोई बिलौंटा गिलहरीपर एकदम झपट पड़े, कुछ इसतरह उसे इस समय लगा। बचपनमें उसने 'पति यानी राक्षस' — ये शब्द सुने थे। वे रह-रहकर उमे स्मरण होने लगे। जिस शरीरसुखकी कल्पनासे रोमांच खड़े हो जाना चाहिए, उसकी याद आते ही उसके रंगटे खड़े होने लगे।

पति पुलिस इन्स्पेक्टर होनेके कारण उमे अनेक बार असमय कामपर जाना पड़ता था। वह आधी रातको कभी भी लौटकर घर आता। अपनी नींद बीचमें टूटे इसलिये कमल द्वारको सिर्फ भेड़कर रखती। परंतु उसे हमेशा एक विचित्र अनुभव होता। पतिको उसकी नींदकी कोई परवाह न होती। वह उसे झकझोरकर जगा देता। और फिर—सुखदुःखकी कोई बातें नहीं, हास्यविनोद नहीं, मज़ाक नहीं, कुछ नहीं—बस, सिर्फ शारीरिक सुखकी तृप्तिकी इच्छा।

प्लैटफार्मपर एक मशीन होती है। उसमें एक आना डालनेसे एक टिकट मिल जाता है न? उसे लगने लगा कि विवाहकी वरमाला पहनाकर पत्नी भी इसी तरह खरीद ली जाती है। दूसरोसे मीठी मीठी बातें करनेवाला पति एकान्तमें मुससे ही एक उजड़ुकी तरह क्यों बर्ताव करता है, यह पहली उससे हल नहीं होती थी; लेकिन उसके बारेमें घृणा ज़रूर उसके मनमें बढ़ने लगी। बचपनमें, सुनी हुई कीर्तनकी कथाएँ रह रहकर उसकी आँखोंके सामने खड़ी होने लगीं। बचपनका यह विचार भी कि स्त्री और पुरुषको एकत्रित आनेमें पाप है, कभी कभी उसके मनमें जोर पकड़

लेता। ऐसा एक भी सप्ताह न बीता जब कि उसने अपने भाईकी पवित्रता और पतिकी पशुताकी तुलना न की हो !

इसी स्थितिमें वह गर्भवती हुई। माँ न होनेके कारण उसकी मौसीने ही उसकी जचकी की। आगे मौसी उसके साथ उसके घर रहनेके लिये गयी। वह कुछ दिनोंके लिये ही गयी थी।

पहले पहल उसे लगा कि मौसीकी छत्रछायाके तले में सुरक्षित हूँ। लेकिन उसके पतिने एक दिन जब दिन दहाड़े ही —

उस दिन रो रोकर उसकी आँखें फूल गयीं। अपनी गुफामें किसी भी स्त्रीको बलात खींचकर ले जानेवाला जंगली आदमी, और पत्नीकी इच्छाके विरुद्ध उसके शरीरपर अपना अधिकार जमानेवाला आजका पति — इन दोनोंमें उसे तिलमात्र भी फर्क प्रतीत न हुआ।

इस दुखको भूलनेके लिये वह अपने बच्चेको प्यार करनेमें खो जाने लगी। कभी कभी वह कविता भी लिखा करती। पोथी और पुराण पढ़नेका भी उसे चसका लग गया। यह इच्छा भी उसके मनमें कभी कभी आने लगी कि अपने पिताकी तरह मैं भी कीर्तन करने लगूँ।

कमलके पतिको उसके मनमें उठे तूफानकी कोई परवाह ही न थी। धीरे धीरे पतिपत्नीके बीच बातचीत कम हो गयी। अपने पतिके बकवासकी ओर वह ध्यान ही न देती थी। परंतु उसने अपने मनमें यह निश्चय अवश्य कर लिया कि अब तो उसकी शारीरिक भूखकी तृप्तिके साधनकी हैसियतसे मैं ज़िन्दगी न बिताऊँगी।

अपनी इस धुनमें खोई रहकर वह सुखी भी हो जाती; परंतु उसके पतिने अपने नये गुण दिखाना शुरू कर दिया।

एक दिन आधी रातको वह उसके कमरेमें आया। कमल जाग रही थी। उसे एकदम किसी चीज़का घास आया। सर्पका शक होनेपर मनुष्य क्या कभी चुप बैठ सकता है ? उसकी भी वही स्थिति हो गयी। वह जान-बूझकर उसके नज़दीक गयी। उसके मुँहसे आनेवाली वह शराबकी दुर्गंध — उसे लगा, जाकर कहीं प्राण दे दूँ !

वह उससे अधिक कठोरतासे बर्ताव करने लगी। धीरे धीरे वह नियमसे एक वेश्याके कोठेपर भी जाने लगा। वह वेश्या अच्छी संगीतज्ञ थी। वह

कमलसे यही कहता कि मैं उसका गाना सुनने जाया करता हूँ। परंतु उसे यह सच न लगता। एक दिन वह चिढ़कर उससे बोली, - 'ये धंधे करते हो, इससे दूसरा विवाह ही क्यों नहीं कर लेते ?'

अंधा क्या चाहे दो आँखें ? वह तो यही चाहता था। उसने समाचार-पत्रमें विज्ञापन दे दिया। उसमें बड़े मज़ेसे छाप दिया - 'पहली पत्नी इस विवाहसे सहमत है !'

कमलने जवसे वह विज्ञापन देखा तबसे वह मन-ही-मन बुलकर काँटा होने लगी। वह पति चाहती थी, लेकिन उसके भीतरके पशुको वह नहीं चाहती थी।

सौत आयी कि —

क्या करूँ यह —

उसकी समझमें नहीं आ रहा था ! उसकी आँखोंके आगे अंधेरा छा गया।'

• • •

लीलादेवीने कहानी यहीं छोड़ दी थी। मेरे मनमें बड़ी बेचैनी पैदा हो गयी। आगे चलकर इस विमलका - यानी कहानीकी कमलका क्या हुआ ? वह नासिक किसके लिये गयी थी ? वहाँ आत्महत्या करनेकी कोशिश किसने की ? क्या, विमलने ?

आधी रात हो गयी थी इसलिये - वरना लीलादेवीको फोन करके मैं आगेका सारा हाल उनसे पूछ लेता !

मेरे मनमें ये विचार आ रहे थे तभी मेरे हाथ उस नोट-बुकके पन्ने उलटा रहे थे। चटसे मुझे उसमें एक पत्र दिखाई दिया। मुझे लगा कि लीलादेवीका कोई खानगी पत्र भूलसे इस नोट-बुकमें रह गया होगा। यह सोचकर कि वह उसी तरह रखे दूँ, मैं दूसरा पन्ना पलटने लगा। इसी समय मेरे मनमें आया - लीलादेवीने यह सत्यकथा विमलकी पूरी जानकारी प्राप्त करके ही लिखी है। शायद उसी जानकारीके संबंधका भी यह पत्र हो सकता है। संभव है कि विमलके विषयकी आगेकी जानकारी इस पत्रमें हो।

मोहके लिये अनुकूल गवाहकी कभी भी कमी प्रतीत नहीं होती।

मैंने उस पत्रको खोला और नीचेके दस्तखत पढ़े ही थे कि - मुझे लगा कि मैं कहीं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। उस पत्रमें दस्तखत थे - 'कुंदा केलकर !'

कुंदा ! रामभाऊकी पत्नी ?

विमलकी कहानीकी नोट-बुकमें ही लीलादेवीको कुंदाका यह पत्र क्यों रखना चाहिए ?

कुंदाकी भी इसी तरहकी कोई करुण कहानी है क्या ?

रामभाऊने तीन सालतक बीमार पत्नीको कष्ट न देनेकी जो गप्पें हाँकी थीं, वे सच थीं या झूठ, यह देखनेका अनायास मौका आ गया था !

मैं जल्दी जल्दी पत्र पढ़ने लगा । बिलकुल छोटा था वह ।

‘मैंने छोटासा पत्र लिखा है, इसलिये नाराज़ न हो जाना । कमज़ोरीके कारण हाथ काँप रहा है । इससे अक्षर भी खराब हो गये हैं । बिलकुल छोटे बच्चेकी तरह !

मैं छोटी हूँ अब; हूँ न लीला ? तपेदिक जैसे रोगसे हालहीमें मेरा पुनर्जन्म हुआ है । इसलिये यदि मैं नन्दे बच्चेकी तरह कुछ करूँ तो —

इस तरह लिखने लगूँ तो पत्र कभी भी पूरा न होगा ।

लीला, मैं पतिकी दवाओंमें और उत्तम जलवायुसे ही अच्छी नहीं हुई हूँ । तुम्हारे पत्रोंका भी बड़ा उपयोग हुआ ।

कभी कभी तुम एक नाजुक विषयके बारेमें लिखा करती थी न ? उस विषयमें मैं तुमसे बहुत कुछ कहना चाहती हूँ । आज एक ही बात लिखती हूँ ।

मेरी बीमारीकी कल्पना आनेके बादसे उन्होंने मुझे कभी तंग न किया । इन तीन वर्षोंमें — जैसे बहन ही थी मैं उनकी ! पहल पहल उन्हें यह बात बड़ी कठिन मानूम हुई । उन्हें ही क्यों मुझे भी —

खैर, छोड़ो इसे । नहीं तो इसीपर तुम एक कहानी लिख मारोगी ! इस बीमारीने मुझे एक नयी दृष्टि दी । उसने यह दिखा दिया कि मनुष्यके भीतर देवता हो सकता है । जलानेवाली बिजली प्रकाश भी दे सकती है । है न ? प्रीति भी उसी तरह है । वह उपभोगकी तरह ही त्यागमें भी खो जाती है ।

यह सब दिल खोलकर लिखा है मैंने । लेकिन कृपा कर इसपर कोई

कहानी न लिख देना, बहन। और यदि लिखोगी भी, तो नायिकाका नाम कुंदा न रखना। कम-से-कम मंदा कर देना।

देखे अब बंबई आनेको कब मिलता है? अंबादेवीकी मनोनीकी पूरा करनेके लिये वे शीघ्र ही कोल्हापुर जा रहे हैं। परंतु उनके साथ जाने लायक शक्ति अभीतक मुझमें नहीं आयी है।

तुम्हारी—
कुन्दा केलकर'

• • •

दूसरे दिन सुबह उस नोट-बुकको लौटानेके बहाने मैं डॉक्टरके दवाखाना गया। डॉक्टर कुछ समयके पहले ही आये हुए थे।

नोट-बुकको हाथमें लेकर उन्होंने पूछा, — 'कहिये, कैसी लगी आपको लीलाकी कहानी?'

'थोड़ी अधूरी लगी।'

'उसके आगेकी घटना परसों ही हुई।'

'मतलब?'

'उस विमलने आत्महत्याका प्रयत्न किया था न?'

'क्यों?'

'इसलिये कि उसके पतिने दूसरा विवाह कर लिया!' — क्षणभर ठहरकर वे बोले, 'दोनोंके अज्ञानने उनकी हानि की! नहीं तो मेरी पत्नीकी चचेरी बहनका हाल देखो —'

मैंने अधीरतासे प्रश्न किया, — 'कौन? कुन्दा केलकर?'

'आपकी परिचित है शायद?'

'मैंने उन्हें कभी नहीं देखा है। परंतु रामभाऊ केलकर और मैं हम दोनों कॉलेजमें घनिष्ठ मित्र थे न? हालहीमें तो कोल्हापुर आया था वह!'

कुन्दाके बारेमें डॉक्टर कुछ कहनेवाले थे। इसी समय उन्हें लगा कि दवाखानेके दरवाजेसे कोई आ रहा है, इसलिये वे सामने देखने लगे।

मैंने भी गरदन घुमायी। द्वारमें आयी हुई स्त्रीका ध्यान मेरी ओर जाते ही वह झेंपी। वह सुमति थी।

‘हरसिंगारके फूल’ शीर्षक मेरी कहानी पढ़कर क्रोधसे उसपर बाहियातपनकी मुहर लगानेवाली और उषाको पत्र लिखनेवाली उसकी यह सहेली —

मैं चकरा गया। मेरा मन कह रहा था — ‘डॉक्टर सानेसे इसका क्या काम होगा?’

● ● ●

८

सुमति

सुमतिकी मुद्रापर झलकनेवाले आश्चर्यका बात-की-बातमें आनंदमें रूपान्तर हो गया। आगे बढ़कर मेरा अभिवादन करती हुई वह बोली, - 'आप सौ वर्ष जियेंगे, भाऊराव।'।

भिन्न भिन्न होराभूषणों और ज्योतिषमार्तिडोंके द्वारा कथन किये गये मेरी आयुर्मर्यादाके अनेक भविष्योंका क्षणार्धमें मुझे स्मरण हो आया। अट्ठावन वर्षके बाद मुझे जीवित रखनेकी उनमेंसे किसी एककी भी इच्छा न थी। इसके कारण एकदम और ब्यालीस वर्ष बहाल कर देनेवाली सुमतिकी यदि मैं हँसकर स्वागत करूँ, तो आश्चर्य क्या है ?

मेरे सामनेवाली कुरसीपर वह बैठ रही थी तभी मैंने कहा, - 'आज मेरी एक बड़ी भारी अड़चन दूर हो गयी, सुमतिताई।'।

साने और सुमति दोनों मेरी ओर देखने लगे।

मैंने गंभीरतापूर्वक सुमतिसे कहा —

'अब यदि मैं कोई साप्ताहिक समाचार-पत्र निकालूँ, तो कुछ हर्ज़ नहीं। साप्ताहिकका महत्वपूर्ण भाग होता है भविष्य। आपकी बातसे यह सिद्ध हो ही गया है कि वह हर सप्ताह आपसे प्राप्त होता रहेगा। बस। बात पक्की हो गयी। पहली स्त्री-ज्योतिषीका सम्मान मेरे पत्रको ही प्राप्त होगा।'।

मेरे इस विनोदका प्रत्युत्तर देनेके लिये सुमतिने अपने हाँठ किंचित् खोले भी । लेकिन सानेने बीचहीमें बोलना शुरू कर दिया, इसलिये उसे वे तुरंत ही बंद कर लेना पड़े । एक पैधा होता है जिसके नन्हे पत्तोंको छूते ही वे एकदम सिकुड़ जाते हैं । सुमतिके हाँठोंकी हलचल मुझे उसी तरह लगी ।

साने मेरी ओर देखते हुए बोले,— ‘ भविष्यकी तरह ही सिनेमा भी साप्ताहिकका एक महत्वपूर्ण अंग होता है । उस विषयमें भी आपको इनसे मदद मिलेगी ! ’

मैं चकित हो गया । मुझे लगा — स्कूल छोड़कर सुमति किसी फिल्म कम्पनीमें अभिनेत्री हो गयी होगी । आजकल तरुण-तरुणियाँ परदेपर आनेके लिये कितने पागल हैं, इसके सबूत मेरे पाम भी अनेक थे । एल.एल. बी. के फाइनल इयरमें पढ़नेवाला एक विद्यार्थी मेरे पीछे पड़ा था । कहता था— ‘ नौकरका भी पार्ट करना पड़े, फिर भी कोई हर्ज नहीं । लेकिन किसी भी तरह मुझे परदेपर आनेका चान्स दीजिये । ’ अभी थोड़े ही दिन पहलेकी बात है । एक प्रोफेसर साहबकी मोटी ताज़ी श्रीमतीने भी मुझे इसीतरह तंग कर रखा था । कोलंबसको नयी दुनिया खोजनेकी जिस तरह लगन लग गयी थी, उसी तरह इस बाल-बच्चेवाली मोटी महिलाने भी एक ही रट लगा दी थी— ‘ कुछ भी करो, लेकिन एक बार मुझे परदेपर चमका दो ! ’

ये दोनो उदाहरण क्षणार्धमें मेरी आँखोंके सामने आ जानेके कारण मैं सुमतिकी ओर धूर्ततासे देखने लगा । तुरंत एक बात मेरे ध्यानमें आयी । सुमति उषाकी बचपनकी सहेली है । यानी उसकी उम्र आज कम-से-कम तीस-बत्तीस ज़रूर ही होगी । लेकिन वह अठारह-बीस वर्षकी लड़कीकी तरह दीखती थी । उसके इस इकहरे बदनके कारण ही तो किसी फिल्म कम्पनीका उसे अभिनेत्री बनानेके लिये उसकी ओर ध्यान न चला गया होगा ?

यह देखते ही कि मैं उसकी ओर बड़े गौरसे देख रहा हूँ, सुमति हँसकर बोली,— ‘ सिनेमा-जगतसे मेरा संबंध ज़रूर आया है । लेकिन वह अभिनेत्रीके नाते नहीं ! ’

‘ फिर किस तरह ? ’ — मैंने साश्चर्य पूछा ।

वह ज़रा शरमायी ।

यह देखकर साने बोले,— ‘ अजी, ये ख्यातनामा लेखिका हो गयी हैं अब ! ’

यह सोचकर कि मैं शायद अब कोई मज़ाक करूँ, सुमति जल्दी बोली,— ‘ कुछ समयके पहले मैंने आपसे कहा था न, कि आप सौ वर्ष जियेंगे ? वह सिर्फ़ मुँह-

देखा कहना नहीं था। बिलकुल नाकों दम कर रहा है मेरा। कंपनी कहानी तो बहुत जल्द माँग रही है। प्रमुख नायकको छोड़कर बाकी सब अभिनेताओंकी योजना भी पक्की हो गयी है। परंतु अपनी कहानीके बारेमें मेरे मनमें जो गड़बड़ी मची हुई है, वह किसी भी तरह अभी कम नहीं हो रही है। अभी यहाँ आते समय उसी कहानीके बारेमें सोच रही थी मैं। एकदम मेरे दिलमें आया—दिमागको इतना गर्म करनेके बदले आज ही आपके पास कोल्हापुर दौड़ जाऊँ! उपावहन बहुत दिनोंसे बुला भी रही है। इसलिये उसे भी अच्छा लगेगा और अपना काम भी हो जायेगा। 'एक पंथ और दो काज' हो जायेंगे!'

तुरंत ही डॉक्टरकी ओर मुड़कर वह बोली, — 'आज्ञा मुझे स्कूल जाना है, डॉक्टर! अब तो बिलकुल समयपर ही जाना चाहिए रोज़। वरना शहरभर यह चर्चा होने लगेगी कि सिनेमासे संबंध आते ही अध्यापिकाजीका मन स्कूलसे उड़ गया —'

डॉक्टरको उठते हुए देखते ही अपना वाक्य अधूरा छोड़कर सुमति भी उठी। सानेके पीछे जब वह कन्सल्टिंग-रूममें चली गयी, तब मेरा एक मन दूसरे मनसे उसके बारेमें हर तरहके प्रश्न पूछने लगा—सुमति यां बीमार तो दीखती नहीं है। फिर वह सानेकी दवा क्यों लेती है? उसकी गठन बीस सालकी लड़कीकी तरह दीखती है सही, लेकिन चेहरेपर लड़कीका अल्हड़पन दिखाई नहीं देता। ऐसा क्यों होना चाहिए? मेरी 'हरसिगारके फूल' कहानी पढ़कर इसने बड़े तावसे उपाको पत्र लिखकर भेजा था। लेकिन अब उसने सिनेमाके लिये जो कहानी लिखी है, वह क्या बिलकुल पवित्र ही होगी? तीरथ जानेवाले साठ वर्षके दम्पतिके बारेमें थोड़े ही उसने वह लिखी होगी! उस कहानीमें भी थोड़ा-बहुत प्रेम-व्रेम तो होगा ही होगा! मतलब यह कि पवित्रताकी डींग हँकने-वाले मनुष्य मुँहसे मछलियाँ खातें हैं, इसका एक नया नमूना मुझे अब देखनेको मिलेगा!

सशंक हुए मनके प्रश्न महाभारतके यक्ष-प्रश्नोंकी अपेक्षा भी अधिक कठिन हो रहे हैं। सुमतिके विषयमें मेरे सारे प्रश्नोंको साने भी हल कर सकेंगे या नहीं, इस विचारमें मैं था तभी वही बाहर आयी।

मेरे नज़दीक आते ही वह बोली, — 'अविनाश अब शाला जा रहा है न?'
'हाँ, और शालासे भाग भी आता है!'

‘मतलब ?’

‘उसकी शालामें प्रार्थना होती है। एक बार प्रार्थनाके समय मास्टरसाहबने आँखें बंद कर लीं। तुरंत ही हज़रत पोबारह हो गये —’

सुमति दिल खोलकर हँसी। मैंने भी उसकी हँसीमें साथ दिया। मुझे इस उक्तिपर विश्वास हो गया कि छोटे बच्चे दूर हुए मनोको जोड़नेवाली कड़ियाँ होती हैं।

‘और मंदा क्या करती है ?’ — सुमतिने आगे पूछा।

‘मलमके कुर्तेके लिये इड पकड़कर बैठ जाती है।’

‘मलमका कुर्ता ? यह क्या मामला है, भई !’

‘बिना बच्चे हुए ऐसे शब्दोंका अर्थ किसीकी भी समझमें नहीं आ सकता !’

मैं इस वाक्यको सहजभावसे कह गया जरूर; लेकिन छोटे बच्चेको खिलाते खिलाते उसके शरीरके किसी फोड़ेको अनजाने धक्का लग जानेसे वह जिस तरह चीख पड़ता है, कुछ उसी तरहका भाव सुमतिकी मुद्रापर उमड़ पड़ा। मैंने भी यह महसूस किया कि तीसके पार गयी हुई एक अविवाहित स्त्रीके सामने मुझे यह वाक्य नहीं कहना चाहिए था। परंतु अब इसका क्या उपयोग था ? गुलेलसे नज़दीकके आदमीको पत्थर मार दें, उस तरह मुझे लग रहा था।

लेकिन मेरे अगले ही वाक्यने बादलोंसे छा गये हुए आकाशको एकदम निर्मल कर दिया ! मैंने कहा, — ‘मंदाका मलमका कुर्ता यानी मलमलका कुर्ता !’

सुमतिसे किसी भी तरह अपनी हँसी न रोकी गयी। वह हँसते हँसते बोली, — ‘हाँ, तब तो इसे दूसरा शब्दकोश कहना चाहिए !’

‘वह कुछ पूछो ही नहीं। बच्चोंकी सारी दुनिया ही निराली होती है। परसों मैंने अवीसे कहा कि शालामें ऊपर नंबर रखना चाहिए। तुरंत ही उसने पूछा, ‘ऊपर यानी कहाँ ? आकाशमें ?’ एक दिन हज़रत मेरे साथ राजाराम कॉलेज व्याख्यानके लिये आये थे। एक प्रोफेसरने मझेके लिये उससे पूछा, ‘तुम घरमें क्या पालना चाहते हो ? खरगोश या हरिन ?’ अवीने तड़ाकसे उत्तर दिया, ‘मैं हाथी चाहता हूँ !’

यदि साने दवाकी बोतल लाकर सुमतिको न देते, तो मेरा यह अवीब ! 11 पुराण और भी कितना लंबा हो जाता, कौन जाने ? बोतल उसके हाथमें देते हुए साने बोले, — ‘जहाँतक हो सके जाग्रण न करना !’

‘लेकिन लाइफ़में एक बार ही आनेवाला चान्स है यह, डॉक्टर !’

तुरंत ही मेरी ओर मुड़कर सुमति बोली, — ‘अजी, मैं तो भूल ही गयी थी। आप मेरे घर चायपर कब आयेंगे ?’

‘इस बार तो मैं बहुत जल्दीमें हूँ।’

‘कितनी भी जल्दी हो, लेकिन इतनी जल्दी तो ज़रूर न होगी कि लग्नबेला टहलनेका अंदेशा हो ! इसलिये कम-से-कम एक घंटेके लिये तो आपको — अगर आप न आये, तो उषा बहनको एक ऐसा क्रोधभरा पत्र लिखूँगी कि —’

इन्कार करनेकी मुझे हिम्मत न पड़ी। साथ ही सुमतिने सिनेमाके लिये जो कहानी लिखी थी, उसको सुननेकी तीव्र इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हो ही गयी थी।

उसके द्वारा दिये गये अपने पतेके छोटे कार्डको जेबमें रखता हुआ मैं उसे पहुँचानेके लिये दरवाज़ेतक गया।

उसने पूछा, — ‘कब आ रहे हैं ? आज शामको छः बजे ?’

‘छः बजे तो मेरा भाषण है। आठ और साढ़े आठके बीचमें आऊँगा। बंबईमें चायके लिये किसी खास समयकी ज़रूरत नहीं होती !’

उसे नमस्ते कर मैं लौटकर भीतर आया।

साने मेरी ओर हँसते हुए बोले, — ‘मुझे यह कल्पना बिल्कुल न थी कि आपका इससे उतना परिचय होगा ! बड़ी इंटरेस्टिंग केस है यह !’

‘क्या होता है इसे ?’

‘वैसे यदि देखा जाय, तो कुछ भी नहीं होता। परंतु लड़ाईमें चाहे ज़ख्म न हो, फिर भी मनुष्य बिल्कुल थक जाता है न ? उसी तरह हो गयी है इसकी हालत !’

डॉक्टरकी इस अलंकारिक भाषाका मतलब ही मेरे दिमाग़में न आ रहा था ! मैंने आश्चर्यसे पूछा, — ‘गरीब बिचारी मास्टरनी ! यह लड़ाई क्या लड़ेगी अपने सिरकी ?’

‘आप ग़लती कर रहे हैं। बारह सालसे यह लड़ती आ रही है !’

‘बारह सालसे ? और किससे ?’

‘निसर्गसे !’

‘मतलब ?’

डॉक्टरने मेज़की दराज़से एक कटिंग निकाला और उसे मुझे थमाते हुए बोले, - 'इसने यह कहानी बिलकुल हालहीमें लिखी है। इसे पढ़कर देखिये और फिर —'

मैं जल्दी जल्दी पढ़ने लगा। कहानीका नाम था - 'विकास'। लेखकका नाम ज़रूर कहीं दीख नहीं रहा था। अब मेरे ध्यानमें आ गया कि सुमति गुप्त-नामसे लिखा करती होगी। मैं पढ़ने लगा —

विकास

कलकल निनाद करता हुआ पानी बहने लगा। कोई गायक अपने कंठसे बाहर निकलनेवाले मधुर स्वरमें ग्यो जावे, उस तरह उस कलकल स्वरसे पर्वतराजकी समाधि लग गयी।

परंतु उसकी यह समाधि अधिक देर न टिकी।

पहले उसे गोदकी लड़कीके पैरोंके कड़ांकी छमछम सुनाई पड़ती थी। परंतु थोड़े समयके बाद उसे लगा - 'कहींपर कोई नर्तकी नृत्य कर रही है। मुझे जो आवाज़ सुनाई दे रही है वह उसकी पाजेबोंकी है !

पर्वतने आँखें खोलकर देखा।

कलकल निनादसे बहनेवाला पानी खड़खड़ आवाज़ करता हुआ दूर चला जा रहा था।

पर्वतने नदीको पुकारा, - 'बेटी —'

नदीने मुड़कर पीछे देखा। वह लहरोंका फेन नहीं था, उसका हास्य था।

पर्वतने पूछा, - 'कहाँ चली रही है ?'

'दूर बहुत दूर !'

'मुझे छोड़कर ?'

'हाँ ! यहाँ रहकर मेरे जीवनका विकास न होगा !'

• • •

नदी वेगसे दौड़ने लगी।

उसका पात्र पद पदपर बढ़ा होने लगा।

कोई उसकी पूजा करने लगे।

कोई चोदनीमें उसमें नौकाबिहार करने लगे।

नदी अभिमानसे आगे दौड़ने लगी।

दौड़ने दौड़ने उसे दूरसे पानीकी खड़खड़ आवाज़ सुनाई पड़ने लगी !
उसने किनारोंके वृक्षोंमें पूछा, — ‘कौन गा रहा है ?’

वृक्षने उत्तर दिया, — ‘महानदी । तू अब इस महानदीमें जाकर मिल जायेगी ।’

नदी जहाँके तहाँ रुककर क्रोधसे बोली, — ‘दूसरी नदीमें मिलकर मेरे जीवनका विकास न होगा ।’

वृक्षपर बैठे पंछियोंने कलरव किया । कह रहे थे, — ‘महानदीसे तू समुद्रमें जाकर मिल जायेगी !’

नदी नाक सिकोड़कर बोली, — ‘समुद्र ! ग्यारे पानीका वह बड़ा पोखर !
और उससे जाकर मैं मिलूँगी ? छि ! वहाँ मेरे जीवनका विकास न होगा !’

• • •

एक बड़ा मोड़ लेकर नदी दूसरी ही दिशामें बहने लगी ।

कितना रुक्ष भू-भाग था वह ! जैसे उसे पता ही न था कि हरा रंग नामकी चीज़ भी दुनियामें है ।

नदीकी खड़खड़ाहट सुनते ही हज़ारों लोग दौड़कर उसके किनारे आये ।

कुछ लोग बोले, — ‘भगवानने हमपर कृपा की !’

कोई कानाफूसी कर रहे थे, — ‘यदि इसमें नहरें निकालें, तो पत्थरोंमें भी फूल लग जायेंगे !’

नहर-निर्माणका कार्य आरंभ होते ही नदीका पारा एकदम चढ़ गया ।
वह क्रोधसे उबलकर बोली, — ‘इस तरहसे मेरे जीवनका विकास कैसे होगा ? वहाँ तो तुम्हारी फसलें पकेंगी, पर मेरा पात्र तो सूख जायेगा न ?’

• • •

उधर महानदी, दूसरी ओर समुद्र; इधर ये नहर बनानेवाले कुषक !

इन सबको कतराकर नदी दौड़ने लगी ।

परंतु अब उसकी गति मंद पड़ गयी थी ।

उसने आगे देखा — एक विशाल मरुस्थल फैला हुआ था । उसने दाहिनी ओर देखा — बायीं ओर देखा — कोई तूफ़ान शुरू हो गया था ।
उस तूफ़ानके कारण समतल भूमिपर जल्दी जल्दी रेतके पहाड़ उठ रहे थे ।

उसे लगा कोई जादूगरनी यह सब कर रही है। वह चिल्लाकर बोली, —
‘मैं और कुछ नहीं चाहती ! मैं सिर्फ अपना विकास चाहती हूँ !’

उसे भ्रम हुआ कि दशों दिशाएँ विकट हास्य कर रही हैं। परंतु वह किसी राक्षसका हास्य न था। बालूकी प्रचंड आँधियाँ थीं।

आजकल उस चिलचिलाती हुई मरुभूमिसे प्रवास करनेवाले लोगोंको एक बहुत छोटा-सा सोता दीखता है। उस सोतेके आसपास ऊगी हुई हरियालीको देखकर उन्हें बड़ा आनंद होता है। उस कोमल हरियालीको सहलाये और एक भी प्रवासी आगे नहीं बढ़ता। हरियालीके मृदु स्पर्शसे उसकी मुद्रापर जब आनंदकी छटा चमकने लगती है, तो उस छोटेसे सोतेमें नन्ही नन्ही तरंगें उठती हैं और हँसते हँसते एक ही शब्द गुन-गुनाने लगती हैं — ‘विकास !’

सुमतिकी कहानी मैंने पढ़कर समाप्त की होगी या नहीं की होगी, इसी समय दवाखानेमें दो-तीन आदमी आये। मेरे मनमें आया — और पाँच मिनटके बाद ये लोग आते तो ? परंतु बिछीकी अपेक्षा दुनियामें मनुष्य ही अधिक रास्ता काटते हैं ! इसके लिये क्या कर सकते हैं !

मैंने दूसरे ही क्षण यह महसूस किया कि उन अपरिचित रोगियोंपर मेरा यह क्रोध बिलकुल अनुचित था। मुझे अपने आपपर ही हँसी आयी।

मनुष्यप्राणी कितना स्वार्थी होता है ! सुमतिके जीवनके रहस्यको जाननेकी मुझे उत्कंठा लगी हुई थी। और सिर्फ इसी लिये मैं यह चाह रहा था कि डॉक्टर सानेके पास आनेवाले रोगियोंको थोड़ी देरके बाद आना चाहिए था। उन रोगियोंमेंसे किसीको ठीक दस बजे ऑफिस जाना होगा, किसीके घर उसकी पत्नी बीमार होगी और उसे अपनी पत्नीको दवा देकर और बच्चोंको खाना खिलाकर फिर अपने कामपर भी पहुँचना होगा — दुनियामें हरएककी अपनी अड़चनें होती हैं। परंतु इन बातोंकी परवाह करनेके लिये मेरा मन तैयार ही न था।

डॉक्टर साने पहले रोगीकी पूछताछ कर रहे थे, तभी और दो-तीन आदमी भीतर आये। अब मेरा विश्वास हो गया कि मुझे अब अपना बाढ़-विस्तर यहाँसे उठाना ही चाहिए। यह देखते ही मैं जा रहा हूँ, डॉक्टर साने बोले, — ‘रातको कब मिलेंगे आप ?’

‘आठ बजे मुझे सुमतिके घर जाना है।’

‘फिर? दस बजे?’

‘हूँ!’

‘यदि हो सका, तो किसी अच्छी अंग्रेज़ी पिक्चर चलेंगे।’

‘ठीक है।’

यों तो किसी भी पिक्चरको देखनेके लिये मैं उत्सुक न था। इस आशासे ही कि सानेकी भेट होनेपर मुझे सुमतिकी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होगी, मैंने उनकी बात मान ली।

सारे दिन रह रहकर मैं सुमतिकी उस रूपक-कथाके बारेमें विचार कर रहा था। स्वप्नोंपरसे रोगोंके निदान करनेकी प्रणालीके बारेमें मैंने सुना था। परंतु कहानीपरसे लेखकके रोगकी परीक्षा करनेकी सानेकी यह प्रणाली मुझे बड़ी अजीब लगी!

मैं लगातार विचार कर रहा था। सानेकी बातोंसे यह स्पष्ट हो रहा था कि इस रूपक-कथाकी नदी स्वयं सुमति है। यह नदी महानदीसे मिलनेको तैयार नहीं होती, इसका क्या मतलब? सुमतिने क्या किसी तरुणके प्रेमको धिक्कार दिया था अथवा वैवाहिक जीवनके विषयमें वह उदासीन है? कथाकी नदी समुद्रका तिरस्कार करती है — इसलिये कि वह खारा है। सुमतिके प्रणयजीवनमें ऐसा कौनसा प्रसंग आया होगा? किसी गरीब पर विद्वानने उसकी मँगनी की होगी और इसने निराशा कर दिया होगा, या —

और अंतमें वह नदी मरुभूमिमें गुप्त हो जाती है। उसके विशाल प्रवाहका बिलकुल छोटा-सा भाग एक सोतेके रूपमें बहता रहता है। अपने आसपास ऊगी हुई हरियालीको देखकर प्रवासीको आनंद हुआ, कि उस सोतेमें नन्ही नन्ही तरंगें उठती हैं और हँसते हँसते एक ही शब्द गुनगुनाने लगती हैं — ‘विकास!’

कहानीका यह अंतिम भाग सुमतिके वर्तमान जीवनका प्रतिबिम्ब होगा क्या? वह सोता यानी उसके एकाकी जीवनका बचा-खुचा उत्साह, और वह हरियाली यानी उसकी शालाकी लड़कियोंका हास्य!

कल्पनाके विमानका भ्रमण कभी भी नहीं रुकता। ऐसी अनेक कल्पनाएँ मनमें आनेके बाद मुझे अपने आपमें ही यह लगा — साने डॉक्टर हैं। इसलिये वे यदि किसी कथाकी इस तरह चीर-फाड़ करें, तो वह क्षम्य होगी। लेकिन कम-से-कम

मुझे जैसे लेखकको तो कलाकृतिकी ओर भिन्न दृष्टिसे देखना चाहिए। कला-कृतिमें कलाकारके आत्मचरित्रका प्रतिबिम्ब हो सकता है अथवा दूसरोंका अनुभव भी हो सकता है। फिर व्यर्थ ही कल्पनाके फुगों फुलाते बैठनेमें क्या लाभ है?

सुमति का पूर्व-जीवन —

मैंने उसे पहली बार अपने विवाहमें देखा था। उषाके बचपनकी सहलीके नाते वह विवाहमें आयी थी। उस समयसे लेकर आजतककी सारी बातोंका मैं स्मरण करने लगा। उस समय भी वह इतनी ही बड़ी दीखती थी। लेकिन आज सुबह उसकी मुद्रापर कुम्हलाये हुए फूलकी जो उदासी दिखाई दी, उसकी छटा भी उस समय मुझे न दिखाई दी थी। उस समय उसकी आँखें खिले हुए कमलकी तरह दीखती थीं। उसकी मुद्रापर प्रभातकी प्रसन्नता हँस रही थी और जब वह — इधरसे उधर जाने लगती, तो देखनेवालोंको चपला चमक जानेका भ्रम होता था।

उस समय वह इंटर या ज्यूनियरमें पढ़ती थी। विवाहके एक-दो दिनोंमें उसने उषासे भरपूर ठठोली तो की ही, लेकिन एक-दो बार मुझपर भी वह प्रयोग करके देखा।

विवाहकी धाँधलीमें मेरे एक दोस्तके जेबसे दस रुपयेका नोट गायब हो गया था। उसे खोज खोजकर वह थक गया। अंतमें मैंने उससे कहा, — ‘अरे भैया, अब चुपचाप बैठ जा। विवाह एक युद्ध है। उसमें थोड़ा-बहुत अलगाव हो ही जाता है! दस रुपये ही गये। इसीमें खुशी मनाओ कि बीम नहीं गये! और चाहो तो सत्यनारायणकी कथा करा डालो!’

उसी समय किसी कामके निमित्त सुमति हमारे घर आयी थी। मेरी बात सुनकर वह जोरसे बोली, — ‘लड़ाईमें इसका पता नहीं चलता न, कि मित्र कौन है, और शत्रु कौन है। उसी तरह हो गया यह। तुम्हारे यहाँके किसी आदमीने हमारे यहाँके आदमीका कोट समझकर इनके जेबमें हात डाला होगा!’

उस समय हम दोनोंसे (मेरी और मेरी पत्नीका) बिदा लेते समय उसने मुझसे जताकर कहा था, — ‘उषा-बहनको दो सालके भीतर विदुषी बना देनी चाहिए आपको।’

आगे चलकर दो-तीन सालके बाद वह पूनामें मिली। उस समय उषाकी विद्वत्तामें कोई फ़र्क न देखकर उसने मुझपर ताना कसा था, — ‘सच तो यही है

कि विवाह स्त्रियोंके पैरकी बेड़ी होती है। फर्क इतना ही है कि कैदी जेलमें काम करते हैं और स्त्रियाँ घरमें करती हैं।'

उसकी बातकी कदुता मुझे उस समय काफी सहनी पड़ी। लेकिन उसकी किताबी कल्पनाओंको खंडित करनेका मैंने ज़रा भी प्रयत्न न किया। मनमें यह कहता हुआ कि कल जब ब्याह हो जायेगा, तो इस लड़कीको आप ही आप पता चल जायेगा कि गृहस्थीमें विद्वत्ताकी अपेक्षा अन्य बातोंकी ही अधिक आवश्यकता होती है, मैं चुप रहा।

आगे चलकर दो-तीन बार वह हमें पूनामें मिली। उपा उसे कोंकणमें आनेका बार-बार आग्रह किया करती, और वह प्रत्येक बार यह आश्वासन दे देती कि अगले वर्ष ज़रूर ही आऊँगी। परंतु वह हमारे यहाँ कभी न आयी। इसलिये उसके जीवनके किसी भी परिवर्तनकी उपाको भी कोई कल्पना न हो सकती थी। फिर मेरी बात तो दूर ही रही।

अविनाशकी बारही पूनामें ही हुई। उस दिन सुमति बड़े उत्साहमें आयी थी। परंतु उपाने जब अविको उसकी गोदमें दिया तो वह उस बच्चेकी गरदन न सम्हाल सकी। उस समय वह घबराकर उपासे बोली,—‘अपना रत्न तुम्हीं सम्हालो। मैं चालीस लड़कियोंकी क्लास सम्हाल सकती हूँ; लेकिन ऐसा एक बच्चा भी मुझसे न सम्हाला जायेगा, बाबा!’

दोनों सहेलियाँ बचपनकी यादोंको दुहराने लगीं। उसमेंकी एक में अभी भी नहीं भूला हूँ।

बचपनमें ये दोनों सहेलियाँ घरके पड़ोसके मंदिरमें जाकर खेला करती थीं। एक बार उनके खेलकी गुड़िया बीमार पड़ गयी। उपाने उसे गोदमें ले लिया, लेकिन उससे दोनों हाथोंको ठीकसे हिलाकर गुड़ियाको सुलाते नहीं बनता था। तब सुमतिने क्रोधसे उसकी गोदसे गुड़ियाको उठाकर अपनी गोदमें रख लिया और न जाने कहाँ सुना हुआ एक गीत गुनगुनाकर और हाथोंको धीरे धीरे हिलाकर उसने उस गुड़ियाको सुला दिया।

उसकी याद होते ही उस समय दोनों यथच्छ हँसीं। परंतु मेरे मनमें निराले ही विचार खड़े हुए—मुझे उस समय ज्ञेय गया कि ‘कालाय तस्मै नमः’ के अनेक अर्थ होते हैं। बचपनमें निर्जीव गुड़ियासे प्यार करनेवाली सुमतिको बड़ी

होनेपर एक छोटे बच्चेको लेकर पाँच-दस मिनट उसके साथ खेलना कठिन जान पड़े ? यह घटना सचमुच आश्चर्यकारक नहीं थी क्या ?

आगे चलकर हम कोल्हापुर आये। तब हमें पता चला कि सुमतिने पूनाकी शाला छोड़ दी है और वह बंबई चली गयी है। यह स्पष्ट ही दीख रहा था कि वह अब विवाह न करेगी। लेकिन, यद्यपि कभी कभी उषा और उसमें पत्र-व्यवहार हुआ करता था, फिर भी इस नाजुक मामलेके बारेमें दोनोंने मुग्धता ही स्वीकार की थी।

स्मृतियोंकी यह आँखमिचौली मनमें शुरू होते ही सुमतिके रहस्यको जान लेनेकी मेरी इच्छा और भी अधिक बलवती हो गयी। परंतु उसकी और मेरी भेट आठ बजे होनेवाली थी; और साने तो उसके बाद मेरे पास लगभग दस बजे आ रहे थे ! तबतक मैं सिवा तर्ककुतर्क लड़ानेसे और कर ही क्या सकता था ? रसोईघरसे सौँधा सौँधा बास आनेके कारण ललचाई नज़रसे लड़का उस ओर देखे, परंतु माँ भीतरसे कुंडी लगाकर चूल्हेके पास बैठी हो ! ठीक उसी तरह मेरी जिज्ञासाका मनोभंग हो गया।

• • •

ठीक आठ बजे मैं सुमतिके घर पहुँचा। चौपाटीके नज़दीक एक मकानके तीसरे मंज़िलपर रहती थी वह। यह सोचकर कि 'लिफ्ट' से श्रुत ऊपर चला जाऊँ, मैं उस ओर मुड़ा। परंतु लिफ्ट महाशयका स्वास्थ्य कुछ गड़बड़-सा दिखा।

मुझे सुमतिके रहस्यको जान लेनेकी पड़ी थी।

मैं फुर्तीसे सीढ़ियाँ तय करता हुआ ऊपर जा पहुँचा। बालूपरसे छोटे बच्चे फिसलते हैं न ? उतनी चपलतासे मैं तीसरे मंज़िलपर पहुँच गया था।

दाहिनी ओर मुड़ते ही दरवाज़ेपर लटकनेवाली पीतलकी तख्तीकी ओर मैंने देखा। उसपर सुमतिका नाम चमक रहा था, लेकिन मैं ठंडा ही पड़ गया। दरवाज़ेमें मेरा स्वागत करनेके लिये सुमतिके बदले —

दरवाज़ेपर एक ताला लटक रहा था !

शायद वह यह भूल गयी होगी मैं आनेवाला हूँ ?

छि ! यह मुझे संभव ही नहीं मालूम होता था।

फिर ?

सुमतिपर मन-ही-मन मैं काफ़ी झल्लाया ! ज़ीना उतर जानेके लिये मैं गुस्सेसे मुड़ा भी । इसी समय एक छः-सात सालकी साँवली पर होशियार लड़की, जिसकी पीठपर दो छोटी छोटी वेणियाँ लहरा रही थीं, नज़दीकके घरसे दौड़ती हुई मेरे सामने आयी और मेरी ओर देखती हुई बोली, — ‘आप ही हैं क्या खांडेकर चाचा ?’

जन्ममें कभी न देखी उस भतीजीको मैंने गरदन हिलाकर ‘हाँ’में उत्तर दिया ।

गिलहरी जिस तरह पेड़कर चढ़ जाती है, उस तरह चटसे कूदकर वह अपने घर गयी । तुरंत ही दौड़कर आयी और मुझे एक ताली थमाती हुई बोली, — ‘सुमति-बहनजीने आपसे ठहरनेके लिये कहा है । आप भीतर बैठ जाइयेगा ।’

ताला खोलते हुए मैंने उससे पूछा, — ‘कहाँ गयी हैं वे ?’

बिल्कुल रंगमें आकर हाथ नचाती हुई वह बोली, — ‘कारमें बैठकर गयी हैं । सिनेमा लिखती हैं वे । अब हमें बहुतसे सिनेमें मुफ्तमें देखनेको मिलेंगे । आपको भी सुमतिजी साथमें ले जायेंगी सिनेमा दिखाने ।’

उसकी इन बातोंकी मन-ही-मन सराहना करते हुए ही मैंने कमरेका द्वार खोला ।

तुरंत ही भीतर आकर अँगुलीसे ऊपर दिखाती हुई वह बोली, — ‘यहाँका बटन दबाइये, तो रोशनी हो जायेगी ।’

बिजलीकी रोशनी एकदम कमरेमें फैल गयी । सामने ही महात्मा गांधीजीकी दांडी यात्रापर रवाना हो रही कृश वीरमूर्ति दिखाई दी । मैं मन-ही-मन सुमतिकी भावनाकी सराहना करनेवाला था, तभी महात्माजीके फोटोके नज़दीक ही किसी तरुणीका फोटो लटका हुआ मुझे दिखाई दिया ।

मैंने आगे बढ़कर उसे गौरसे देखा । मर्ना लॉय घूर्ततासे मेरी ओर देखकर हँस रही थी ! इन दो फोटोंको नज़दीक नज़दीक लगानेवाली सुमतिके स्वभावकी कोई थाह ही न मिलती थी ! मेरे मनमें आया — वैराग्य और विलास मनुष्यके मनमें कितने पास पास रहते हैं !

मैं दूसरी तरफ़ लगे हुए चित्रोंको देखने लगा — एक चित्रमें पंख फैलाकर नृत्य करनेवाला सुंदर मोर मेरा स्वागत कर रहा था । परंतु उसके पासहीके चित्रमें अपना विकराल जबड़ा खोलकर एक सिंह खड़ा था; उसकी ओर देखते समय, यह जानते हुए भी कि वह चित्र है, मेरा मन क्षणमात्र कॅपित हुए बिना न रहा ।

निसर्गके दृश्योंमें भी इसी तरहका विरोध दीख रहा था। एक चित्रमें एक बड़ा गुलाबका फूल था जिसे देखकर ऐसा भ्रम होता था जैसे कोई गोलमटोल बालक फुदक रहा है; लेकिन उसके नज़दीक ही जो दूसरा चित्र था उसमें यह दृश्य था कि बर्फ़से सारी धरती आच्छादित है और बीचहीमें निष्पर्ण वृक्ष किसी वृद्ध मनुष्यकी तरह मुट्ठीमें प्राण समेटे जैसे तैसे खड़ा हुआ है !

मेरे मनमें विलक्षण गड़बड़ी मच गयी। परंतु मेरे साथकी वह छोटी लड़की मेरी सहायताके लिये दौड़ पड़ी।

वह लड़की कहने लगी, — ‘सुमतिताईका मिट्ठू कितना अच्छा बोलता था। मुझे बड़ी मीठी आवाज़में पुकारता था !’

कोनेके खाली पिंजड़ेकी ओर मेरा ध्यान गया।

मैंने अपनी छोटी मित्राणीसे पूछा, — ‘सुमतिताईका मिट्ठू कैसे मर गया ?’

मौहें चढ़ाकर वह बोली, — ‘वह मरा नहीं। एक दिन सुमतिताईने उसे पिंजड़ेसे बाहर उड़ा दिया।’

मैं मनमें कह रहा था — पाले हुए तोतोंका सुमतिने उड़ा क्यों दिया ? क्या, उसकी छुटनमें उसे अपना प्रतिबिंब दीखने लगा था ?

पिंजड़ेके उस पार रखी दो वस्तुएँ — दिलरुबा और चरखा !

मेरा यह विश्वास हो गया कि सुमतिकी जीवन एक विलक्षण पहेली है।

मैंने अपनी बाल-मित्राणीसे जानबूझकर ही पूछा, — ‘सुमतिजी तुमसे बहुत प्यार करती हैं न ?’

बड़े अभिमानसे गरदन हिलाती हुई वह बोली, — ‘मुझे बहुतसे चॉकलेट ला देती हैं वे !’

मैं कुछ कह रहा था, तभी इधर उधर देखकर और स्वर नीचाकर वह बोली, — ‘पर कभी कभी मुझे अपने कमरेमें कदम तक नहीं रखने देतीं। किसीसे भी नहीं बोलतीं ! दरवाज़ेकी भीतरसे कुंडी लगाकर अकेली ही बैठती हैं और —’

ज़ीनेमें किसीके पैरोंकी आहट हुई। कोई पंछी भुर्रसे उड़ जावे, उस तरह वह छोकरी कमरेसे बात-की-बातमें अदृश्य हो गयी।

सुमतिकी आवाज़ स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ने लगी, — ‘मैं कोई इतनी नाजुक नहीं हूँ !’

सुमतिकी आवाज़के बाद ही एक अर्थहीन हास्य सुनाई दिया। मैंने द्वारकी

ओर देखा—एक सटबूटधारी बौना व्यक्ति सुमतिके साथ कमरेमें आया। मैं उसे तुरंत पहचान लिया—फिल्मी दुनियाका त्रिबकजी डेंगले था वह। पाँच सालके भीतर डोअरकीपरसे मैनेजरके पदपर पहुँचे हुए इस व्यक्ति की असीम कीर्ति किसी भी मासिक-पत्रमें क्यों प्रकाशित नहीं हुई, इसका मुझे हमेशा ही आश्चर्य हुआ करता था।

मुझे देखते ही सुमति बोली,—‘एक्सक्यूज हँ, भाऊराव। ये अचानक बुलाने आ गये साढ़े सात बजे। मैं तो जा ही नहीं रही थी। लेकिन ये कंपनीके मैनेजर साहब आये और—’

त्रिबकजी कहने लगे,—‘यों तो हमारे यहाँ चार-पाँच नायिकाएँ खाली पड़ी हैं। परंतु सेठजीका कहना है कि इनकी कहानीकी नायिका इन्हें ही पसंद करनी चाहिए। इसलिये एक अच्छी गानेवाली स्त्री दिखानेको इन्हें ले गया था। लेकिन—’

सुमतिले त्रिबकजीको आगे बोलने ही न दिया। वह बीचहीमें बोली—

‘क्या स्त्री खोजकर निकाली थी! दुनिया भरकी छटल दीखती है निगोड़ी! मेरी कहानीकी नायिका धोये हुए चावलकी तरह निर्मल है। यह निर्मलता जिसकी दृष्टिसे प्रकट होगी—’

अब त्रिबकरावने उसे आगे न बोलने दिया। वे बोले,—‘फिर यह पार्ट आपहीको करना पड़ेगा, सुमतिदेवी।’

‘आप तो कुछ भी कह रहे हैं!’—इस अर्थसे सुमतिले गर्दन लचकसे घुमायी ज़रूर; पर उसकी मुद्रासे यह दीख रहा था कि इस प्रस्तावसे उसे गुदगुदी हुई होगी।

सुमति परदेकी आड़ दूसरे कमरेमें गयी। तुरंत ही स्टोव जलनेकी आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। मैं मैनेजर साहबकी बकवास सुनता हुआ चुप बैठा रहा। ‘सुमतिदेवी जैसी कहानी-लेखिका सारी दुनियामें न मिलेगी, यदि वे सिनेमामें आ जायें, तो दो सालके भीतर मलबार हिलपर बँगला खरीद लेंगी’—इत्यादि मोती झर रहे थे उसके मुखसे। बोल इतनी जोरसे रहा था जिससे भीतर सुमति भी सुन ले।

लेकिन उसकी बातोंसे मुझे इस रहस्यका पता चल गया कि सुमति सिनेमाकी

कहानी-लेखिका कैसे हो गयी ! इस कम्पनीके मालिक एक गुजराती महाशय थे । उस सेठकी लड़की सुमतिकी शालामें ही पढ़ती थी । उस लड़कीने अपने पितासे यह हट किया कि घरमें उसकी ट्यूशनके लिये सुमति मास्टरनीको ही रखा जाय । सुमति सेठकी कारसे उनके घर जाने लगी । सेठजीको शीघ्र ही पता चल गया कि मास्टरनीजीको सिनेमा देखनेका बहुत शौक है और कभी कभी वह कहानियाँ भी लिखती हैं । व्यवसायकी दृष्टिसे उन्हें कुछ स्टंट चाहिए ही था । इस कल्पनासे कि यदि कहानी-लेखिकाकी हैसियतसे कि स्त्रीका नाम उन्हें मिल जाय, तो काफ़ी विज्ञापन कर सकेंगे, उन्होंने सुमतिसे फिल्मके लिये एक कहानी लिख देनेका बहुत आग्रह किया । इन्कार करते करते उसने जो कहानी लिखी, वह सेठजीको पसंद आ गयी । सिर्फ़ एक ही विषयमें सेठजी और वह सहमत नहीं हो रहे थे । सुमतिकी कहानीमें नायिका विवाहित नायकसे प्रेम करती है, एक विलक्षण संयोगके कारण उन दोनोंको एक ही कमरेमें एक रात बितानी पड़ती है, और इस घटनासे लाभ उठाकर नायिकाके शत्रु उसे दुनियामें बदनाम करनेकी कोशिश करते हैं । सुमतिने अपनी कहानीमें यह दिखाया था कि वे दोनों एक ही कमरेमें भले ही रहे हों, लेकिन वे एक दूसरेको स्पर्श भी नहीं करते । परंतु सेठजीको यह स्वीकार न था । लोगोंका संशय दृढ़ हो इसलिये वे चाहते थे कि कहानीमें यह दिखा जाय कि दूसरे दिन सुबह नौकरको नायकके बिस्तरमें नायिकाके सिरमें गुथा हुआ गुलाबका फूल या सेप्टी पिन मिली और फिर नायिकाके विषयका संशय फैलाता जावे । सुमतिका इससे तीव्र विरोध था । उसकी नायिकाका नायकसे जो प्रेम था, वह प्रेम केवल मानसिक होनेके कारण, सेठजीके द्वारा बताया गया परिवर्तन लोकप्रिय होनेकी संभावना होते हुए भी, उसे करनेको वह तैयार न थी । उसका कहना यह था कि नायिकाके पवित्र प्रेमपर ही सारा कथा-वस्तुका उठाव अवलंबित होनेके कारण यह दिखानेसे कि वह नायकके बिस्तरके पास जाती है किंवा उसे स्पर्श करती है; कहानीकी आत्मा ही नष्ट हो जाती है ।

यह सब कहकर त्रिवक्की मुझसे बोले, - ‘ देखिये भाऊसाहब, सुमतिजी आपकी बात अवश्य मान लेंगी । इसलिये उनकी कहानी पढ़कर, उनसे कहिये कि वे नायिकाको नायकके बिस्तरपर जाकर थोड़ी देर बैठने दें । यह दिखानेसे भी हमारा काम चल जायेगा कि नायकको एकदम गुश आ गया और इसलिये वह उसके पास गयी । पर — ’

उनकी बातोंसे मुझे ऐसा लगने लगा कि जिस तरह त्रिविकजी डोअरकीपरसे मैनेजर हो गये उस तरह शीघ्र ही मैनेजरसे कहानीकार भी हो जायेंगे।

लेकिन मेरा मन सुमतिकी कथावस्तुके विवादास्पद प्रसंगके वज्राय एक दूसरी ही बातके बारेमें विचार करने लगा। मानसिक प्रेम—पवित्र प्रेम। ऐसा प्रेम जिसमें टंचमात्र भी शारीरिक आकर्षण न हो—सुमतिको यह काव्यमय कल्पना इतनी प्रिय क्यों होनी चाहिए? अब वह तीसके पार चली गयी है। तो क्या इतनी उम्रतक वह किसी भी पुरुषकी ओर आकर्षित ही नहीं हुई, या कि इस विषयमें प्राप्त हुई अपनी असफलताको छिपानेके लिये वह आत्मवंचना कर रही है?

डॉक्टर सानेके सुत्रहके शब्दोंका मुझे स्मरण हो आया—‘लड़ाई! लड़ाईमें जल्दगी न हो, फिर भी मनुष्य थक तो जाता ही है न?’

सुमतिके ट्रे लेकर कमरेमें आनेके कारण मेरा विचार-चक्र जहाँका तहाँ ही रुक गया। चायकी चुस्कियाँ लेते लेते वह मुझसे बोली, —‘आजकी चाय आपको बड़ी मँहंगी पड़ेगी, भाऊराव!’

मैंने हँसते हँसते उत्तर दिया, —‘कोई हर्ज नहीं। पत्नीकी मित्राणीकी चाय है यह। इसलिये हिमाच लगाकर बर्ताव करनेसे यहाँ काम नहीं चलेगा।’

मैं यह कह गया ज़रूर; परंतु मैं जो कहना चाहता था, वह यह न था। मैं कहना चाहता था—‘यदि तुम्हारा विवाह निश्चित होता तो, चालीस-पचास रुपयेकी भेट तुम्हें देनी ही पड़ती। उससे अधिक तो यह चाय मँहंगी न पड़ेगी न?’

चायकी चुस्कियाँ लेते लेते बीचहीमें सुमति उठी। मेज़से एक मोटी पर सुंदर नोट-बुक उठाकर उसे मेरे हाथमें देती हुई वह बोली, —‘नोट-बुकके आकारसे आप घबड़ाइये नहीं! मैं आपको इसमेंकी सारी बकवास पढ़नेकी सज़ा नहीं दे रही हूँ। मैंने यह निशान लगाया है न? वहाँ मैंने अपनी फिल्मी कहानीका सारांश दिया है। सिर्फ़ उतना ही आप पढ़ लीजियेगा और कल शामको—’

‘कल शामको मुझे समय नहीं है। चार, पाँच मित्र आ रहे हैं मेरे घर।’

‘आते हैं, तो आयें! कम-से-कम फोनपर आप मुझसे एक-दो मिनट बात तो कर सकेंगे या नहीं? सिर्फ़ एकही शंका आपसे पूछना है मुझे। आपका फोन नंबर दे दीजिये कि मेरा काम हो जायेगा—’

त्रिचकजीने आँखोंसे मुझे इशारा किया। परंतु यह दिखाकर कि मैंने वह देखा ही नहीं है, मैंने कागज़पर अपना फोन नंबर लिखकर सुमतिको दे दिया।

चाय समाप्त होते ही सुमति बोली, — ‘सेठजीके घर जाकर नायिकाके बारेमें कुछ-न-कुछ अभी ही पक्का कर लेना है। इसलिये — माफ कीजिये। और यह देखिये, भाऊराव — परसों सुबह चित्रके मुहूर्तके लिये आइयेगा आप। यों तो आपको इसके लिये आग्रह करनेकी ज़रूरत ही नहीं है। आपकी पत्नीकी मित्राणीका ही चित्र है। इसलिये —’

जल्दी जल्दी दर्पणके सामने जाकर वह अपने केश सँवारने लगी। लेकिन तुरंत ही पीछे मुड़कर वह बोली, — ‘परसों मुहूर्तके लिये ठीक कितने बजे आना है, यह मैं फोनपर आज शामको आपको बता ही दूँगी!’

नया खिलौना मिलनेपर छोटे बच्चेको जो आनंद होता है, वह उसके रोम रोममें नाच रहा था। उससे यह कटु सत्य कहकर कि फिल्मी दुनिया एक मयसभा है, उसका मनोभंग करनेकी मुझे हिम्मत न पड़ती थी। मैं सहजभावसे उठकर इधर उधर देखने लगा। बीचके परदेको हटाकर मैंने भीतरका कमरा भी देखा। काफ़ी बड़ा कमरा था वह। मैंने उससे पूछा, — ‘तुम इस ब्लॉकका किराया क्या देती हो?’

‘तीस!’

‘अकेली ही रहती हैं इतनी बड़ी जगहमें?’

‘दूसरा आदमी कहाँसे लाऊँ?’ — उसने हँसते हुए उत्तर देनेका प्रयत्न किया। परंतु बोलते बोलते उसके हाथमें रखा पाउडरका पफ छूटकर नीचे गिर पड़ा।

मैंने ध्यानसे देखा — उसका हाथ थर थर काँप रहा था।

• • •

घर आकर जल्दी जल्दी मैंने भोजन किया और सुमतिकी नोट-बुक खोली। उसने जो निशान लगाया था वह बहुत आगे था। लेकिन उस फिल्मी कहानीके अतिरिक्त उसने और क्या क्या लिखा है, यह देखनेकी मेरी इच्छा थी ही।

वे छोटी-बड़ी रूपक-कथाएँ थीं। मुझे सुबहकी उसकी उस नदीवाली रूपक-कथाका स्मरण हो आया। सानेके द्वारा उसपर की गयी आलोचना भी याद आयी। मुझे ऐसा लगने लगा कि इन रूपक-कथाओंसे सुमतिके पूर्व-जीवनपर शायद प्रकाश पड़ेगा। मैंने जल्दी जल्दी एक एक कथा पढ़ना शुरू किया।

पहली कथाका नाम था - 'मेघमाला !'

अनेक चातक उस मेघमालाके जलबिंदुकी ओर बड़ी उत्कंठासे देखते होते हैं। परंतु वह उन सबका तिरस्कार करती है और उनसे कहती है, 'मेरा जन्म तपी हुई धरतीको शान्त करनेके लिये है, उसपर बहार लानेके लिये है। तुम जैसे क्षुद्र पक्षियोंके क्षणिक सुखके लिये नहीं।'

कहानी पूरी पढ़ चुकनेके बाद मैं सोचने लगा। स्त्रीका जीवन पुरुषके क्षणिक सुखके लिये नहीं; वह समाजसेवा जैसे उच्च ध्येयके लिये है। इस तरहकी कल्पनाएँ सुमतिके मनमें चक्कर काट रही थीं, उस समयकी कथा तो यह न हो कहीं ?

मैंने कहानीके नीचेकी तारीख देखी - १ जून १९३३।

आठ साल पहले यह कथा सुमतिने लिखी थी। और आज सुबह जो मैंने पढ़ी वह नदीकी कथा ? डॉक्टरने कहा था कि वह उसकी हालकी लिखी हुई है। मेरे मनमें आया - सुमतिकी दशा मृगजलके पीछे दौड़नेवाली हरिणीकी तरह तो न हो गयी होगी ? बीस वर्षकी उम्रमें मनुष्यकी छपी हुई पुस्तकोंपर और उनमें प्रतिपादित ऊँचे ऊँचे तत्त्वोंपर विलक्षण अंधश्रद्धा हुआ करती है। उस समय उसे इसका ज्ञान ही नहीं होता कि जीवन ही एक विद्वत्सनीय पुस्तक है। और हो भी कहाँसे ? यह पुस्तक हमेशा ही अ-प्रकाशित होती है।

बीचके कुछ पन्ने छोड़कर मैं सुमतिकी एक कहानी पढ़ने लगा। नीचे लिखनेकी तारीख १७ मार्च १९३६ दी हुई थी। इस कहानीका नाम था - 'कमलिनी !'

इस कमलिनीके पास एक भृंग आता है। वह उसे अपने हृदयमें स्थान देती है। परंतु उसे यह चेतावनी दे देती है - खबरदार, मेरे रसको कभी भी स्पर्श न करना। भृंगको लगता है - कभी न कभी तो कमलिनीको मुझपर दया आयेगी ही। वह अपना रस मुझे चखने देगी। लेकिन कमलिनी अपना हठ नहीं छोड़ती। अंतमें भृंग निराश होकर, उससे ऊबकर, उसे छोड़कर चला जाता है। कमलिनी मनमें कहती है, - 'पुरुषोंकी जाति ही झूठी होती है !'

नदीके निर्मल जलकी तलीमें पड़ी हुई चीज़ भी जिस तरह स्पष्ट दिखाई देती है, उसी तरह इन कहानियोंमें सुमतिके जीवनका प्रतिबिम्ब सुझे दिखाई देने लगा ! किसी तरुणसे उसका प्रेम हो गया होगा । परिचय बढ़ जानेके बाद उस तरुणने स्पर्श, बल्कि चुंबनकी भी अपेक्षा की होगी, और मानसिक प्रेम, पवित्र प्रेम आदि कल्पनाओंके जालमें उलझी हुई इस पगली लड़कीने उसे निराश कर दिया होगा ।

मैंने बीचके दस-बारह पृष्ठ छोड़ दिये और सन् १९३८ में लिखी एक कहानी पढ़ने लगा । वह रूपक-कथा न थी । पर —

कथाका नाम था — ‘वनभोजन’

‘शालाकी कुछ लड़कियाँ अपनी प्रिय अध्यापिकाजीके साथ वनभोजनके लिये जाती हैं । वे झाड़ोंपर चढ़ती हैं, तालाबमें तैरती हैं, नाना प्रकारके खेल खेलती हैं और अंतमें भोजनके लिये बैठनेपर इस तरह खाने लगती हैं जैसे चार दिनसे भूखी हों ।

लेकिन अध्यापिकाका कौर उसके हाथहीमें रखा रह जाता है । उसे सामनेवाले वृक्षपर बैठा हुआ पक्षियोंका एक जोड़ा दीखता है । चोंचमें चोंच डालकर वे पक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं ।

उसकी आँखोंके सामने उस किसानकी गृहस्थी खड़ी हो जाती है, जिसे उसने कुछ समयके पहले ही एक झोपड़ीमें देखा था । उस झोपड़ीमें बित्ता-भर स्थान था । दो-चार मटके और एक-दो फटे घस्र — यही वहाँका सारा वैभव था । परंतु पति जब खेतमें काम करके भोजनके लिये झोपड़ीमें आता है, तब दरवाज़ेमें उसकी पत्नी एक नंगघडंग शिशुको गोदमें लिये खड़ी रहती है । पति उस शिशुको चूमनेके लिये आगे बढ़ता है और एकदम अपनी पत्नीको ही —

उसकी वह शर्म — उसकी वह खुशी —

अध्यापिकाका कौर हाथसे छूटकर नीचे गिर पड़ता है !’

इसमें शक ही न था कि सुमतिको यह कहानी अपने जीवनसे ही सूझी होगी ।

आगेकी कहानीके विषयका कुतूहल मेरे मनमें अरोक हो गया। लेकिन मैं उसे पढ़ना शुरू कर ही रहा था तभी दरवाज़ेकी घंटी बजी।

मैंने जाकर दरवाज़ा खोला। डॉक्टर साने आये थे। कहानियाँ पढ़ते पढ़ते मैं यह बिलकुल भूल ही गया था कि सिनेमा देखने जानेके लिये वे मेरे घर आनेवाले हैं।

भीतर आते ही डॉक्टर बोले, — ‘आज मैंन सब पिक्चरोंके बारेमें पूछताछ की। पर जो पिक्चर मैं चाहता हूँ, वह कहीं भी नहीं है!’

‘कौनसी पिक्चर?’ — मैंने उत्सुकतासे पूछा।

‘‘No Flesh, No Spirit’। जब यह फिल्म पहले लगी, तो यहाँ लोगोको विशेष पसंद न आयी। उसमें पैसे खींचनेका ऐसा कुछ भी न था। परंतु उसकी कथा अत्यंत हृदयंगम थी — कोल्हापुरमें आयेगी, तब उसे अवश्य देखियेगा।’

कुर्सीपर बैठकर डॉक्टरने सिगरेट जलायी। धुएँके दो-तीन गुब्बारेका निर्माण किया और फिर वे बोले, — ‘चलिये, किसी दूसरी पिक्चरको चलें।’

‘है।’ — मैंने कहा।

‘फिर कपड़े पहनिये। दस तो बज रहे हैं।’

‘वह पिक्चर यदि हम यहीं देखें, तो?’

‘मतलब?’

सुमतिकी नोट-बुककी ओर अँगुली दिखाते हुए मैंने कहा, — ‘मैं अभी सुमति-की रूपक-कथाएँ पढ़ रहा था। आप कहते हैं, उस तरह यह इंटरेस्टिंग केस है ज़रूर। इसका सारा हाल सुनाइये न मुझे।’

• • •

डॉक्टरने शान्तिपूर्वक हाथमें रखी सिगरेट खत्म की। फिर क्षणभर मेरी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए वे बोले, — ‘लेकिन मेरी एक शर्त है!’

‘कौनसी?’

‘मैं जो कहूँगा, उस कहानीपर आप कोई कहानी या उपन्यास न लिखेंगे। मैं आपको ‘प्रोफेशनल सीक्रेट’ बता रहा हूँ।’

मैंने गरदन हिलाकर उनकी बात स्वीकार की।

डॉक्टर सामने लगे कैलेन्डरकी ओर देखते हुए कहने लगे —

‘करीब सात-आठ महीने ज़रूर हो गये होंगे जब सुमति पहली बार मेरे

दवाखानेमें आयी । उसने किसीसे यह सुन लिया था कि मैं रोगोंका मानसिक दृष्टिसे भी विचार करता हूँ । इसलिये जानबूझकर वह मेरी सलाह लेने आयी । जब मैंने पहली बार उसके स्वास्थ्यकी परीक्षा की तब मैं स्वयं ही असमंजसमें पड़ गया । हृदयकी बेचैनी और हाथ और पैरके तलुओंमें आनेवाले पसीनेको छोड़कर और किसी भी विकृतिका मुझे कहीं कोई भी लक्षण दिखाई न दिया । परंतु ये दोनों बातें बहुत मामूली हैं । इस कल्पनासे भी कि डॉक्टर जॉन्स कर रहा है, बहुतोंमें ये लक्षण प्रकट हो जाते हैं । फिर सुमति तो तरुण स्त्री थी ! कौन कह सकता है कि वह 'नर्वस्' होगी ही नहीं ? उसका विश्वास प्राप्त किये बिना विकृतिका निदान करना मेरे लिये असंभव था ।

'यह मालूम होते ही कि उसे सिनेमा देखनेका बहुत शौक है, मैं उसे अपने साथ एक-दो बार सिनेमा दिखाने ले गया । वहाँ मेरे ध्यानमें यह आया कि अंग्रेजी फिल्मोंमें चुंबनके प्रसंगोंपर वह एकदम अपने हाँठ ज़ोरसे दबा लिया करती । लेकिन ऐसे विषयोंमें 'क'से कमलका तर्क करना धोखेका होता है । मैंने उसे रोज़ शामको आकर दवा ले जानेके लिये कहा । कभी कभी दवाखानेमें जब दूसरा कोई न होता, तो वह मुझसे खुलकर बातें किया करती । उस बातचीतमें चाहे जो विषय आ जाते — गांधीवाद, ज्योतिष, सैक्स और टमाटोके विटैमिन्स भी !'

अपने इस विनोदपर खुश होकर डॉक्टर अपने आप हँसे; तो फिर मुझे भी हँसना ही पड़ा । लेकिन मैं एक शब्द भी न बोला । हालहीमें कहीं कहानीपर रंग चढ़ रहा था, उसे भंग करनेमें क्या लाभ था ?

डॉक्टर आगे कहने लगे —

'एक दिन मैंने किसी मानसशास्त्रज्ञकी 'आत्म-हत्या'पर लिखी एक पुस्तक जानबूझकर अपनी मेज़पर रख दी । उसने उसे सहजभावसे उठाकर देखी । हम दोनोंकी आत्महत्याके बारेमें बातें होने लगीं । मैंने जानबूझकर ही कहा, — 'आत्महत्या पागलपनकी एक सनक है !' उसने उत्तर दिया — 'कदापि नहीं ।' खासे बुद्धिमान लोगोंके मनमें भी आत्महत्याके विचार कभी कभी आ जाते हैं ।' इन शब्दोंके मुँहसे निकल जानेपर उसकी मुद्रापर यह भाव उमड़ा कि अच्छा होता यदि चुप रही आती । यह दर्शाता हुआ जैसे वह भाव मेरी दृष्टिमें आया ही नहीं है, मैं आगे बातें करने लगा । बातोंके सिलसिलेमें उसे यह स्वीकार करना ही पड़ा कि स्वयं उसके मनमें भी एक बार आत्महत्याके विचार आये थे ।

‘मैं सोचने लगा कि उसके मनमें ये विचार क्यों आये। धनकी उसे कमी न थी। घरकी उसे कोई चिंता न थी। उसके तीन भाई थे जो काफी कमा रहे थे। फिर उसे घरकी चिंताका क्या कारण था ?

‘रह रहकर मेरे मनमें एक ही बात आने लगी। इसका प्रेमभंग हुआ होगा ! लेकिन यह उससे पूछता कैसे ? मैंने एक-दो बार उससे यह पूछा था — ‘तुम्हें कोई विचित्र स्वप्न बगैरह दीखते हैं क्या ?’ परंतु उसने इस प्रश्नका उत्तर देनेमें डालमटूल ही की। जब मेरे ध्यानमें आया कि उसे लिखनेका धुन है, तब एक नयी पद्धतिसे मैंने उसकी विकृतिका निदान करनेका निश्चय किया। अभिजात लेखक भी अपनी रुचि-अरुचि और सुखदुःखको अलग रखकर अनेक बार लिख नहीं सकता। उस दृष्टिसे मैं सुमतिकी कहानियाँ पढ़ने लगा। धीरे धीरे मेरा विश्वास हो गया कि यह लड़की अकारण निसर्गके विरुद्ध लड़ती आयी है, मैंने सीधी उसे विवाह कर लेनेकी सलाह दी। इसके कारण कुछ दिन वह मुझसे नाराज़ भी हो गयी थी। लेकिन अंतमें उसे यह मानना ही पड़ा कि मेरे निदान बिल्कुल ठीक है।

‘एक बार उसे ज्वर आ गया था। तब उसकी पूछताछ करने मैं उसके घर गया था। भावनाशील मनुष्य ज्वरमें अधिक बककी हो जाते हैं। बातचीतके सिलसिलेमें उसके सारे पूर्व-जीवनका मुझे पता चल गया।

उसे पूँछूँ या उसपर दया करूँ, यही मेरे समझमें न आता था !’

पानी पीनेके लिये डॉक्टर बीचहीमें उठे। लेकिन मुझे ज़रूर कहानी कहनेकी उनकी यह कुशलता फिल्मका ‘इंटरवल’ ठीक समयपर करनेवाले लेखककी तरह प्रतीत हुई।

पानी पीकर डॉक्टर कहने लगे —

‘इसमें संदेह ही नहीं कि शरीरकी दृष्टिसे वह अभीतक पवित्र है। लेकिन इस पवित्रताको रखनेके लिये उसने अपनी सारी मानसिक शक्ति खर्च कर दी है।

‘अभी तक उससे तीन पुरुषोंने प्रेम किया है। उनमेंके दोसे उसका भी प्रेम था। परंतु उसमेंका कोई भी प्रेम सफल न हो सका।

‘प्रेमने उसके जीवनमें प्रथम प्रवेश किया जब कि वह कॉलेजमें थी। किसी भी विद्यार्थीकी ओर वह आकर्षित नहीं होती थी। लेकिन जब वह ज्यूनियरमें थी, तब वह निश्चय हुआ कि कॉलेजके स्नेह-सम्मेलनमें जो नाटक होगा उसमें

स्त्रियोंका काम लड़कियोंको ही करना चाहिए। सुमतिने शौकसे उसमें पार्ट लिया। जो नाटक खेला गया था, उसमें नायिकाका काम सुमतिको ही दिया गया। उनके नाटकका निर्देशन करनेके लिये एक प्रसिद्ध अभिनेता आया था। उसके रूप और उसकी आवाज़पर सुमति मोहित हो गयी। वचनसे उसे गानेका शौक था ही। इसके कारण यह आकर्षण और भी अधिक तीव्र हो गया।

‘ऐन मौक़ेपर नाटकमें नायकका काम करनेवाला विद्यार्थी बीमार पड़ गया। तब नाटकका निर्देशन करने आये हुए उस नटको ही वह काम करना पड़ा। उसके साथ काम करते हुए सुमतिको विलक्षण आनंद हुआ। उस नाटकमें एक प्रसंग था जब कि नायक नायिकाको विवाहका वचन देता है! उस समयके सुमतिके अभिनयपर नाटकगृह तालियोंसे गूँज उठा। सुमतिने उस समय जो भाव दर्शाया था, वह केवल अभिनय नहीं था। अपने प्रिय मनुष्यके हस्तस्पर्शके कारण उसकी हृदयवीणासे मधुर संगीत उमड़ने लगा था।’

मैं कहना चाहता था कि प्रेमका विषय आते ही डॉक्टर भी कवि हो जाता है। ये शब्द मेरी जिह्वापर भी आ गये थे। लेकिन डॉक्टरके कथाप्रवाहमें कोई रुकावट न हो, इसलिये मैं उन्हें भीतर-ही-भीतर निगल गया।

मेरी ओर देखकर मुस्कुराते हुए डॉक्टर बोले, — ‘वह जब वहाँसे जाने लगा, तब सुमति उससे एकान्तमें मिली। अभिनेताको उसके उत्कट प्रेमकी कल्पना आ गयी। विरहके प्रेमसे उन्मत्त होकर उसने सुमतिको चूम लिया।

‘ऐसे समय नाटक या फिल्ममें अवश्य ही कोई भीतर आ जाता है। सुमतिके विषयमें ऐसी कोई बात न हुई। लेकिन इस मुलाकातके बाद उस अभिनेताने सुमतिको पत्रपर पत्र लिखना आरंभ कर दिया। उसके प्रत्येक पत्रमें उस चुम्बनका अवश्य उल्लेख होता था।

‘सुमतिने उन सब पत्रोंको अपने पास सुरक्षित रखा। संयोगसे वे पत्र उसके चाचाजीके हाथ लग गये और फिर — फिर हिन्दू कुटुम्बमें क्या होता है, इसके कहनेकी ज़रूरत नहीं। एक क्षुद्र नाटकवालेसे प्रेम करनेके लिये उसके घरवालोंने उसे खूब ही तंग किया। यदि वह आइ. सी. एस. होता, तो जो बातें अभीतक हो गयी थीं, उनके लिये उन्हें कोई आपत्ति न हुई होती !

‘उसके चाचाने उस अभिनेताको एक बड़ा कटु पत्र लिखा और उसके नीचे बलात सुमतिले दस्तखत कराये।

‘उसे भूलना सुमतिके लिये पहले पहल बड़ा कठिन मालूम हुआ। परंतु समाज-सेवाका उच्च ध्येय अपने सामने रखकर वह विद्याध्ययन करने लगी और वह एम. ए. पहले दर्जेमें पास हुई।

‘आगे चलकर पूनामें अध्यापिका होनेपर उसे एक निराला ही अनुभव हुआ। उसकी शालामें पढ़नेवाली एक धनिक लड़कीके घर वह आने-जाने लगी। वह लड़की मातृहीन थी। थोड़ा परिचय होते ही उसके प्रौढ़ पिताने सुमतिसे सीधा विवाहका प्रस्ताव ही कर दिया।

‘प्रेमका एक कटु अनुभव उसे पहले ही हो चुका था। उस दूसरे अनुभवसे तो उसे धिन ही आ गयी। वह प्रेमको मानव-जीवनको एक विकृतिके रूपमें देखने लगी। उच्च ध्येय, समाज-सेवा, जीवनकी उदात्त कल्पनाएँ आदि शब्द दो-तीन सालतक उसकी जिह्वापर लगातार नाच रहे थे।

‘पर —

‘कहते हैं मृत्यु मृत्युको नहीं टाल सकता। प्रेमके बारेमें भी यह उतना ही सच है। मृत्युको टालनेके लिये परीक्षितने बहुत प्रयत्न किया; बेरकी इल्लीका रूप लेकर मृत्यु उसे ले ही गयी। प्रेम भी उसी तरह है। मनुष्य कहीं भी जाकर छिप जाये, प्रेम उसे खोज निकालता है।

‘इस नियमकी सुमति भी कैसे अपवाद होगी? उसके एक सहकारी शिक्षक बड़े रसिक थे। यह अपनी रूपक-कथाएँ उन्हें दिखाने लगी। उनके द्वारा सूचित किये गये सुधारोंको इसे भी मान्य करना पड़ता। इस निमित्तसे दोनोंका स्नेह बढ़ता गया। उस महाशयका विवाह हो चुका था। उसके एक-दो बच्चे भी थे। इसलिये दोनों एक दूसरेके सहवासमें निर्विघ्नतासे समय नहीं बिता सकते थे। लेकिन मराठी साहित्यका विस्तारपूर्वक इतिहास लिखनेकी स्फूर्ति उसे एकदम हुई। सुमतिको भी यह विचार पसंद पड़ा। उन्होंने एक स्वतंत्र कमरा लिया और दोनोंने इतिहासकी लिखाई आरंभ कर दी। रातको ग्यारह-बारह बजेतक वे दोनों वहाँ बैठे रहते। एक तो लोगोंको निदा करनेका बड़ा शौक होता है। ऊपरसे यदि एक अविवहित तरुणी किसी विवाहित पुरुषके साथ रातको ग्यारह-बारह बजेतक एकान्तमें बैठी रहे, तो फिर क्या पूछना है? मिट्टीके तेलके कारखानेमें आग लग जावे, वैसा हो गया।

‘सुमतिने लोकनिंदाकी कभी ही परवाह न की। परंतु कुछ दिनोंके बाद उसे एक बात मालूम हो गयी और वह यह कि मराठी वाङ्मयका इतिहास मास्टर-साहबके सहवाससे अधिक रुक्ष है! उसने बहुत कोशिश की कि उसका प्रेम केवल मानसिक रहे। वह नियमसे स्वामी विवेकानंदके ग्रंथ पढ़ने लगी। स्वभावसे सज्जन होनेके कारण मास्टरने भी बहुत दिनोंतक मामूली मुखदर्शनपर ही संतोष माना। लेकिन एक दिन मास्टर और उसकी पत्नीके बीच झगड़ा हो गया। उस मनःस्थितिमें उसने मर्यादाका थोड़ा अतिक्रमण कर दिया। सुमति एकदम नाराज़ हो गयी। यह प्रतिज्ञा कर कि अब उसका कभी मुँह भी न देखूंगी, उसने नौकरीसे त्याग-पत्र दे दिया।’

अब मेरी यह पहली हल हो गयी कि सुमति पूनाकी अच्छी नौकरी छोड़कर बीचहीमें बंबई कैसे आ गयी। मैंने डॉक्टरसे उत्सुकतासे पूछा, — ‘उसके यहाँ आनेपर आगे क्या हुआ?’

‘दूसरा क्या होगा? कुछ दिन चरखा लेकर सूत काता उसने। कुछ दिन दिलरुबा बजानेमें बीत गये। लेकिन अंतमें उसने यह महसूस कर लिया कि मनुष्यके मनका संगीत चरखेमें नहीं है, दिलरुबामें भी नहीं है, वह प्रेममें है। शालामें वह लोकप्रिय हो गयी। पूनामें अस्पष्ट रूपसे उसके मनमें उठनेवाली यह कल्पना कि शाला गन्ना पेरनेका कोल्हू है, धीरे धीरे अधिक जोर पकड़ने लगी।

‘आगे चलकर उसे फिट्स आने लगे। जब फिट्सका दौरा कम हो गया तो, इस गरज़से कि उसका स्वास्थ्यको पुनः पूर्ववत् हो जावे, वह मुझसे सलाह लेने आयी!’

‘और आपने उसे सिनेमाके लिये कहानी लिखनेकी सलाह दी। वाह! उत्तम! रोगीको दवा देनी चाहिए या उसे कुपथ्य करनेको कहना चाहिए?’

‘सच कहूँ आपसे, भाऊराव! सुमति विलक्षण बुद्धिमान है। उसकी इच्छा-शक्ति और कर्तृत्वशक्ति — दोनोंको प्रकट होनेके लिये उचित क्षेत्र ही नहीं मिला है। किसी बुद्धिमान पुरुषके साथ गृहस्थी करके भी उसने अच्छी समाजसेवा की होती। परंतु विवाहका विचार उसे जँचता नहीं है। और उसके जीवनमें ऐसी कोई श्रेष्ठ बात अभीतक नहीं आयी है जो उसकी बुद्धि और गवनाओंकी शक्तिको उलझाकर रखे! इसलिये उसके लेखोंको प्रोत्साहन देनेका मैंने निश्चय

किया। मेरे आग्रहके कारण ही वह अपनी कहानियाँ अब छपाने लगी है। जब कोई उससे कह देता है कि उसकी कहानी अच्छी है और वह उसे पसंद आयी, तब उसे बड़ी खुशी होती है। दो-दो दिनतक वह उस धुनमें मस्त रहती है। सिनेमाकी कहानीने तो उसके विषयमें दैनिक जैसा काम कर दिया। जबसे वह सिनेमाके लिये कहानियाँ लिखने लगी है, तबसे वह यह त्रिलकुल ही भूल गयी है कि मैं बीमार हूँ !’

• • •

दूसरे दिन शामको फोनपर सुमति जब मुझसे बातें करने लगी, तब उसके स्वरमें इतना उत्साह और आनंद भरा हुआ था, कि डॉक्टरके रातके शब्द मेरे कानोंमें घूमने लगे—‘वह यह त्रिलकुल ही भूल गयी है कि मैं बीमार हूँ !’ मेरे मनमें आया—परंतु यह भूल जाना कृत्रिम है—क्षणभंगुर है। जीवनके साथीके सहवासमें बच्चोंके विषयके वात्सल्यमें अथवा किसी ध्येयकी पूजामें जो खो जाना होता है वह—

लेकिन सुमति कहाँ चाहती थी कि मैं आगे सोचूँ? वह फोनपर कह रही थी,—‘सुबह ठीक साढ़े आठ बजे तैयार रहियेगा। साढ़े आठका मतलब ठीक साढ़े आठ ही है। समझे आप? सेठजी आपको फोन करेंगे ही। लेकिन मैं जानबूझकर आपको पहलेसे ही जताये देती हूँ! वरना कोई बहाना करके आप कहीं दूसरी ओर न सटक जायें!’

‘मुहूर्त कब है?’—मैंने पूछा।

‘दस बजके अठारह मिनटपर।’

‘फिर इतने जल्दी आनेकी क्या जरूरत है?’

‘ओह! आपसे कहनेको ही भूल गयी!’

मैं सुनने लगा।

‘कल मेक-अप है मेरा!’

‘मेक-अप?’

फोनसे मेरे स्वरका आश्चर्य उसने महसूस किया होगा।

वह हँसती हुई बोली,—‘आपको बड़ा आश्चर्य-सा हुआ? पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको अब इस क्षेत्रमें आना चाहिए। ठीक कह रही हूँ न?’

मैंने मनमें कहा—इस विषयपर मैं दो घंटे तक भाषण देनेको तैयार हूँ, इतना मैं इस विषयमें कह सकता हूँ। लेकिन—अकारण फोनको तकलीफ देनेमें कोई मतलब न था !

सुमति कह रही थी, —‘कल रातको सेटजी बोले—दूसरी कोई अच्छी नायिका नहीं मिल रही है, तो तुम्हीं नायिका बन जाओ! परसों बहुत अच्छा मुहूर्त है। उनके आग्रहको मैं टाल न सकी। मैंने सोचा कोई दूसरी स्त्री काम करे और अभिनय करते समय मेरी कहानीको बिगाड़ दे, इससे बेहतर यही होगा कि मैं—अरे हाँ! एक बात तो भूल ही रही थी!’

विवाहके पहले गौरी-पूजाके लिये बैठी हुई वधूके मनमें जैसी उथल-पुथल मचती है, वही उथल-पुथल इस समय सुमतिके मनमें मच रही थी—यह स्पष्ट दीख रहा था।

थोड़ा ठहरकर उसने पूछा,—‘मेरी सिनेमाकी कहानी आपने पढ़ ली न?’

‘हाँ।’

‘उसमेंका वह कमरेका प्रसंग—’

‘हाँ।’

‘सेटजी उसमें परिवर्तन चाहते हैं। उनका कहना है कि अगर नायिकाके केशोकी पिन नायकके विस्तरमें पड़ी मिल जानेसे शक शुरू हो जावे, तो क्या ही मज़ा आ जायेगा!’

मैंने कहा,—‘लेकिन पिनको वहाँ गिरनेके लिये कोई कारण भी तो होना चाहिए न? पर मुझे भी तुम्हारे द्वाग लिखा हुआ कुछ भाग जँचता नहीं है!’

‘मतलब?’—सुमतिके स्वरमें आश्चर्य और भय दोनोंका विचित्र मिश्रण हो गया।

‘बचपनसे जो एक दूसरेसे प्रेम करते आ रहे हैं, ऐसे दो मनुष्य अनेक वर्षोंके पश्चात् एक दूसरेसे मिलते हैं और एकान्त पाकर भी उनके मनमें चंचल विचार बिलकुल न आवें, यह बड़ी अजीब बात है।’

‘खैर, कल प्रत्यक्ष ही बातें हो जायेंगी!’

मैंने सहज-भावसे पूछा,—‘नायिका तो तुम हो गयी! लेकिन नायकका काम क्या है?’

‘मोतीलाल और पृथ्वीराजसे सेठजी पूछ-ताछ कर रहे थे। लेकिन मेरी यह टेक है कि चित्र मराठी भाषामें ही निकले। इसलिये उन्होंने दो-चार मराठी अभिनेताओंसे चर्चा शुरू की है। नायक कोई भी हो, मुझे क्या? मैं नायिका बनूँगी, यह अवश्य निश्चित है!’—बात समाप्त होते ही उसने जो हास्य किया, वह मुझे छोटे बच्चेकी किलकारीकी तरह लगा।

• • •

मेरे कानोंमें गूँजनेवाला उसका वह हास्य दूसरे दिन सुबह आठ बजे जब वह कम्पनीसे मेरे घर आयी, तब उसकी मुद्रामें भी चमक रहा था। छिः! सिर्फ चमक ही नहीं रहा था, अच्छी तरह नाच रहा था।

स्टूडिओके द्वारमें ही सेठजीने हम दोनोंका स्वागत किया। मैंने जो कल्पना की थी उतना बड़ा उनका पेट न होनेके कारण उनकी कर्मवीरताके बारेमें मेरा अनुकूल गय हुई।

सुमतिके कारसे उतरते ही सेठजीने हर्षविभोर होकर उससे कहा, — ‘देखिये सुमतिबेन, आपका चित्र त्रिलकुल ‘ए वन’ होगा! आजतक हम इस चित्रामें थे कि नायक किसे बनायें—लेकिन कल शामको भगवान गोपालकृष्ण हमारी सहायताके लिये दौड़ आये—रोब है, रूप है, कंठ है—सब कुछ है उस नायकमें। सुनते हैं कि तुम्हारे मराठी रंगमंचपर उसने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी!’

बातें करते करते हम सेठजीके दफ्तरके नज़दीक आये। वरामदेमें कुर्सीपर हमारी ओर पीठ किये एक व्यक्ति बैठा हुआ था। हमारी आदृष्टि पाते ही वह उठकर खड़ा हो गया। उसने सहजभावसे मुड़कर देखा।

मुझे विश्वास हो गया कि इस शख्सको मैंने पहले कहीं ज़रूर देखा है।

सेठजी सुमतिसे कह रहे थे, — ‘ये हैं आपके साथीदार श्री. बंडोपंत आपटे!’

मैंने सुमतिकी ओर देखा। वह एकदम निश्चल हो गयी थी और पगलीकी तरह बंडोपंतकी ओर देख रही थी।

मैंने बंडोपंतकी ओर देखा। वह भी चकराकर सुमतिकी ओर देख रहा था। डॉक्टर द्वारा कहे गये सुमतिके प्रणय-जीवनकी मुझे एकदम याद हो आयी। उसके जीवनका वह अभिनेता यह बंडोपंत ही होगा क्या?

लेकिन यह सोचनेके लिये मुझे मौका ही न मिला!

सुमतिकी मुट्टियाँ एकदम कसकर बंध गयीं । उसकी नज़रमें विल्क्षण सूनापन समा गया । उसे गश् आ रहा था । अगले ही क्षण उसका संतुलन खो गया । मैंने उसे सम्हाल लिया इसलिये ठीक रहा; वरना —

सेठजी चिल्ला पड़े, — ‘ पानी पानी ! ’

● ● ●

९

बंदू

सेठजीने यह सोचकर कि सुमतिको गश आ गया होगा, पानी मँगाया ज़रूर, परंतु मुझे कल्पना थी कि उसकी बीमारी इतनी मामूली नहीं कि आँखोंमें पानी लगानेसे ही वह दोशमें आ जायेगी।

डॉक्टर सानेकी बातचीतमें यह आया ही था कि कभी कभी उसे फिट्स आ जाते थें। मेरे ध्यानमें यह भी था कि उन्होंने उस दिन उसे रातको जाग्रण न करनेकी चेतावनी भी दी थी। साथ ही सिनेमाकी कहानीकी धुनमें यह भी संभव था कि उसने अधिक परिश्रम कर डाले हों। इसलिये मुझे लगा कि इसके कारण ही उसे यह फिट आ गयी होगी। नाजुक मिज़ाज तारपरकी कसरत ही होती है। ज़रा इधरसे उधर हुआ कि संतुलन खोया ही समझिये !

यह देखते ही कि मामूली पानीसे कोई असर नहीं हो रहा है, सेठजीने पड़ोस-के एक डॉक्टरको बुलवाया। उनके प्रयत्नोंको यश प्राप्त होकर सुमतिने आँखें खोली भी ! परंतु आँखें खोलकर देखते देखते बंडोपंतकी ओर उसकी दृष्टि गयी थी ! कोई ज़ख्म एकदम खुल जावे और उससे बहनेवाले खूनके कारण मनुष्य बेहोश हो जावे ! ठीक वही स्थिति हो गयी उसकी !

डॉक्टरने फिरसे इलाज शुरू किया। सेठजी धीरेसे उनसे कानसे कुछ कहने

लगे। डॉक्टरने उनसे क्या कहा, यह हम न सुन सके। लेकिन रोगिनीको तकलीफ न हो, वे हम सब लोगोको नज़दीकके दूसरे कमरेमें ले जाते हुए बोले,— ‘ज्योतिषी काहेका? हज्जाम है साला!’

मराठीमें, बिलकुल असली वाक्य-प्रचारको आत्मसात् कर लेनेमें सेठजीने प्रवीणता प्राप्त कर ली थी, इसमें संदेह नहीं। परंतु मराठीपर उन्होंने जो प्रभुत्व प्राप्त किया था, उसके लिये उनकी प्रशंसा करनेका यह समय न था।

मैंने उनसे पूछा,— ‘किस ज्योतिषीने आपको यह मुहूर्त दिया है?’

‘परसों सट्टेके समय उसने जो कहा था, वह अक्षर अक्षर ठीक निकला। इसी लिये तो मैंने सुमतिबेनकी कुंडली जानबूझकर उसे ले जाकर दिखाई और उससे मुहूर्त निकालनेके लिये कहा। चार दिनतक सोचकर दो सौ रुपये ले गया साला। छाती ठोककर बोला गदहा, कि आगे पाँच-दस वर्षोंमें भी ऐसा फस्ट क्लास मुहूर्त न मिलेगा! इसी लिये तो मैंने जल्दी की। कहानी तैयार न थी—नायिका न थी—नायक न था—कुछ न था। लेकिन मुहूर्त व्यर्थ न जाये, इसी लिये यह सारी कोशिशें की मैंने! कल रातको आठ बजे पता चला कि ये बंडोपंतजी यहाँ आये हुए हैं। रातोंरात उनसे मिला। रातको बारह बजे कॉट्ट्रेक्टपर उनके दस्त-खत लिये—’

डॉक्टरके भीतर आ जानेके कारण सेठजीको भिनेमापुग्ग मे इस नये अध्यायकी पोथी बीचहीमें रोक देनी पड़ी।

सेठजीने पूछा,— ‘कहिये डॉक्टर, कुछ होप है?’

डॉक्टरने हँसते हुए उत्तर दिया,— ‘यों वह कोई सीरियस केस नहीं है। वे जल्द ही होशमें आ जायेंगी। लेकिन आठ-दस दिन उन्हें नर्सिंग होममें रखना होगा। यदि यह मालूम हो जावे कि उनके फैमिली डॉक्टर कौन हैं, तो यह केस उनके हवाले कर दूँगा—’

मैंने बीचहीमें कहा,— ‘डॉक्टर साने।’

डॉक्टर और सेठजी सानेको फोन करनेके लिये चल दिये। कमरेमें मैं और बंडोपंत—बंडोपंत क्यों कहूँ? मेरा बाल-मित्र बंडू आपटे—हम दो ही रह गये।

क्षण-भर बोल्छूँ या न बोल्छूँ, इस विचारमें पड़ा हुआ वह दिखाई दिया। लेकिन अंतमें मनका निश्चय करके वह बोला,— ‘मुझे पहचाना, भाऊसाहब?’

‘मैं इसी फिक्रमें था कि तुम मुझे पहचानते हो या नहीं!’—हँसते हँसते मैंने उत्तर दिया।

‘तुम’ कहनेमें क्या विलक्षण जादू होता है! उसकी मुद्रापर परायेपनका जो भाव था, वह क्षणार्धमें लुप्त हो गया। वह दिल खोलकर हँसता हुआ बोला,— ‘राजाको सब लोग पहचानते हैं। परंतु गजा सब लोगोंको —’

बीचहीमें उसे रोककर मैंने कहा,— ‘देख भई बंझ, यह लोकशाहीका ज़माना है। ‘राजा’ और ‘रंक’ शब्द अब जन्म ही पुराने हो जायेंगे। अगर रहे भी तो शब्दकोशमें ही रहेंगे! इसलिये —’

‘यह बात नहीं है, भाऊसाहब!’

‘माफ़ करना है, बंझ! अभी मुझे तुम्हें एक डोज़ और पिलाना है। मेरा नाम भाऊ है। यह साहबकी दुम मेरे नामके आगे आजकल लग गयी है ज़रूर; लेकिन चाहता हूँ कि तुम जैसा मेरे बचपनका साथी तो कम-से-कम मुझपर यह अत्याचार न करे।’

‘अच्छा, भई!’—कहकर वह किन्हीं दूसरे विचारोंमें ग्लो गया।

उसकी ओर देखते हुए मुझे यह उक्ति कि मानवी जीवन अतर्क्य मोड़ लेनेवाली नदी है, याद हो आयी। करीब छब्बीस-सत्ताईस वर्षोंके बाद हम दोनों एक दूसरेसे मिल रहे थे। और मिले भी कहाँ? तो एक गुजराती कम्पनीके स्टूडिओमें!

मेरा मन भूतकालमें दौड़ने लगा। हम दोनों शालामें एक बेंचपर बैठा करते थे और चिलचिलाती धूपमें एकसाथ क्रिकेट मैच देखने सांगलीसे बुधगॉव जाया करते थे। अंग्रेजी स्कूलमें हमारे ड्रिल-मास्टरसाहबने हम सबको एक बार यह धमकाया था कि ‘जो लड़का ड्रिलमें ग़ौरहाज़िर रहेगा, उसकी टॉग पकड़कर उसे यूनिवर्सिटीसे निकाल दूंगा।’ मध्याह्नकी छुट्टीमें बंझ इन मास्टरसाहबकी इतनी हूब-हू नक़ल करके दिखाता था कि हम लोग हँस हँसकर दोहरे हो जाते थे। वह सभी मास्टरोंकी बढ़िया नक़लें किया करता था। परंतु उनमें ड्रिल-मास्टर, देवधर शास्त्री और अलूरकर मास्टरकी नक़लें तो बहुत ही मज़ेदार रहा करती थीं।

मेरी उससे अधिक दोस्ती होनेका कारण था उसका पाठांतर और मीठा गला!

‡ ‘भारती जडा सुधीहि मंदधी बने’, ‘सज्ज करनि चाप मदन येत मागुनी’^२, इत्यादि गीतोंसे लेकर ‘होई विजयी तू रंभे शुभांगे अनंग-रंग-दंग’^३ गीततक सारे नाटकोंके गीत उसे कंठाग्र रहते। गानेकी कला उसे जन्मसे ही सिद्ध थी। इसलिये पढ़नेमें गदहा होते हुए भी हम लोग उसे बहुत चाहते थे।

किसी मधुच्छत्से एक एक बूंद मधु टपके, उस तरह एक एक मधुर स्मृति मेरे मनको कोमलतासे आनंद देती हुई जाने लगी।

लेकिन, बंडू मुझे सामने चुप ही बैठा हुआ दिखाई दिया! इसलिये मैंने उससे कहा, — ‘बुधगोवकी सड़कके उन सात इमलीके पेड़ोंकी याद है तुम्हें?’

उसने हँसते हुए उत्तर दिया, — ‘वह कैसे भूल सकता हूँ? एक बार मैच खत्म होनेके बाद हम लोग आरामसे घर लौट रहे थे! उन पेड़ोंतक पहुँच ही न पाये और अंधेरा हो गया था। थोड़ी देरके बाद उन पेड़ोंके नज़दीकसे हम लोग गुज़रने लगे। तब तुमने कहा था — ‘ये पेड़ भूतके समान दीख रहे हैं!’’

मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने सालके बाद भी बंडूको यह वाक्य स्मरण कैसे रहा।

क्षणभर ठहरकर एक गहरी साँस ग्रीचता हुआ बंडू बोला, — ‘वे दिन अब लौट कर नहीं आयेंगे। अपनी कक्षाके उस समयके लड़के कितने होशियार थे! ये न? बुवा गोसावी — रामभाऊ जोशी — रघुनाथ बखले —’

वह बीच-ही-मे रुक गया। उस रुकनेमे बोलनेसे भी अधिक अर्थ भरा हुआ था। उसकी निराश दृष्टि कह रही थी — ‘मेरी कक्षाका बुवा गोसावी आज प्रांतीय काँग्रेस कमेटीका सभापति हो गया है, रामभाऊ फर्ग्युसन कॉलेजमें ख्यात-नामा प्रोफेसर है, रघुनाथ बखले भारत-सेवक-समाजके सभासदकी हैसियतसे कार्य कर रहा है। और मैं —’

उसको उदास करनेवाले इस विषयको बदलनेकी शरजसे मैंने हँसते हुए पूछा, — ‘मुझे इन सेठजीको धन्यवाद देना चाहिए। कहाँ मिल गये तुम कल उन्हें?’

‡ ये मराठी नाटकोंके गीतोंके अंश हैं जिनका भावार्थ क्रमशः इस तरह है —

१ ‘यह भारतभूमि अमृतमय सागरका रूप धारण करती है।’

२ ‘धनुष्य तैयार कर कामदेव पीछेसे आ रहा है।’

३ ‘हे रंभे, शुभांगे! तू अपने रंगदंगसे विजयी हो।’

‘नागपुरसे आये चार-पाँच दिन हो गये मुझे। देख रहा था कि यहाँकी किसी फिल्म कंपनीमें कोई काम मिलता है या नहीं। ऐसा लगा कि कल रातको किस्मत खुल गयी! लेकिन —’

सिंधु आपटेका सारा हाल जानते हुए भी मैंने जानबूझकर प्रश्न किया, — ‘तुम्हारी पत्नी और बाल-बच्चे कहाँ हैं?’

‘भगवान जाने!’ — वह हताश होकर बोला। इसके बाद थूँक गिटककर वह कहने लगा, ‘मेरी पहली पत्नी अधिक दिन जीवित न रही। एक बच्चेको अनाथ कर वह चल दी। मातृहीन शिशुकी देखभाल ठीकसे हो, इसलिये मैंने उसे उसके ननिहाल पहुँचा दिया। अब वह वहीं रहना चाहती है। वहींके लोगोसे प्यार करने लगी है और वहीं दिल् गयी है। आगे चलकर कुछ दिनोंके बाद मैंने दूसरा विवाह किया। किसी विधवाको सुखी करूँ, इसलिये जानबूझकर पुनर्विवाह किया। परंतु वह स्त्री मुझसे लड़कर हालहीमें मुझे छोड़कर चल दी। दो बच्चे भी उसीके साथ हैं। कोई — कोई भी बंधन अब मुझे नहीं है। संझा हूँ मैं अब। चाहे वहाँ रहना और मनमें आवे वैसा करना —’

मेरी मुद्रासे उसके ध्यानमें आ गया कि उसका अंतिम वाक्य मुझे अच्छा नहीं लगा।

वह बोला, — ‘देखो भाऊ, जो जलता है, वही उसे जानता है। कहावत है ‘जाके पैर न फटे त्रिवाई, वह क्या जाने पीर पराई’! दूसरी पत्नीको मैंने फूलकी तरह समझलकर रखा। परंतु उसका फल मुझे क्या मिला? फूलकी सुगंध कहीं भी नहीं है। लेकिन उसके काँटेद्वारा निकाला हुआ खून जरूर —’

बीचहीमें रुककर वह दूसरी तरफ देखने लगा।

अनजाने वह इस तरह बोलने लगा था जैसे रंग-मंचपर अभिनय कर रहा हो। उसके ये अंतिम वाक्य सुनकर मैं असमंजसमें पड़ गया। सवाल यह खड़ा हुआ कि सिंधु आपटेके उस आत्मचरित्रको सच मानूँ? या कि मेरे बचपनका बंझ जैसा मित्र अपने हृदयकी जो बातें बता रहा है, उन्हें सच मानूँ? सिंधु आपटेका हाल पढ़ते समय तो मैं समझा था कि इसका दूसरा पति निरा पशु होना चाहिए!

पर —

मैंने बंझकी ओर देखा। बचपनकी तरह इस समय भी वह उतना ही सज्जन दीख रहा था।

डॉक्टर सानेका पत्र लेकर एक आदमी मुझे बुलाने आया, इसलिये बंझूसे यह कहकर कि 'अभी प्रॉच मिनटमें आता हूँ', मैं बाहर चल दिया।

डॉक्टरने मुझे एक तरफ ले जाकर पूछा, - 'आप सुमतिके साथ ही यहाँ आये हैं, या —'

'मुझे अपने साथ लेकर ही तो वह यहाँ आयी है न!'

'कारमें वह आपसे क्या क्या बातें कर रही थी?'

'और क्या बातें करेगी? अपनी कहानीकी ही चर्चा कर रही थी।'

'उसकी कहानीपर क्या आपने कड़ी आलोचन कर दी?'

'छि! इसके विपरीत मैंने ज़रूरतसे ज्यादा तारीफ कर दी उस कहानीकी। लेकिन मैंने एक बात ज़रूर बार बार जताकर कही।'

'कौनसी बात?'

'मानसिक प्रेमके विषयकी उसकी कल्पनाके बारेमें मैंने उससे यह कहा कि स्त्री-पुरुषोंके सुखमें, मनके मिलनके बराबर ही शरीरके मिलनका भी भाग होता है —'

'यह सुनकर तो उसे 'शॉक' न लगेगा। मेरे मुँहसे भी उसने कोई इज़ाजत वार यही बात सुनी होगी!'

ऐसा लगा कि डॉक्टर विचारोंमें ग्वो गये हैं।

मैंने बीचहीमें कहा, - 'मुझे कुछ दूसरा ही शक हो रहा है!'

'कौनसा?'

'उसके साथ काम करनेके लिये सेठजी जिस अभिनेताको लाये हैं, उसे देखकर —'

साने अधीर दृष्टिसे मेरी ओर देखने लगे।

'उस अभिनेताका और इसका पूर्व-परिचय, यही नहीं बल्कि इन दोनोंमें प्रेम होगा।'

'वह अभिनेता कहाँ है?'

'दूसरे कमरेमें बैठा हुआ है।'

'लेकिन ऐसे नाजुक मामलेमें वह मुझसे दिल खोलकर बातें करनेके लिये कैसे राज़ी होगा?'

'वह मेरा बचपनका दोस्त है। इसके सिवा आपका एक रोगी भी है!'

‘मतलब ?’

‘उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गयी है। वह उस सदूभाऊकी ही बहन है। इसलिये —’

यह मालूम होते ही कि सुमति होशमें आ गयी है, डॉक्टर तुरंत उसके पास चल दिये।

• • •

डॉक्टर साने जैसे अपरिचित मनुष्यसे अपने वैवाहिक जीवनकी कहानी कहनेके लिये बंझ पहले राजी ही न होता था ! मैंने उससे काफ़ी बहस की। सिर्फ़ अज्ञानके कारण गृहस्थीके सुख किस तरह सत्यानाश हो गये, इसके अनेक उदाहरण मैंने उसे दिये, और फिर अंतिम उपायके रूपमें उससे यह भी कहा कि उसकी पत्नी कोल्हापुरमें है और वह इस संबंधमें मुझसे मिली थी। तब कहीं वह अपना रहस्य डॉक्टरसे कहनेके लिये राजी हुआ।

सानेने सुमतिको नर्सिंग होममें भेजनेका प्रबंध कर दिया। वे बंझका सारा हाल शान्तिसे सुनना चाहते थे। उसकी उन्हें बहुत ज़रूरत थी। उस दृष्टिसे रातका समय ही उपयुक्त था। अतः वही तय हुआ।

• • •

डॉक्टर साने, मैं और बंझ तीनों रातको नौ बजे कारसे बाहर निकले। हम लोगोंने कहीं दूर समुद्रके किनारे जाकर बैठनेका निश्चय किया था।

‘ब्लैक आउट’ के कारण ऐसा आभास हो रहा था कि बहुत रात हो गयी है। हम समुद्रके किनारे पहुँचे। उस समय भाटेके कारण बालूके मैदानका एक बड़ा भाग खाली पड़ा हुआ था। अभीतक बंझ सानेसे एक शब्द भी न बोला था। इसलिये मुझे संदेह ही था कि वह सानेसे दिल खोलकर बातें करेगा या नहीं। यदि वह मुँहपर ताला लगाये रहे, तो मेरी यह सारी कोशिश बेकार हो जायेगी।

पहले पाँच-दस मिनट इसी हालतमें बीत गये। हम तीनों ही हाथसे बालूके साथ यों ही कुछ खिलवाड़ करते हुए और बीच-बीचमें कोई मामूली वाक्य कहते हुए बैठे थे। परंतु मुझेकी बात ज़रूर—

जबकि मैंने समुद्रकी ओर देखा। छोटी छोटी लहरें कुछ आगे बढ़ने लगी थीं। ज्वार शुरू होनेके आसार थे ये।

मैंने बंडूकी ओर देखा। उसके होंठ भी हिलने लगे थे।

नीचे देखता हुआ वह बोला, — 'डॉक्टर, सुनवह भाऊने कहा — शरीरका घाव यदि खुला छोड़ दें तो वह चर्चता जाता है; परंतु मनके घाव खोल देनेसे ही अच्छे हो जाते हैं। मुझे भी यह सच लगा। इसलिये मैंने उससे कहा कि मैं अपनी कहानी डॉक्टरको सुनानेके लिये राजी हूँ। लेकिन ज्यों ही कहनेका समय आया, त्यों ही ज़रूर —'

मैंने बंडूके काँधेपर धीरेसे हाथ रखकर कहा, — 'तुम कोई संकोच न करो, बंडू! जो कुछ कहना है, दिल खोलकर कह डालो।'

डॉक्टरने भी दृष्टिसे उसे धीरज बँधाया।

उसका हाथ बालूसे खेल ही रहा था। अब उस खिलवाड़को एक घरका स्वरूप आ गया था। उस घरकी ओर अँगुली दिखाता हुआ वह बोला, — 'सच तो यही कि मनुष्यका सुख बालूके इस घरकी तरह होता है। वह कब लड़खड़ाकर गिर पड़े — उसके गिर पड़नेके लिये एक छोटा-सा कारण भी काफी हो जाता है। खैर, छोड़िये इसे। मैं आपसे अपना पूरा हाल ही कहे देता हूँ जिससे कि आप खुद ही निर्णय कर सकेंगे कि बीती घटनाओंमें मैं कहाँतक दोषी हूँ।'

वह क्षण-भर ही रुका। उसकी दृष्टि ऐसी हो गयी थी जैसे वह कहीं दूर देखनेका प्रयत्न कर रहा है।

ज्वारकी लहरें ज़ोर ज़ोरसे आने लगी थीं।

बंडू कहने लगा, — 'शालामें मैं कोई बड़ा होशियार विद्यार्थी न था। मेरा झुकाव था नक़लें करने और गानेकी तरफ़। इन कलाओंमें मैं पहला नंबर प्राप्त कर लेता। लेकिन मेरे मामा थे एक बड़े वकील! उनके कोई सन्तान न थी। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं एलएल. बी. पास करके उनकी वकालतको आगे चलाऊँ। लेकिन उनमें यह शंका कभी न आयी कि अँग्रेज़ीकी चौथी कक्षासे अँग्रेज़ीकी पाँचवीं कक्षामें जानेके लिये ही जिसका क्राफ़िया तंग हो गया था, वह बुद्धू एलएल. बी. कैसे होगा? मैं हमेशा मनमें कहा करता — 'जो मामूली कूपमें तैरनेसे डरता हो, वह कृष्णाकी बाढ़में कूदकर उस पार कैसे जायेगा?'

उसका यह उदाहरण मुझे बड़ा मज़ेदार लगा। बचपनके संस्कार मनपर किस तरह अंकित हो गये हुए होते हैं!

'मामासे यह सब कहनेकी हिम्मत ही न पड़ती थी। वे ज़मदग्नि महाराजके

अवतार थे ! माँ भी उन्हींकी ठकुरसुहाती कहा करती । इसमें उस बेचारीका क्या दोष था ! कौन माँ यह इच्छा न करेगी कि उसका बेटा एक बड़ा वकील बनें और खूब रुपये कमायें ?

‘लेकिन मुझे रह-रहकर लगता — मकाके खेतमें अंगूर नहीं होते । शालामें जगाम-जगमे, और ए स्कवेअर्ड माइनस बी स्कवेअर्ड आदिसे तो मेरा सिर बिलकुल पक जाया करता था । परंतु क्या करता ? पिताजी बचपनमें ही अकेला फर गये थे, बराबरीका अथवा जिसे अपना कह सकूँ, ऐसा कोई नज़दीक न था; ऐसी हालतमें दिलकी बातें आखिर कहता भी किससे ? मैं यह जानता था कि माँने मेरे विषयमें जो आशा संजो रखी है, वह झूठी है । किंतु मैं मन-ही-मन हमेशा कहा करता — बचपनमें मैं किचकिच न करूँ इसलिये माँने मुझे अप्पीमके नशेमें रखा होगा । अब वह किचकिच न करे इसलिये मुझे भी उसे आशाके नशेमें रखे रहना चाहिए !

‘परंतु मेरी यह इच्छा सफल न होनी थी ।

‘अंग्रेजी छटवीं कक्षामें मैं फेल हो गया । मुझे पिछले कक्षेहीमें रहना पड़ा । रिज़ल्टके दिन रातको मैं बहुत देरमें घर लौटा । मैंने सोचा था कि मामा सो गये होंगे । पर वे जाग ही रहे थे । उन्होंने जो जली-कटी कहना शुरू किया — मैं सोचता हूँ — तलवारकी धारसे भी जीभकी धार अधिक बुरी । भोले-भालोंके प्राणोंका बलि लेनेमें यह दूसरी धार ही अधिक कुशल होती है !’

ज्वारकी लहरोंकी खड़खड़ाहट अब काफ़ी अच्छी तरहसे सुनाई पड़ने लगी थी । मैंने मनमें कहा — बंङ्ग अब पूरी तरहसे बोलनेके रंगमें आ गया है ।

अपने सामनेके बालके घरको मिटाता हुआ बंङ्ग कहने लगा, — ‘मामाकी वे जली-कटी बातें मेरे हृदयमें चुभ गयीं । मैंने यह निश्चय कर लिया कि अब इस घरमें पानी भी न पिऊंगा ! उस दिन रातको बिना कुछ ग्वाये ही मैं सो गया ।

‘दूसरे दिन सुबह माँके ट्रंकसे पाँच रुपये उड़ाकर मैं चुपचाप घरसे बाहर निकल पड़ा । मामाने मेरी बहुत खोज की । परंतु उन्हें कभी भी मेरा पता न लगा ।

मैं एक बाबाके साथ खानदेश गया । वहाँ एक अच्छे कীরतनकारने मुझे देखा । उन्हें भी पीछे खड़े होकर उनके साथ भजन कहनेके लिये एक लड़केकी ज़रूरत थी ही । उन्होंने मुझे संगीत सिखाना स्वीकार किया और मुझे अपने साथ लेकर जगह जगह घूमना शुरू कर दिया । उनके साथ घूमते घूमते मेरी

संगीत सीखनेकी भूख अधिक बढ़ती गयी। उनके साथ चार 'कटाव', पचीस 'दिंडियाँ' और दो सौ 'आर्या' बार बार कहकर मेरा संतोष न होता था। मुझे पता चला कि नागपुरमें एक ख्यातनामा मुसलमान संगीतज्ञ है। एक दिन उन कीर्तनकार महाशयको चक्रमा देकर सीधा नागपुर पहुँचा।

'यदि कहने लगूँ कि उन खोसाह्वसे मैंने संगीतकी विद्या किस तरह हासिल की, तो एक पोथा बन जायेगा। कहते हैं कि गायन विद्या सोनेकी खदान है। आमदनीकी दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु अन्य तरहसे भी। यह कहावत सच है।

'सोनेकी खदानका सोना जिस तरह मिट्टीमें मिला रहता है, उस तरह गायन विद्या अनेक मोहोके साथ संलग्न रहती है। परंतु मैं किसी भी मोहका शिकार न हुआ। विद्याको प्राप्त करनेका नशा मुझपर इतना अधिक चढ़ गया था, कि किसी भी व्यसनकी ओर मैंने झककर भी न देखा।'

बंडू आराम करनेके लिये क्षण-भर रुका। मेरे मनमें आया—बंडूको कोई व्यसन नहीं। फिर शरीरकी भूखके बारेमें उसे अपनी पत्नीपर जुल्म क्यों करना चाहिए? ऐसे विषयमें शराबी हमेशा अतृप्त रहता है और इसी लिये चोतलोंके पीछे औरतें भी उसके जीवनमें प्रवेश करती हैं। परंतु बंडू जैसे सार्विक मनुष्योंको—

लहरोकी खड़खड़ाहट बढ़ रही थी। बंडू भी अब जल्दी जल्दी बोलने लगा था—

'उन दिनोंकी याद आती है, तो आज भी मन किस तरह प्रसन्न हो जाता है! संगीतकी शिक्षाकी धुनमें भूख, प्यास और तो और मोंके अस्तित्वको भी मैं भूल गया था। वे सात-आठ साल कब निकल गये, इसका मुझे पता तक न चला!

'आगे चलकर मैंने समाचार-पत्रमें मामाका मृत्युका समाचार पढ़ा। तब कहीं मैं अपने उस बड़े सपनेसे जागा। माँकी पूछताछ करनेके लिये मैं लौटकर आया।

परंतु बीचकी अवधीमें बहुतसे उलट-फेर हो गये थे। पचासकी झकोर लगने-पर हमारे मामासाहब एक औरतके प्यारमें फँस गये थे। उन्होंने पानीकी तरह पैसा कमाया था। परंतु जिस तरह कोई बाँध टूट जावे, उस तरह उनके उस सब पैसेकी हालत हो गयी। बुढ़ापेकी लतके कारण शहरमें वे काफी बदनाम भी हो गये।

१ कटाव, दिंडी और आर्या—ये मराठी कविताओंके प्रकार हैं।

‘मैं आया उस समय माँ विरक्त होकर काशीजी जानेकी तैयार कर रही थी। उसका शेष जीवन सुख और संतोषमें बीते, इसलिये मैंने उससे कहा—‘तुम जा कर सुखसे वहाँ रहो। मैं जहाँ भी रहूँ वहाँसे तुम्हें हर महीने नियम-पूर्वक बीस रुपयेका मनीऑर्डर भेजता रहूँगा।’

‘माँको दिये इस वचनका पालन करनेके लिये तुरंत ही मैंने एक प्रसिद्ध नाटक कम्पनीमें नौकरी कर ली। माँ काशी च्ल दी। लेकिन जाते जाते उससे मुझसे एक शपथ खिलाई। मामाके उदाहरणसे वह भयभीत ही हो गयी थी। उसके चरणोंको छूकर मैंने स्वीकार किया कि शीघ्र ही मैं विवाह कर लूँगा और ज़िंदगीमें परायी स्त्रीकी ओर भूलकर भी न देखूँगा।

‘अपने प्रौढ़ और प्रतिष्ठित भाईकी एक औरतके कारण क्या दुर्दशा हुई, यह उसने देखा था। नाटक कम्पनियाँ तो इस विषयमें चढनाम ही रहती हैं। इसलिये उसके द्वारा दिलाई गयी शपथ मुझे भी उचित ही जान पड़ी।

‘मैं शादीका विचार करने लगा। परंतु जहाँ तहाँ एक बात मेरे आड़े आने लगी—लौकिक दृष्टिसे मैं नाटकमें था—एक नाटकी था।

‘नाटक कम्पनीके पहले दो वर्षोंमें मुझे समाजके दोगी स्वभावका पूरा पूरा अनुभव हो गया। समाजका कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति मुझे अपनी लड़की देनेके लिये तैयार न था। लेकिन यही सभ्य लोग अपने कुटुम्बके साथ मेरा काम देखनेको आया करते थे। मेरे गानेपर ‘वन्स मोर’ कहते थे और मेरे श्रृंगारके प्रवेशोको बड़ी दिलचस्पीसे देखते थे।’

बंझका स्वर अब क्राफ़ी ऊँचा चढ़ गया था। अकारण सहन किये हुए अपमानोंका स्मरण होकर वह क्रोधसे बोल रहा था। मेरे मनमें आया—आजका मानवी जीवन सभी तरफसे दोगी बन गया है। बंझको उसका सिर्फ़ धक्का ही लगा, परंतु बहुतेरोंको उसकी ठोकरें खानी पड़ रही हैं और कगेड़ो लोग तो उसके पैरोंतले रौंदे जा रहे हैं। उनका करुण क्रंदन—

बंझ आगे कह रहा था—

‘श्रृंगारके प्रवेशोंकी बात बातोंके सिलसिलेमें आ ही गयी है, इसलिये कहता हूँ। कलाके लिये कलाकारको कभी कभी कितनी ज़बरदस्त कोमत देनी पड़ती है इसकी कल्पना उन्हें नहीं हो सकती जो मनोरंजनके लिये उसे देखने आते हैं। कोई भी रस हो, परंतु पार्टीसे एकरस होते समय मेरी भावनाओंपर इतना तनाव

पड़ता था कि पार्ट करनेसे पहले और उसके बाद मेरी पागल जैसी स्थिति हो जाया करती थी। इसमें भी अगर शृंगारका काम रहा, तब तो मेरे मनकी प्रक्षुब्धता और भी अधिक बढ़ जाती थी। नाटक समाप्त होनेपर सुबह तक मुझे नींद ही नहीं आती थी। कल्पनाको स्वतंत्र छोड़ देना, उत्कट अनुभवोंको उनके साथ एक-रूप होकर जीवित दिखाना और इतना करनेके बाद यह सब एक क्षणमें भूल जाना — यह बात जितनी दीखती है उतनी सरल नहीं है। अनेक कलाकार सनकी ही नहीं, बल्कि व्यसनी भी होते हैं। इसका कारण उनकी भावनाओंपर पड़नेवाला यह तनाव ही होना चाहिए। बेचारे तप्त मस्तिष्कको शान्त करनेके लिये अथवा पड़े हुए तनावको भूल जानेके लिये किसी भी व्यसनका आश्रय ले लेते हैं !’

साने ब्रीचहीमें बोले, — ‘मेरे अन्वेषण कार्यके लिये तुम्हारी ये बातें बड़े कामकी हैं। हाँ, कहते चलिये !’

बूझ थोड़ी देरके लिये कुछ झेंप-सा गया। पर तुरंत ही वह बोला, — ‘मनुष्य स्वयं अपने बारेमें कितनी भी बातें करें, फिर भी वे उसके लिये काफ़ी ही नहीं होतीं; लेकिन अब — मुझे के विषयपर ही आता हूँ —

‘नाटक कंपनीमें मुझे अच्छा वेतन मिलता था। परंतु एक भी प्रतिष्ठित व्यक्तिने मुझे अपनी लड़की न दी। पर मेरी दशा ज़रूर दिन प्रति दिन दयनीय होने लगी। मुझे कोई व्यसन न था। मैं जानता था कि परायी स्त्रीकी ओर बुरी दृष्टिसे देखना पाप है। माने जो शपथ दी थी, वह पद पदपर मेरे कानोंमें गूँज रही थी। लेकिन —

‘मेरे मनमें हर तरहके विचार आने लगे। शरीर और मनके बीच एक विचित्र कलह शुरू हो गया। मन हमेशा पवित्रताका समर्थन किया करता। शरीर कहता — तुम्हारी पवित्रता तुम्हें ही मुबारक हो ! जिसे खानेकी ज़रूरत नहीं होती, वह भूखके लिये कभी भी चोरी न करेगा। परंतु जो भूखसे छटपटा रहा है — तड़प रहा है, वह यह तात्त्विक विचार करता नहीं बैठा रहेगा कि चोरी पवित्र है या अपवित्र !

‘गरमीमें धूलकी आँधियाँ उठती हैं न ! उसी तरह इस प्रकारके विचार मेरे मनमें लगातार उठने लगे।

‘इसी समय एक कॉलेजसे मुझे बुलावा आया। वहाँके विद्यार्थी अपने स्नेह-

सम्मेलनमें एक नाटक कर रहे थे। उसका निर्देशन करना था। एक माहकी छुट्टी लेकर कहीं बाहर जानेका मेरा विचार था ही। यह सोचकर कि कॉलेजके उत्साह-पूर्ण वातावरणमें मुझे अच्छा लगेगा, मैंने वह निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

‘वह एक महीना मैंने बड़े आनंदमें बिताया। परंतु अभागे आदमीका आनंद बहुत दिन नहीं टिकता। उस एक महीनेमें नाटकमें नायिकाका काम करनेवाली लड़की और मुझे एक दूसरेके प्रति विलक्षण आकर्षण लगने लगा। अंतमें, एका-न्तमें बिदा लेते समय उसे चूम लेनेका मोह मैं संवरण न कर सका।

‘उम लड़कीका नाम मैं आपसे नहीं कह सकता, परंतु वह लड़की बड़ी प्रिय और होशियार थी। उसका मेरे प्रति जो प्रेम था, वह अणिक था क्या, कौन जाने! परंतु वह इतना श्रेष्ठ अवश्य था कि उसपर मैं पूर्ण रूपसे मोहित हो गया, इसमें संदेह नहीं।

‘मेरे कॉलेजसे चले आनेके बाद उस लड़कीके चाचाको इस गुप्त बातका पता चल गया। उसने उस लड़कीके दस्तखतसे मुझे एक ऐसा विचित्र पत्र भेजा कि—

‘मुझे एक अणमें अपनी गलती महसूस हो गयी। मैं भले ही कलाकार होऊँ, मुझे हर महीने दो सौ रुपये वेतन भी मिलता हो, पर आखिर था तो मैं एक नाचीज़ नट ही। पत्नीकी हैसियतसे एक सुशिक्षित लड़कीकी चाह करना, प्रतिष्ठित समाजकी दृष्टिसे गुनाह था।

‘मैंने शीघ्र ही एक गरीब पुरोहितकी लड़कीसे विवाह कर लिया। मेरी यह पत्नी रूपवती भी न थी और कुरूप भी न थी। परंतु उसके सहवासमें मैं सुखी हुआ, मेरे मनको एक प्रकारकी शान्ति प्राप्त हुई। सप्ताहमें तीन दिन जागृत होनेवाली चित्रविचित्र भावनाओंकी निरंकुशता और उनके कारण उत्पन्न होनेवाली मेरे मनकी बेचैनी उस भोले-भाले जीवके भावुक स्पर्शमें जाती रहती। मैं हमेशा उससे मज़ाकमें कहा करता—‘तुम पुरोहितकी लड़की भले ही हो, परंतु तुम्हारे अधरोंमें मदिराका कलश है। जब वे मेरे हाँठोंसे लगते हैं, तब मैं अपने सारे दुःख भूल जाता हूँ।’

‘मैं जब ऐसी कोई बात कहने लगता, तो वह कहती—‘यह घर है, थंटर नहीं। ऐसे भाषण नाटकमें ही शोभा देते हैं!’

‘उसे इस बातकी कल्पना ही न थी कि एक पुरुषके रूखे जीवनमें मैंने कितना गीलापन ला दिया है और अपने स्पर्शसे किस तरह उसका संतुलन सम्भाल रही

हूँ। वह यदि उस समय मेरे जीवनमें न आयी होती, तो मैं शायद शराबका प्याला मुँहको लगा लेता और कदाचित् वेष्ट्याओंके कोठोके भी चक्कर काटने लगता। वह सीधी थी, भोली-भाली थी। परंतु मेरे जीवनकी देवता थी। मेरे दुर्भाग्यसे अपनी स्मृतिके रूपमें एक लड़की छोड़कर वह भगवानके घर चल दी !'

बंझने अपने आँसू पोछे ! तुरंत ही कृत्रिम हास्य करके वह बोला —

‘ उस समय मुझे वैराग्यका एक बड़ा झटका आ गया। प्रथम पत्नीकी यादमें ही बची हुई जिंदगीको बिता देनेका मैंने संकल्प किया। स्मृतिके रूपमें उसकी पसंदकी साखियाँ सुरक्षित रख लीं। उसके केशोंकी सेपटी पिनपर मैं आँसुओंका अभिषेक करने लगा। उसका एक छोटा सा फोटो था। उसे बड़ा करा कर, मैंने उसे अपने ब्रेटकव्रानेमें लगा दिया। मैं मनमें कह रहा था — ‘ सीताकी स्मृतिमें रामचन्द्रजीने अपना जीवन नहीं बिता दिया ? मैं भी उसी तरह — ’

‘ एक बात मैं भूल गया था। प्रभु रामचन्द्र कोई इक्का ही होता है। लेकिन बंझ आपटे घर घर मिलते हैं !

‘ प्रथम पत्नीके स्मृतिमुग्धमें, शेष जीवनको व्यतीत कर देनेका मेरा संकल्प पूरा नहीं हुआ। गडकरी^१ने कहा है, ‘ संकल्प और सिद्धिके बीचमें ईश्वरी इच्छा खड़ी रहती है। ’ परंतु मुझे यह सच नहीं लगता। मेरा अनुभव यह है कि संकल्प और सिद्धिके बीचमें मनुष्यका दुर्बल मन ही आड़े आता है।

‘ अगर मैं अपनी दुर्बलताकी कहानी विस्तारपूर्वक कहने लगूँ, तो आप लोग ऊब जायेंगे। लेकिन एक बात कहे बगैर नहीं रहा जाता। मनको कब्जेमें रखनेकी मैंने बड़ी कोशिश की। लेकिन या तो यह कहिये कि मैं दुर्बल था इसलिये, अथवा पद पदपर भावनाको प्रशुब्ध करनेवाले व्यवसायमें पड़ा था, इसलिये कहिये, मुझे उस काममें सफलता न मिली। मेरा ख्याल है कि दुनियामें नब्बे फी सदी लोग मुझ जैसे ही होते हैं। प्रवाहक साथ वे तैर लेते हैं। लेकिन यदि प्रवाहके विरुद्ध तैरनेका मौका आ जाये, तो उनके हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते हैं ! ’

सानेने गर्दन हिलाकर इस बातका समर्थन किया।

बंझ आगे कहने लगा —

१ राम गणेश गडकरी : मराठी भाषाके एक प्रसिद्ध आधुनिक नाटककार।

‘अब मैं अपनी रामकहानी व्यर्थ लंबी नहीं करता। हमारी कंपनी बंबईमें खेल कर रही थी। उस मौक़ेपर गोपालराव मराठेसे मेरा परिचय हो गया। आदमी बड़ा रसिक है। कंपनीके वातावरणमें मुझे हमेशा घुटन-सी मालूम हुआ करती थी। इसलिये मैं गोपालरावके घर आने-जाने लगा। वहाँ उनकी विधवा बहनसे मेरी पहचान हो गयी। उसका नाम है सिधु। मास्टरनी थी वह।

‘बचपनसे मुझे ऐसा लगता था कि सामाजिक सुधारके बारेमें मुझे कुछ करना चाहिए। नाटक कंपनीमें प्रवेश करनेके बाद वह इच्छा और भी अधिक तीव्र होने लगी। परंतु ऐसा कुछ भी न था जो मैं कर सकूँ। सिधुको देखते ही मेरी यह इच्छा बलवती हो गयी। उसने अधिक ज़ोर पकड़ा। उसके मनमें भी विवाह करनेका विचार चक्कर काट ही रहा था; परंतु उसके सामने यह समस्या खड़ी थी कि अपना यह विचार भाईपर किस तरह प्रकट करूँ। अंतमें अंधेको लंगड़ा मिला और हम दोनोंका विवाह हो गया!

‘विवाहके बादके वे पहले मुखके दिन—जब उनकी याद आती है तो लगता है, कि दैव मनुष्यके साथ हमेशा कबड्डीका ढोंग खेला करता है। मुखका रूप लेकर वह अपने बिलकुल नज़दीक आता है। पर जब हम उसे पकड़ने जाते हैं, तो वह धीरे धीरे पीछे जाने लगता है। अंतमें हम उसकी पकड़में पहुँच जाते हैं और वहाँ अपना सच्चा स्वरूप प्रकट करके वह हमपर उलट पड़ता है!’

उसकी यह बात सुनकर मुझे हँसी आयी।

उसे देखकर वह बोला,—‘तुम्हारी पुस्तकें पढ़कर ही मैं ऐसी बातें सीखा हूँ। कहीं गलती हो गयी हो, तो माफ़ करना।’

मैंने कहा,—‘गलती क्यों होगी? मेरे मनमें यह आया कि हर एक मनुष्य अपनी अपनी तरहसे कवि होता है और इसलिये मुझे हँसी आ गयी।’

बंझ आगे कहने लगा—

‘सिधु बंबईमें नौकर थी। मुझे तो अपने व्यवसायके कारण शहर शहरमें घूमना पड़ता है। साथ ही, पतिको जब दो सौ रुपया माहवार वेतन मिल रहा था, तब पत्नी भी नौकरी करे, यह बात मुझे जँचती न थी। मैंने उसे नौकरी छोड़ देनेकी सलाह दी।

‘आप लोग शायद विश्वास न करेंगे, लेकिन पहली पत्नीकी तरह ही मैंने सिधुसे भी उत्कट प्रेम किया। एक खिलौना टूट जानेपर बालक दूसरा खिलौना

लेकर खेलने लगता है। उसका पहले खिलौनेसे जो प्रेम होता है, वह कोई झूठ नहीं होता। लेकिन उतना ही प्रेम वह दूसरे खिलौनेसे भी कर सकता है। बूढ़े लोग एक देवताको छोड़कर दूसरेकी पूजा करने लगते हैं, परंतु उनके मनकी भक्ति उसी तरह कायम रहती है। तरुणार्थमें मनुष्य जो प्रेम करता है वह भी इसी तरह होता है।

‘माँ किसी छोटे बच्चेका लाड़-प्यार करती है न? उसी प्रकार विवाहके बाद मैंने सिंधुका लाड़-प्यार किया! मैंने उसे किसी भी बातकी कमी न होने दी। लेकिन माँ ममतासे बच्चेको जिस तरह सजाती है, उसी तरह चूम चूमकर उसे तंग भी करती है! मैं भी उसी तरहका बर्ताव करता था। सिंधु हँसती, तो मुझे लगता कि चाँदनी खिल गयी। वह बीमार पड़ती, तो मेरे आसपास अँधेरा छा जाता। उसका देखना, हँसना, बोलना, सभी मुझे प्रिय था। उसके सहवासमें मुझे हमेशा यह लगता कि दिन कितने जल्दी निकल आया है। फूलोंका इत्र बनाकर उनकी सुगंधको हमेशाके लिये बनाये रखते हैं न? प्रणयके उन्मादक अनुभव भी इसी तरह दीर्घ कालतक टिकाये जा सकते तो —’

क्षण-भर रुककर वह फिर बोलने लगा। अब उसके स्वरमें एक प्रकारकी आर्तता महसूस होने लगी थी —

‘उस समय एक सुंदर लड़की हमारी कंपनीमें नायिकाका काम किया करती थी। श्रृंगारके प्रवेशमें मैं उसकी ओर सिर्फ देखता, तो थिएटर तालियोकी कड़कड़ाहटसे गूँज उठता। सिंधुको उस लड़कीसे यों ही ईर्ष्या होती। मैं उससे बार बार जता कर कहा करता कि रंगमंचपर मेरा अभिनय सिर्फ नाटक है। लेकिन उसे कभी भी पूर्णरूपसे विदवास न होता था। बेचारीको यह मालूम ही न था, कि हम दोनोंके एकांतके प्रणयकी मैं उस प्रवेशमें नक़ल किया करता था।

‘लेकिन इस ईर्ष्याका कोई बड़ा विस्फोट कभी न हुआ। क्योंकि सिंधुसे मैंने कोई भी कभी छिपाकर न रखी। एक बातमें मैंने उसे धोखा ज़रूर दिया था! लेकिन —’

वह मुस्कराया।

इस कल्पनासे कि पति-पत्निके कलहका कोई महत्त्वपूर्ण धागा अब हाथ लगेगा, मैं उत्सुकतासे सुनने लगा।

बंड़ू बोला, — ‘विवाहके पूर्व उसने मुझसे सहजभावसे पूछा था — ‘आपकी

शिक्षा कहाँ तक हुई है ?' वह स्वयं मास्टरनी थी। मुझे भय लगा कि यदि मैं मैट्रिक भी नहीं हूँ, तो कदाचित् वह मुझसे विवाह करनेसे इन्कार कर दे। इसलिये उस समय मैं उससे झूठ बोला। मैंने कह दिया - 'मैं मैट्रिक हूँ।''

थोड़ी देर रुककर उसने समुद्रकी ओर देखा। लहरोंपर लहरें उमड़ने लगी थीं। वह जल्दी जल्दी कहने लगा, - 'हमारा गृहस्थीमें कोई अभाव न था। दो बच्चे भी हमें हुए। दिनूके समय वह आनंदसे नाच रही थी। लेकिन मनुके समयकी जचकी उसके स्वास्थ्यके लिये ठीक न रही। डॉक्टर-द्वारा बतायी गयी सारी दवाएँ मैंने उसे दीं। परन्तु उसने जो भाया ग्वाया सो खाया ही। वह जान-बूझकर मुझसे दूर दूर रहने लगी।

'उसके इस बर्तावके कारण मैं चिड़चिड़ा होने लगा।'

किंचित् हँसकर वह बोला, - 'बीचकी एक महत्त्वपूर्ण बात कहनेको रह ही गयी! नाटकका व्यवसाय ठप्प होने लगा था। हमारी कम्पनी शीघ्र ही बंद हो गयी। सिंधुके लिये मैंने नागपुरमें कोशिश की। मैं सफल हुआ। वहाँ उसे मास्टरनीकी नौकरी मिल गयी।

'वह शाला जाती, तब मैं घरमें बच्चोंको सम्हाला करता। मैं यह भी प्रयत्न कर रहा था कि किसी फिल्म कम्पनीमें मुझे कोई नौकरा मिल जाये। लेकिन पूना और बंबईकी तरह नागपुरमें फिल्म कम्पनियाँ नहीं हैं। इसलिये मुझे बहुत दिन बेकार ही रहना पड़ा।

'बेकार मनुष्योंको स्वयं अपने आपपर क्रोध आया करता है। शाला जब चेत जाता है तो स्वयं अपने आपको वह खाक कर लेता है न? गुस्सेसे उसकी भी इसी तरहकी दशा हो जाती है। परन्तु मेरा यह दुःख कभी भी सिंधुके ध्यानमें न आया। यह सोचकर कि पुरुषको अपना दुःख पत्नीसे कहकर उसके कोमल मनको न दुःखाना चाहिए, मैंने भी उससे वह कभी न कहा।

'परिस्थितिके बारेमें मुझे कोई शिकायत न थी। लेकिन उसके बर्तावके बारेमें जरूर -

'वह बच्चोंसे कितना प्यार किया करती थी! लेकिन वह सिर्फ मेरे नज़दीक आ जाय, इसलिये मेरी आँखें कितनी ही विवशता दर्शाये, फिर भी -

'कहनेमें लज्जा आती है, लेकिन अब कह ही देता हूँ। सिर्फ बच्चोंपर प्यार

करके मेरा संतोष न होता था। मुझे सिंधुकी चाह थी। उसका मन मैं चाहता था। सिर्फ मन ही नहीं, उसके शरीरकी भी मुझे तमन्ना थी !

‘वह मेरी ओर कोई ध्यान न दिया करती। मेरे भीतरकी पशुताको उसने उमाड़ा। उसकी इच्छाकी परवाह न करके मैं —

‘मुझे जंगली कहिये, पशु कहिये, राक्षस कहिये, आपके जीमं जो आवे, वह नाम मुझे दीजिये ! लेकिन साधारण मनुष्यके सुखमें शरीर-सुखका ही भाग बहुत बड़ा होता है। मुझे लगता है कि वह सुख यदि उसे न मिला, तो वह भूखे हिंस्र पशुकी तरह बर्ताव करने लगता है।

‘धीरे धीरे हमारे मन एक दूसरेसे दूर जाने लगे, और अंतमें —

‘नागपुरमें हालहीमें स्थापित एक फिल्म कम्पनीमें मुझे काम मिल गया था। पाँच-छ दिनके लिये मैं आउट-डोअर शूटिंगके लिये बाहर गया था। उन छ-दिनोंमें शृंगारकी नदीमें मैं पूरी तरह डूब रहा था ! वहाँसे मैं जब नागपुर लौटा, तो मुख्य अभिनेत्रीके साथ उसकी कारमें ही आया था ! और वह भी आधी रातको ! मालिकको आगे बैठाकर उसने जानबूझकर मुझे अपने साथ पीछे बैठा लिया था। क्या, अपना वेतन बढ़वानेकी उसकी यह हिकमत थी, अथवा क्या मुझे अपने जालमें उलझानेका उसका यह उपाय था, यह मुझे मालूम होना संभव न था। परंतु उन्मादक सौन्दर्यके सहवासमें मन और शरीरके संतुलनको सम्हालना कितना कठिन होता है, इसका मुझे उस दिन पूर्ण अनुभव हुआ।

‘रातको जब घर पहुँचा तो सिंधुने ही द्वार खोला। मैं भीतर गया, तो उसने पूछा, ‘खाना खायेंगे क्या ?’ मेरे इन्कार करते ही उसने सीधी अपने कमरेकी राह पकड़ी।

‘अपने कमरेमें जाकर मैं बिस्तरपर पड़ गया सही। पर मेरा मन भड़क उठा था — क्षण क्षणमें मेरे शरीरकी बेचैनी बढ़ रही थी। मैं जानता था कि सिंधुके आलिंगनसे ही यह दाह शान्त होगा।

‘उसके कमरेमें जाकर मैंने उसे जगाया। मुझे यह कल्पना न थी कि उस दिन रातको उसकी कोई सहेली हमारे घर रहने आयी होगी। उसने जब उसकी तरफ़ अँगुली दिखायी, तब कहीं मेरा उसकी ओर ध्यान गया।

‘लेकिन —

‘मेरा मन मेरे कब्जे में न था। सच तो यही है कि किसी भी भूख से पागल हुए मनुष्य में और पशु में कोई अंतर नहीं रह जाता।

‘मैं उसे क़रीब क़रीब खींचता हुआ ही अपने कमरे में ले गया। वह मेरी पकड़ से मुक्त होने की कोशिश कर रही थी; परंतु मैंने उसे नहीं छोड़ा।

‘इसी समय मनु एकदम नींद में चीखकर उठा। उसकी वह सहेली जाग गयी। मनु को लेकर वह मेरे कमरे की ओर दौड़ती ही आयी।

‘अब आगे क्या कहूँ? दूसरे या तीसरे दिन मुझसे एक शब्द भी न बोले और बच्चों को साथ लेकर, सिंधु घर से चल दी! अब मेरे पास वह कभी लौटकर नहीं आयेगी!’

‘क्यों नहीं आयेगी?’ – साने ने कहा।

बंझ आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा।

साने ने समुद्र की ओर अँगुली दिखायी।

हम जब आये थे तब बालू के मैदान का कितना बड़ा भाग खाली पड़ा हुआ था। परंतु अब उसी भाग में पानी की लहरें आखमिचौली खेल रही थीं।



१०

नमूताई

बंझूको संतोष देनेके लिये समुद्रके ज्वारकी ओर अँगुली दिखानेमें सानेने समयसूचकता दिखायी थी ज़रूर; लेकिन रह रहकर मेरा मन कह रहा था — शब्द-कोशमें सिंधुका अर्थ समुद्र भले ही हो, किन्तु बंझूकी सिंधु सहजहीमे उसके पास लौटकर नहीं आयेगी! मनुष्यका मन समुद्रके समान भले ही हो; परंतु उसके राग-लोभके नियम समुद्रके ज्वार-भाटेके नियमों जैसे सरल नहीं हैं।

सानेके निमंत्रणपर हम दोनों दूसरे दिन सुबह उनके घर चाय पीने गये। चायका कार्यक्रम समाप्त हुआ। अखबारकी ताज़ी ख़बरोंकी चर्चा ख़त्म हुई। डॉक्टरसाहबके दवाख़ाने जानेका समय नज़दीक आने लगा। वे कपड़े भी पहनने लगे। मुझे यह लगने लगा कि बंझूको सलाह देनेके मामलेमें साने टालमटूल करेंगे। अन्तःपुरकी उत्तरकी वीरता, समरभूमि दीखते ही, जाने कहाँ लुप्त हो गयी थी। रातको डॉक्टरने बंझूको जो आश्वासन दिया था, क्या वह भी उसी तरह —

शीशेके सामने खड़े होकर टाई बांधते हुए बीचहीमें पीछे मुड़कर साने बोलें, — ‘देखिये बंडोपंतजी, यूरोपका महायुद्ध और तुम पति-पत्नीकी लड़ाई — दोनोंमें विलक्षण समानता है!’

मैं समझ नहीं पाया कि क्या साने बंझका मज़ाक उड़ा रहे हैं। उनका यह मज़ाक मुझे बड़ा दुष्ट लगा। उधर उसकी गृहस्थीका सुग्व जल रहा था, और डॉक्टर इधर—

सानेने घूमती हुई शेल्फसे पीली जिल्दवाली एक पुस्तक झटसे निकाली और तुरंत उसका एक पृष्ठ खोला। उस पृष्ठके एक वाक्यपर अँगुली रखकर उन्होंने मुझसे वह पढ़नेके लिये दिया। मैं पढ़ने लगा—

‘It seems clear that those who denounce birth-control thereby . . . whether intentionally or not is immaterial . . increase the possibilities of war.’

मेरा यह वाक्य समाप्त होते ही साने हँसते हुए बोले,—‘यह लेखक कहता है कि संतति-निग्रहके अभावमें आजकी दुनियामें युद्ध होते रहेंगे, इसमें संदेह ही नहीं है। लेकिन ये युद्ध सिर्फ़ राष्ट्रों-राष्ट्रोंमें ही न होंगे। घरमें पति-पत्नियोंमें भी होंगे!’

मैं कुतूहलसे सानेकी ओर देखने लगा।

बेचारा बंझ तो भौचक्का ही हो गया था।

साने बोले,—‘स्त्रीके जीवनकी कल्पनाएँ अब विद्युत्वेगसे बदल रही हैं। अष्टपुत्रा सौभाग्यवतीका ज़माना अब बहुत पीछे रह गया है। लड़कियोंके विवाह प्रौढ़ावस्थामें होने लगे हैं। उनपर परिवारके पोषणका दायित्व आने लगा है। उन्हें नये नये सामाजिक कार्य अपनी ओर आकर्षित करने लगे हैं। ऐसी परिस्थितिमें उन्हें बच्चोंकी पल्टनकी ज़रूरत न हो, तो आश्चर्य क्या है?’

ब्रशसे कोट साफ़ करते हुए वे आगे बोले,—‘अब या किसी दूसरेने यह कहा है न कि—स्त्री क्षणकी पत्नी और अनंतकालकी माता है। अब इसे बदल देना होगा। स्त्री पत्नी है, माता है; सब कुछ है। क्षणके लिये नहीं, बल्कि जन्म-भर! परंतु इन सबसे पहले वह मनुष्य है, यह बात ज़रूर पुरुषोंको ध्यानमें रखना चाहिए। उसे कितने बच्चे चाहिए यह नारीको ही तय करना चाहिए। उसके स्वास्थ्य, परिवारकी सांपत्तिक परिस्थिति, उसकी रुचि-अरुचि, उसके ध्येय आदिकी ओर यदि आगे पुरुषने ध्यान न दिया, तो जीवन उसे नंदनवन नहीं मालूम होगा, बल्कि संहाराकी मरुभूमि प्रतीत होगा!’

१ प्रव्हाद केशव अत्रे : मराठी भाषाके नाटककार और पत्रकार।

डॉक्टर कपड़े पहन चुके थे। वे ब्रंडोपंतकी ओर मुड़कर हँसते हुए बोले, -
'मैंने क्या कहा, यह आप समझ गये न ?'

बेङ्गने गर्दनके इशारेसे 'हाँ' कहा।

• • •

कोल्हापुर लौटते समय बचपनकी स्मृतियाँ निकालकर बंङ्गसे बातें करनेके बजाय मैं अपनी ही तंद्रामें अधिक खो गया था। वह पुलिस इन्स्पेक्टर और उसकी वह पत्नी विमल - मेरा मित्र रामभाऊ और उसकी पत्नी कुंदा - भाग गया हुआ अभागा सदूभाऊ और उसकी वह व्यभिचारिणी पत्नी - शरीरसुखके बारेमें अप्रस्तुत कल्पनावोंका शिकार होकर पड़ी हुई सुमति - बार बार ये सब लोग मेरी आँखोंके सामने नाच रहे थे। उनके अंतरंगके दुख मुझे सुननेको मिल जानेके कारण ही शायद ये सब लोग मुझे अपने बहुत नज़दीक लगने लगे थे।

बीचहीमें मुझे नमूताईका स्मरण हो आया। डॉक्टर सानेने उसके बारेमें जो कहा था, वह सब मुझे याद हो आया। मेरे मनमें आया - नमूताई यदि प्रामाणिकतासे अपनी आत्म-जीवनी लिखे तो, वह कितनी परिणामकारी होगी ! गंदे कीचड़से एक दिन कमलकी कली धीरेसे सिर ऊपर झाँके, उस तरह उसका वर्तमानका उदात्त जीवन था। कितना पवित्र ! कितना निर्मल ! क्या, कोई भी इस बातको सच मानेगा कि किसी समय इसी महिलाने शारीरिक भूखकी तृप्तिके बारेमें अपने बीमार पतिको तंग किया ? सानेके द्वारा किया गया वह उसका वर्णन - कर्जा वसूल करनेके लिये दरवाज़ेमें धरना देकर बैठनेवाला पठान भी इतना क्रूर न होगा। तपेदिकसे पतिने खाट पकड़ ली है। लेकिन एक दिन भी यह औरत उससे दूर नहीं। उसके कमरेके बाहर न सोयी।

शरीर-सुखका चक्का शराबकी तरह होता है। फिर पक्का शराबी एक क्षणमें शराब पीना छोड़ दे, उस तरह यह चमत्कार नमूताईके जीवनमें कैसे हो गया ? इस विषयमें उसने किसे गुरु बनाया ?

किसी भी तरह यह समस्या मुझसे हल नहीं होती थी।

बचपनमें रेलसे सफर करते समय मुझे यह प्रश्न लगातार तंग किया करता था कि गाड़ीके साथ पेड़ किस तरह दौड़ते हैं। आज दूसरा ही प्रश्न मेरे मनको बेचैन कर रहा था। नमूताई जैसे मनुष्य एकदम बदल किस तरह जाते हैं ?

• • •

बंदूको उसके बहनोईके घर पहुँचाकर मैं अपने घर लौटा, तब भी यही विचार मेरे मनमें चक्कर काट रहा था। अब और प्रेमके बारेमें मनुष्यको शरीर-का गुलाम बनना पड़ता है — यह नैसर्गिक नियमके अनुसार है। परंतु कलके मानवको आजकी अपेक्षा वास्तवमें सुसंस्कृत होना हो, तो समाजको चाहिए कि वह सामान्य मनुष्यको शरीरकी इस गुलामीसे मुक्त होनेका कोई मार्ग दिखावे।

आज वह मार्ग भले ही एक सकरी पगडंडी हो और थोड़ेसे लोग ही उस मार्गसे जाते हों, लेकिन भविष्यमें इस पगडंडीका रूपान्तर राजमार्गमें न होगा, यह हम कैसे कह सकते हैं ?

ऐसी कौनसी पगडंडी नमूताईको मिल गयी थी ?

मनमें इन विचारोंको लिये हुए ही मैं घर आया।

एक ओर मैं चाय पी रहा था और दूसरी ओर चार-पाँच दिनकी आयी हुई डाकको देख रहा था।

बीचहीमें मैंने उपासे पूछा, — ‘कंपनीसे कोई मेरे लिये आया था क्या ?’

‘कोई नहीं। लेकिन —’

वह नाम याद करने लगी।

यह सोचकर कि शायद कोई व्याख्यान वगैरहका आमंत्रण देने आया होगा, मैंने कहा, — ‘खैर हटाओ, होगा कोई भी। फिर आ जायेगा।’

उषा एकदम बोली, — ‘एक स्त्री आयी थी।’

‘स्त्री ?’ — मैं सोचमें पड़ गया और बोला।

‘कहती थीं कि आपहीसे मिलना है।’

‘तुम्हारे परिचयकी नहीं हैं क्या ?’

‘अँ हँ ! उनका नाम ज़रूर मैंने नोट कर लिया है।’

उसने अलमारीसे एक कागज़ निकालकर मेरे हाथमें दिया। उस कागज़पर नोट किया हुआ नाम देखते ही मुझे आश्चर्यका एक बड़ा धक्का लगा — ‘नमूताई !’

उषाने कहा, — ‘मैंने उनसे कह दिया है कि आप आ रहे हैं। आज शामको पाँच बजे आनेवाली हैं वे।’

शामको पाँच बजे ! अरे बाप रे ! अभी तो सुबहके सिर्फ़ नौ बजे थे। अभी घड़ीके इस निर्बुद्धि घंटेके काँटेको आठ घंटेका फासला तय करना था। मैं सोचने

लगा — नमूताईका मुझसे क्या काम होगा भला ? उनके जीवनके रहस्यका यदि मुझे पता चल जाये तो — परंतु मामूली पहचानसे ऐसी गूढ़ बातें कोई किसीसे पूछ सकता है क्या ? और मान लो कोई पूछ ही ले, तो क्या कोई अपने हृदयके अन्दरूनी भागको खोलकर किसी दूसरेको दिखा देगा ?

एक बात एकदम मेरे ध्यानमें आयी । नमूताई अनाथ लड़कोंके आश्रमकी व्यवस्थापिका हैं । मैंने उस आश्रमको अभीतक कोई सहायता नहीं दी है । उस कामके लिये ही वे आयी होंगी । चंदा-वंदा लेने !

मनमें यह कहता हुआ कि शामके पाँच यदि कुछ देरसे बजे, तो कोई ग्यास नुकसान न होगा, मैं अपने नित्य-क्रममें लग गया ।

• • •

या तो सफरकी थकानके कारण हो, अथवा बाहरकी चिलचिलाती हुई धूपकी वजहसे हो, पर चारके घंटे बजनेपर भी, मैंने अपनी आँखें न खोलीं । मुझे गहरी नींद नहीं लगी थी; लेकिन आँखोंपरकी उँघाई भी कम न हुई थी । सुबहकी इस उँघानको गुलाबी नींद कहते हैं न ? फिर तीसरे पहरकी इस उँघानको 'चायनींद' कहनेमें क्या हर्ज है ? क्योंकि पड़ा-पड़ा आँखें बंद करके मैं मनमें कह रहा था — अब नीचेसे जब चायका बुलावा आवे, तब उठ जाऊँगा ।

नज़दीक ही एक नया घर बन रहा था । वहाँ कारीगर लोग पत्थरपर हथौड़ी ठोककर जो टिकटिक कर रहे थे वह मुझे लगातार सुनाई पड़ रही थी । मुझे पेड़पर अपनी चोंचसे लयबद्ध प्रहार करनेवाली कूटफोड़वा चिड़ियाकी याद —

खन्-खन्-खन् ! द्वारकी घंटी एकदम बजी । मैं यह तर्क ही न कर सका कि इतनी तेज़ धूपमें कौन आया होगा । यह सोचकर कि नौकरानी आयी होगी, मैं आँखें बंद कर पड़ा रहा ।

उषाके इन शब्दोंने कि 'नमूताई आयी हैं,' मेरी आँखें एकदम खोल दीं । मैं झटसे उठा । मुँह धोकर कुल्ली की और उषामे कहा,— 'उन्हें ऊपर भेज दो ।'

ऐसी कड़ी धूपमें आश्रमके कामके लिये बाहर निकलनेवाली नमूताईकी मैं मन-ही-मन सराहना करने लगा । चटसे अण्णासाहब कर्वे^१ की मुझे याद हो आयी ।

१ धोंडो केशव कर्वे : जिन्होंने महाराष्ट्रमें स्त्रीजातिकी शिक्षा और सेवामें अपना पूरा जीवन दे दिया है ।

परंतु तुरंत ही मनमें आया — शरीरके विषयकी यह लापरवाही इस नारीने कहाँ प्राप्त की ? इसका पूर्वजीवन तो —

दरवाजेके बाहरसे ही नमूताईने मुझे नमस्ते किया। उनके भीतर आनेपर मैंने उन्हें कुर्सीपर बैठनेका आग्रह किया: पर वे नीचे ही बैठ गयीं। गद्देपर भी नहीं, दरीपर।

मुझे स्वयं अपने अनुभवसे इस बातकी पूर्ण कल्पना है कि किसी संस्थाके लिये मदद माँगनेका काम कितना कठिन होता है। इसलिये मैंने सोचा कि पहले नमूताई इधर-उधरकी बातें करेंगी। लेकिन क्रिकेटके पिचपर आते ही पहला खिलाड़ी ठीठतासे पहली ही गेंद ठोककर रन बनाता है न ? वे भी अपने मुद्देकी ओर उसी तरह मुड़ीं।

‘एक माँग करने आयी हूँ मैं !’

‘आपकी माँग मुझे मान्य है !’

मेरे इस उत्तरसे वे क्षण-भर चकित हुईं। ऐसे विषयमें उनका हमेशाका अनुभव अलग होगा। कितना भी सुशिक्षित व्यक्ति हो, पर जब उससे कोई चंदा माँगने आता है, तो वह यह कहकर शिकायत करता है कि आजकल चंदे जैसे बिलकुल फट पड़े हैं, फिर कहता है कि युद्धके कारण दीयामलाइयाँ भी महँगी हो गयी हैं, इसके बाद यह व्याख्यान सुनाता है कि देश जबतक स्वावलंबी न हो तबतक सद्गति नहीं। और अंतमें, जब विवश हो जाता है, तब जिस कामके लिये मनुष्य आया होगा उसका सहानुभूति और फुरसतसे विचार करनेका आश्वासन देता है ! मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया — यही शायद नमूताईके आश्चर्यका कारण होगा।

वे हँसकर बोलीं, — ‘अब आपको मैं आपका वचन वापस न लेने दूँगी !’

मेरी समझमें ही नहीं आता था कि मामूली चंदेके बारेमें वचन वापस लेनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है। मैंने कहा, — ‘आप मेरा नाम वार्षिक चंदा देनेवालोंमें लिख लीजिये न ?’

वे हँसती हुई बोलीं, — ‘यह तो होगा ही। लेकिन आज मैं आपके पास चंदा लेने नहीं आयी हूँ !’

‘फिर !’

‘मैं कुछ दूसरी ही बात चाहती हूँ ! ज़रा अभी-सी है वह। लेकिन —’

वे एकदम रुक गयीं। वे यह सोच रही थीं कि जो कहना है, वह किस तरह कहूँ। परंतु रातों फूटनेवाले स्थान पर मनुष्य क्षण-भर असमंजसमें पड़कर रास्ता निश्चित होते ही जिस तरह तुरंत जल्दी जल्दी चलने लगता है, उस तरह वे भी तुरंत ही कहने लगीं —

‘मैंने आपकी ‘हरसिंगारके फूल’ नामकी कहानी पढ़ी उस दिन। मुझे वह बड़ी पसंद आयी! साहित्यमें तो मैं कुछ समझती नहीं हूँ। लेकिन मुझे हमेशा लगता है कि अच्छा साहित्य कड़ुई दवा भी नहीं है और मीठी चॉकलेट भी नहीं है! मैं आपसे एक ही बिनती करने आयी हूँ — हमारे जीवनकी और गृहस्थीकी ऐसी बहुतसी कहानियाँ आपको लिखनी चाहिए! स्त्रियोंके लिये वे कितनी उपयोगी होती हैं यह —’

उन्हें शायद यह लगा होगा कि मैं बीचहीमें कुछ बोल्डूंगा। परंतु यह देखकर कि मैं मौन हूँ, वे बोलीं, — ‘आश्रममें मेरी मददके लिये बंबईसे एक महिला आयी है। अनाथकी हैसियतसे वह पहले बंबईकी शाखामें भरती हुई थी। वहाँ उसने मन लगाकर विद्याभ्यास किया और जितनी कल्पना न थी, उतना उसमें सुधार हो गया। इसलिये काम करने उमे यहाँ भेज दिया है! एक ही महीनेके भीतर सब बच्चे उससे ‘माताजी, माताजी’ कहकर चिपकने लगे हैं। यही कहिए न, कि मैं उससे ईर्ष्या करने लगी हूँ!’

‘ऐसी महिलाको तो अवश्य देखना चाहिए!’ — मैंने कहा।

‘वह महिला भी आपको देखना चाहती है।’

‘मुझे?’

‘जी हाँ। आपकी ‘हरसिंगारके फूल’ कहानी पढ़कर उसने मुझसे कहा कि यह कहानी यदि मुझे दस साल पहले पढ़नेको मिल जाती, तो मेरा जीवन कुमार्ग-पर कभी जाता ही नहीं!’

स्वयं अपना चेहरा क्या किसीको कभी कुरूप दीखता है? उसी तरह अपनी प्रशंसा भी किसीको झूठ नहीं लगती!

लेकिन प्रशंसासे भी अधिक आनंद मुझे हुआ दूसरी ही एक बातका! नमूताई जैसी ही दूसरी एक स्त्रीके जीवनके बारेमें जाननेका यह मौका अनायास ही मेरे हाथ आ गया था!

नमूताईने मुझसे कहा, — ‘तो आप कब आ रहे हैं आश्रममें?’

मैंने कहा,— ‘मैं आश्रममें आऊँगा। उस स्त्रीको भी देख लूँगा। फिर भी वह जिस तूफानसे गुज़री है, उसकी कल्पना मुझे कैसे होगी?’

‘उसने अपने उस सारे हालकी एक छोटीसी टिप्पणी मुझे दे दी है। उसकी बड़ी इच्छा है, कि आप जैसे लेखक उसका उपयोग करें और उस प्रकाशमें अन्य अभागिनी नारियोंको उनके उद्धारका मार्ग दिखावें!’

मैं एक क्षणमें यह भूल गया कि अभी धूप तेज़ है और मैंने चाय भी नहीं पी है। कपड़े पहनकर मैं नमूताईके साथ जानेके लिये उठ भी गया —

इसी समय उषा चायके तीन प्याले लेकर आयी।

चायकी चुस्कियाँ लेते-लेते नमूताई बोली,— ‘हरएकको लगता है कि हम अच्छे हों। अच्छे बननेकी थोड़ीसी शक्ति भी होती है उनमें। परंतु उसे प्रकट होनेके लिये अनुकूल परिस्थिति ही नहीं मिलती। इस महिलाके जीवनसे यह बात मुझे सम्पूर्ण रूपसे ज्ञात हो गयी है?’

अनजाने मुझे लगा कि नमूताई अपने ही जीवनका रहस्य कह रही हैं। कोई हमें एक ताला लगा हुआ डिब्बा दे दे, कह दे कि उसमें अमुक अमुक चीज़ें हैं, लेकिन वे हमने अपनी आँखोंसे देखी न हों, डिब्बा देनेवालेने हमें ताली न दी हो! इसलिये आँखोंसे देखनेका भी कोई सुभीता न हो! नमूताईके विषयमें मेरी इसी तरहकी हालत हो गयी थी। इसी लिये मैंने जानबूझकर ही कहा,— ‘पीछे डॉक्टर साने यहाँ आये थे, तब वे आपके बारेमें भी कुछ इसी तरहका कह रहे थे।’

नमूताई सिर्फ़ हँसीं। परंतु उस हँसीमें गूढ़ अर्थ भरा हुआ था। मुझसे बिलकुल न रहा जाता था।

मैंने फिरसे कहा,— ‘सानेने मुझसे आपका सारा हाल कह दिया है।’

‘एक टिप्पणी है मेरी। उस वर्णनका महत्वपूर्ण भाग शलत है!’

मैं बिलकुल कलश बाँधने निकला था, परंतु नमूताईके एक वाक्यसे ही मेरी सारी नींव ही दह गयी।

शायद यह सोचकर ही कि अधिक समयतक मुझे संशयमें रखनेसे कोई लाभ नहीं, नमूताईने कहा,— ‘यह बात नहीं है कि दुनियामें जैसा दीखता है, वैसा हमेशा ही होता है। मेरे बारेमें सानेजीने इसी तरह धोखा खाया है। उन्होंने मुझपर और मेरे पतिपर बड़े उपकार किये हैं। इसलिये मैं उनपर कभी

नाराज़ नहीं हुई और न उनकी भूल उन्हींके पलेमें बाँधनेकी भी मैंने कभी कोशिश की।

‘वे मेरे बचपनसे परिचित न थे; वरना — बचपनसे मुझे बच्चोंका बहुत शौक रहा है। पड़ोसके लोग अपने बच्चे लाकर हमारे घर छोड़ दिया करते थे। चार चार घंटे मैं उनके साथ हँसती-खेलती रहती थी —

‘विवाह होनेके बाद तो मेरा मन जैसे पागल हो गया। द्वारकासे घर वापस आनेपर सुदामाको सोनेकी नगरी देखकर जो आनंद हुआ होगा वही —

‘लेकिन मेरे उन मधुर स्वप्नोंको सत्य-सृष्टिमें नहीं आना था। मेरे पतिदेव शीघ्र ही तपेदिकसे बीमार हो गये!’

मुझे यह जाननेकी इच्छा अत्यन्त तीव्र हो गयी कि सानेने नमूताईके बारेमें जो कहा था उसमें भूल कहाँ है! नमूताई अत्यंत गंभीरतापूर्वक कहने लगीं —

‘लेकिन डॉक्टरको गलतफहमी हो जाये ऐसी कुछ बातें उस समय हो गयी थीं, यह ज़रूर सच है। उस बीमारीमें मेरे पतिके स्वास्थ्यकी पूछताछके लिये डॉक्टर हमेशा हमारे घरपर आया करते थे। मेरा हर रोज़का जागरण उनसे नहीं देखा गया। एक राग नित्यकी भौंति ही वे आये। इस गरज़से कि कम-से-कम दो दिन तो मुझे आगम मिले, उन्होंने मेरे पतिकी सेवा शुश्रूषाके लिये स्वयं ही उनके कमरेमें सोनेका निश्चय किया। परंतु मैंने उन्हें यह न करने दिया। उन्होंने मेरी ओर इतनी विचित्र दृष्टिसे देखा, कि उसे मैं अभीतक नहीं भूली हूँ। परंतु इस विषयमें, मैं भी लाचार थी!’

मैं और उषा दोनों आश्चर्यसे नमूताईकी ओर देखने लगे। यह सच है कि मनुष्य विकारवश होकर अनेक बातें कर डालता है। लेकिन यह दिखानेके लिये कि जैसे मैंने कोई भूल नहीं की है, यदि निर्लेज्जतासे वह उसका वर्णन करने लगे तो —

नमूताई आगे कहने लगीं —

‘उस दिन रातको मेरे पतिने — ‘कमसे-कम अब तो मुझे तंग न कर।’ वाक्य इतने जोरसे कहा कि बाहर बैठे हुए सानेके कानोंमें वह पड़ गया होगा!

‘इसके कारण जो उनका विश्वास ही हो गया कि मैं राक्षसनी हूँ। आगे चलकर वे हम दोनोंको अपने घर ले गये और हमें वहीं रख लिया। रातको उन्होंने मुझे

अपने पतिके कमरेमें जानेकी मनाही कर दी। मैं भी चिढ़ गयी और उनपर एक व्यर्थका आरोप लगा दिया।'

नमूताई पागल हो गयी हैं अथवा वे स्थितप्रज्ञ हो गयी हैं, यही मैं नहीं समझ पा रहा था। स्वयं अपने विषयकी ऐसी बातें शान्तिपूर्वक कहना यानी —

वे बोलीं, — 'उस समय सब लोगोंने मुझे काफी बदनाम किया। ऐसे ताने कैसे जो सीधे कलेजेमें जाकर चुभते थे। लोग मुझे पतिके प्राण लेनेवाली मक्षसनी कहने लगे। रोज कई किस्मकी गालियाँ देते थे। पर इन सब तानों और गालियोंको सुनते हुए मन-ही-मन मुझे आनंद हो रहा था।

दुनियाको लग रहा था — मैं अपनी शारीरिक भूखकी तृप्तिका मोह संवरण न कर सकी। लेकिन यथार्थ बात बिल्कुल विपरीत थी। मेरे पतिसँ ही वह मोह नहीं छोड़ा जाता था। शरीरसे भी अधिक उनका मन दुर्बल हो गया था। उनकी अंतिम बीमारीमें उनके मनको दुखानेकी मुझे भी हिम्मत न हुई। किसी तरह भी अंत एक ही होनेवाला था! फिर — कभी कभी क्रोधसे मैं अपना ही सिर पीट लिया करती थी; यह बात न थी कि मैं विरोध न करती होऊँ। लेकिन उसका कोई उपयोग न होता था। तुरंत ही गुस्सेमें आकर वे मृत्युकी बातें करने लगते थे, और 'कम-से-कम अब तो मुझे तंग न कर —' कहकर मुझपर —'

इस विचित्र पुरानी स्मृतिमें नमूताईकी पलकें गीली हो गयीं। वे किंचित रुंध हुए कंठसे बोलीं, — 'उस समय मैं पागल थी केवल एक बातके लिये — शायद मुझे बच्चा हो जाये! 'उनकी' स्मृतिके रूपमें मैं उसे —'

झटसँ उठती हुई वे बोलीं, — 'ओ माँ, शालासे बच्चाके लौटनेका समय हो गया। आप चल रहे हैं न मेरे साथ?'

मैं कोट पहननेके लिये उठा। खिड़की में मेरा नज़र सहज ही बाहर पहुँची। धूप चिलचिला रही थी। लेकिन उस चिलचिलाती धूपमें ही तीन-चार गमलोंके गुलाबोंपर सुंदर कलियाँ झूम रही थीं।

• • •

आश्रमके अशांतमें बच्चोंने हालहीमें खेलना आरंभ किया था।

नमूताई मुझे भीतर ले गयीं। रसोईघरमें एक महिला बच्चाके लिये नाश्ता बना रही थी। नमूताईने मेरा ओर अर्धपूर्ण दृष्टिसँ देखा। मुझे विश्वास हो गया कि जिसका वृत्तान्त अब मुझे पढ़ने मिलेगा, वह महिला यही है।

नमूताई कागज़ ले आयीं ।

बड़ी गरमी हो रही थी । इसलिये मैंने कोट उतारकर रख दिया और कागज़ पढ़ने लगा —

‘मेरे पापकी निशानी बहुत बड़ी है । परंतु मैं सारी कहानी नहीं कहूँगी । बचपनसे मैं बड़े लाड़ और दुलारमें रही । इस कल्पनामें ही कि मनुष्यका जन्म सिर्फ़ खाने, पीने और आनंद करनेके लिये ही है, मैं छोटीसे बड़ी हुई । दुर्भाग्यसे मेरी उम्रके दसवें साल ही स्त्री और पुरुषके एकान्तके विषयमें मेरे मनसे कुतूहल उत्पन्न हो गया ।

बात यह हुई कि एक दिन मुझे भयंकर स्वप्न दिखा । मैं घबड़ाकर उठी और अपने पिताजीके कमरेकी तरफ़ दौड़ पड़ी । उनका कमरा भीतरसे बंद था । मैंने द्वार खटखटाया । पिताजी चिढ़कर चिल्ला पड़े । वे तो द्वार ही नहीं खोल रहे थे लेकिन मैं ज़ोर ज़ोरसे चिल्लाने लगी । मुझे पीटनेके इरादेसे उन्होंने क्रोधसे द्वार खोला ।

द्वारके खुलते ही मेरी दृष्टिके सम्मुख जो दृश्य दिखा — पिताजीके कमरेमें हमारे घरकी रसोईदारिन थर थर काँपती हुई खड़ी थी ।

मैं रातभर सोचती रही कि आधी रातको वह पिताजीके कमरेमें क्या कर रही थी । परंतु यह पहेली मैं किसी भी तरह हल न कर सकी ।

दूसरे दिन मैंने यह बात नौकरसे कही । उसे सुनते ही पहले तो उसने हँसना ही शुरू कर दिया । फिर उसने मुझसे जो बातें कहीं —

आगे चलकर एक-दो सालतक उस तरहकी बातें सुननेमें ही मुझे बड़ा आनंद आने लगा ।

हमारा एक पड़ोसी विनू किसी नाटक कंपनीमें था । वह कभी कभी घर आया करता । वह एक एक नाटकके सब गीत मुझे गाकर सुनाता । मैं उन गीतोंको कंठस्त करने लगी ।

इस प्रकार-दो तीन साल बीत गये । विनू जब गाँव लौटकर आता, तो लगा-तार मेरे आसपास ही चक्कर काटता रहता । एक बार यह दिखानेके लिये कि नाटकमें प्रेम किस तरह करते हैं, उसने मुझे अपने सीनेसे चिपका लिया । मैं उस-पर नाराज़ हो गयी । लेकिन साथ ही मुझे यह भी लगने लगा कि वह मुझे फिर उसी तरह-एक बार और अपने सीनेसे कसकर चिपका ले ।

मैं पढ़ने शाला नहीं जाती थी, मुझे घरमें कोई काम-काज नहीं करना पड़ता था, मेरे पास कुछ पढ़नेको न था। ऐसी परिस्थितिमें मैं पंद्रह-सोलह वर्षकी हो गयी।

पिताजीने मेरा विवाह कर दिया। मेरी ससुराल गरीब थी। इसके कारण मैं और भी अधिक इतरा गयी।

मैं सिर्फ इतना ही जानती थी कि विवाह सिर्फ शरीरसुखके लिये ही किया जाता है। इसलिये मुझे लगता कि मेरा पति हमेशा भौंरेकी तरह मेरे आसपास चक्कर काटता रहे और मेरी इच्छाके अनुसार काम करता रहे। पर यह नहीं हुआ करता था। तब मैं चिढ़कर बार बार मायके जाने लगी। आंग चलकर तो मैं बहुत दिनोतक मायकेमें ही रही। विनू बेकार हो गया था और वह भी गाँवमें ही था। उसका और मेरा अनुचित संबंध हो गया, वह बढ़ता ही गया, और —

जब मैं गर्भवती हुई, तब मैंने यह बहाना बनाया कि मैं बीमार हूँ। मेरे पति-देव आये। पर उन्होंने धोखा न खाया। वे मेरे पापको जान गये। मेरे प्रसूत होनेसे पहले ही वे न जाने कहाँ लापता हो गये।

वह बच्चा जन्मा न रहा। ससुराल जानेका मुझे कोई कारण ही न था; विनूको मेरा संबंध अधिकाधिक दृढ़ होने लगा। कभी कभी मुझे लगता, कि मैं कहीं भूल कर रही हूँ, लेकिन किसी भी तरह मुझसे अपने मनको रोकते न बनता था।

फिर मैं गर्भवती हुई। परंतु यह समय विकट था। गाँवके लिये मेरे पतिके लापता हो जानेका समाचार कोई नया न था। ज़मीनके कुछ झगड़ोंके कारण गाँववाले भी मेरे विरुद्ध हो गये थे। गाँववालोंको मेरे गर्भवती होनेका पता चला। तुरंत ही गाँवके अधिकारियोंको गुमनाम पत्र भेजे गये। ऊपरसे हुकम निकला। पुलिसवालोंने पंचोंके सामने मेरे पिताजीको चेतावनी दी — ‘सम्हालकर रहना। अगर गर्भपात करानेकी कोशिश की तो —’

उस दिन मेरे पिताजी आपसे बाहर हो गये। मुझे अपनी भूलका ज्ञान था। लेकिन मैं कुमार्गपर गयी, इसके लिये एक दृष्टिमें मेरे पिताजी ही —

मेरे जीवनका सत्यानाश कर देनेवाले उस घरको ही नहीं, बल्कि इस दुनियाको भी हमेशाके लिये छोड़कर जानेका मैंने निश्चय किया।

लेकिन घरमें बैठे हुए आत्महत्याका इरादा करना अलग बात है और अंधेरी

रातमें नदीके किनारे जाकर उसमें कूद-पडना अलग बात है। आधी रातको नदीके किनारे जाकर मैं न जाने कितनी देर खड़ी रही थी। लेकिन —

जैसे सुबह होने लगा वैसे ही मैं गाँव छोड़कर चल दी।

महीनाभर मैं भिखारिनकी तरह गाँव गाँव भटक रही थी। यह बात नहीं कि इन दिनोंमें मुझे चार-आठ आनेकी भीख देनेवाले न मिले हों। लेकिन बहुतसे लोगोंने जो हाथ बढ़ाया था, वह मेरी सहायताके लिये नहीं! बल्कि मेरे हाथको पकड़कर मुझे और भी गहरे नरकमें ढकेल देनेके लिये!

एक प्रतिष्ठित महाशय मुझपर आसक्त हो गये। वे मुझे चाहते थे। पर मुझे जो बच्चे होंगे, उन्हें सम्हालने तथा उनकी परवरिशके लिये वे राजी न थे। दुनियाके द्वारा सजाये गये इस प्रेमके बाज़ारको देखकर मेरा मन ऊब उठा। आत्म-हत्याके विचार फिरसे मेरे मनमें आने लग।

एक दिन एक नगरमें किसी बड़े समारोहकी तैयारियाँ हो रही थीं। मैंने एक मजदूरसे पूछा, — ‘आज यहाँ क्या कहींका राजा आ रहा है?’

उसने गर्दन हिलाकर ‘हाँ’ कहा।

‘कहाँ का?’ — मैंने पूछा।

‘सारे हिंदुस्तानका।’ — उसने उत्तर दिया।

मैंने यह सुना था कि हिंदुस्तानका राजा विलायतमें रहता है। इसलिये मैंने जानबूझकर उससे पूछा, — ‘वह साहब है न?’

उसने नकार दर्शानेके लिये गर्दन हिलायी। वह हँसा और अपने कामपर चला गया।

शामको सारा नगर उस समारोहके स्थानपर इकट्ठा हो गया। उस दिन सुबह-से मुझे कुछ भी खानेको न मिला था। भीख माँगकर भी दुनिया मुझे ज़िंदा नहीं रहने देती। फिर ज़िंदा भी क्यों रहूँ? इस तरह लगातार मेरा मन कह रहा था।

मेरे पैर लडखड़ा रहे थे। लेकिन प्रवाहके साथ जिस तरह तिनका बहता जावे, उस तरह भीड़के साथ मैं भी उस समारोहके स्थानपर जा पहुँची।

थोड़ी ही देरमें एक मोटरका पाँगा बजा। हजारों लोगोंने जयघोष किया — ‘महात्मा गांधीकी जय!’ मेरा शरीर आनंदसे रोमांचित हो उठा।

गांधीका नाम मैंने सुना था। परंतु उन्हें कभी भी देखा न था।

कमरमें एक साधा पिछौरा लपटा हुआ, हाथमें छड़ी और आँखोंपर ऐनक —

मेरे मनमें आया—लखां मनुष्योंके मनका यह राजा कितना सीधा-सादा है ! गांधी भाषण देने लगे। वे हिंदीमें बोल रहे थे। एक दूसरा व्यक्ति तुरंत ही उसका मराठी अनुवाद करता जाता था। तपी हुई धरतीको वर्षाकी झड़ीमें गीलापन मिले, उस तरह मेरी स्थिति हो गयी।

उनका पूरा भाषण मेरी समझमें न आया। लेकिन एक बात ज़रूर मेरे हृदय-पर अंकित हो गयी—मनुष्यका जन्म सिर्फ सुखके लिये नहीं है; कर्तव्यके लिये है, सेवाके लिये है। जिसे सेवा करना है उसके लिये सारी दुनिया ग्यानी पड़ी है। सेवा-सुख ही अमर सुख है। किनारे भी मीठे पकवान खावें, पर जिह्वाकी तृप्ति कभी नहीं होती ! स्त्री-पुरुष शरीर-सुखका कितना भी उपभोग लें, फिर भी उन्हें कभी भी पूर्ण सतोष न होगा ! इसी सुखके पीछे यदि मनुष्य पड़ गया, तो वह पशु हो जाता है। जिसे सेवाके सुखकी मिठासका पता चल गया, वह देवता बनने लगता है।

सभाकी भीड़ कम हो जानेके बाद मैं उस जगह गयी जहाँ गांधीजी खड़े थे। वहाँकी धूल मैंने उठायी और अपने मस्तकसे लगा ली। आज भी भगवानके आगे जलाये धूपकी राखकी तरह उस धूलको मैं अपने पाम रखे हूँ। दूसरे दिन मैंने बंबईकी गह पकड़ी। एक आश्रममें मुझे आश्रय मिल गया। मेरा यह दूसरा बच्चा भी न बचा। मुझे दुख हुआ। परंतु मैंने मनमें कहा,—मैं खुद ही अब एक छोटी बच्ची हो गयी हूँ—मेरा पुनर्जन्म हुआ है, पिछले जन्मके सारे पाप मैं इस जन्ममें धो डालूंगी ! अब मैं खूब पढ़ूंगी—खूब सेवा करूंगी !

• • •

मैं नहीं जान सका कि नमूताई कब आकर मेरे सामने खड़ी हो गयी थीं।

मेरा पढ़ना समाप्त होते ही मैंने ऊपर देखा। वे मेरी ओर देखकर हँस रही थीं।

‘आप पढ़नेमें कितने खो गये ?’—वे बोली।

मैं सिर्फ हँसा। परंतु तुरंत ही मैंने पूछा,—‘क्या, मुझे इस महिल्लाका नाम मालूम हो सकता है ?’

स्वर्गको थोड़े नीचे गिराकर वे बोली,—‘यहाँ वे गोपालराव मराठे हैं न ? उस थिएटरके मैनेजर ? उनकी यह भौजाई है !’

मैं आनंदसे बाहर देखने लगा। पूर्वी बारिशकी झड़ी गिर रही थी। मेरे १२ बु. मं.

मनमें आया - धूप और वर्षा - निसर्गपर बहार लानेके लिये दोनोंकी ज़रूरत है। शरीर और मन - मनके विकासके लिये दोनों ही चाहिए !

वर्षाका आरंभ हो जानेके कारण, बच्चे भीतर आकर किलोल कर रहे थे।

‘माताजी, माताजी!’ - उनके ये शब्द बार बार कानोंमें पड़ने लगे। मैं सुनने लगा।

‘आप कह रही थीं, वही गीत हम सुनना चाहते हैं!’ - बच्चे माताजीके पास इठ पकड़कर बैठ गये थे।

एक मधुर स्वर सुनाई पड़ने लगा —

‘घरीं एकच पणती मिणमिणती

म्हणुं नको, उचल, चल लगबग ती’^१

मेरी ही पंक्तियाँ थीं ये। उन्हें लिखते समय मुझे जो आनंद हुआ था, वही आज फिर उन्हें सुनते हुए हुआ।

मेरा मन कह रहा था - आज मुझे इन पंक्तियोंका नया अर्थ ज्ञात हुआ। मनुष्यका मन ही उसका सच्चा घर है। उस घरमें हमेशा एक दीप जलता रहता है। वह भले ही टिमटिमाता हो - भले ही यह भ्रम होता हो, कि हवासे वह कहीं बुझ तो नहीं रहा है, लेकिन उसकी ज्योति अमर है!

● ● ●

१ ‘घरमें सिर्फ एक ही दीया टिमटिमा रहा है।

इसलिये उसे उठाकर जल्दी जल्दी चलनेके लिये न कह।’

छबिदर्शन —

जब मैंने पिरंडेलो^१ का 'Six Characters In Search Of An Author'^२ नामक नाटक पढ़ा, तब उसने उसमें जिस तंत्रका अवलंबन किया है, उसे देखकर मुझे बड़ा मज़ा आया। इस नाटककी मध्यवर्ती कल्पना यह है कि इसमें लेखकने जो पात्र निर्मित किये हैं, वे प्रत्यक्ष उससे आकर मिलते हैं, और अपना सच्चा सच्चा हाल उसे सुनाने लगते हैं। इस वृत्तान्तको सुनते समय यदि लेखकको अपनी निर्मिति और वस्तुस्थितिमें जो अंतर है, उसका तीव्र रूपसे बोध हो जावे, तो आश्चर्य क्या है? क्योंकि लेखककी वैयक्तिक संवेदनाओंका कल्पना द्वारा किया गया विस्तार ही निर्मिति होती है। लेखक कितना भी प्रतिभाशाली हो, फिर भी इस विस्तारमें इक तरफ़ा कथन आ ही जाता है।

मुझे लगा कि इस पद्धतिसे कोई उपन्यास लिखूँ, तो वह मनोग्राही हुए बिना न रहेगा। इसलिये गत वर्ष मैंने 'पारिजातकाचीं फुलें'^३ नामक एक

१ पिरंडेलो : जगविख्यात इटालियन नाटककार और कहानीकार।

२ पिरंडेलोका यह बहुत प्रसिद्ध नाटक है। 'लेखककी खोजमें छः पात्र' — नाटकका यह शीर्षक ही कितना विलक्षण है।

३ 'हरसिंगारके फूल'।

कहानी लिखी। उसमें यह दिखाकर कि लेखकसे ऐसे अनेक लोग मिलते हैं जिन्हें प्रतिपादित विषयके बारेमें उलटेसीधे अनुभव हुए, मैंने उपन्यासके आगामी कथासूत्रकी रचना की। सहज ही इस उपन्यासमें मेरा, मेरे परिवारका, मेरे मित्रोंका, मेरी हलचलोंका बार बार उल्लेख अपरिहार्य हो गया। लेखककी नयी निवेदन प्रणालीके कारण यह 'मैं' इस कथामें घुस गया है। इसमें मेरा यह उद्देश नहीं कि उपन्यासके साथ ही आत्मचरित्र पाठकोंके गलेमें बाँध दूँ! सत्य जिस प्रकार वैज्ञानिक साहित्यकी आत्मा है, उसी प्रकार सत्याभास ललित साहित्यकी आत्मा है। जो रसिक इस तत्त्वको जानते हैं उनसे इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

लेकिन 'पारिजातकाचीं फुलें' शीर्षक कहानी लिखते समय मैंने आगामी कथा-सूत्रकी जो रूपरेखा तैयार की थी, उसमें लिखते लिखते अनेक छोटे-मोटे परिवर्तन होते गये। ये परिवर्तन कलाकी दृष्टिसे नहीं किये गये; बल्कि अनुभवकी दृष्टिसे किये गये। 'पारिजातकाचीं फुलें' शीर्षकसे इस उपन्यासके पहले पाँच परिच्छेद जब 'किलोस्कर' में प्रकाशित हो रहे थे, तभी मुझे अनेक पत्र मिले। उन्हें पढ़कर मुझे पूर्ण रूपसे यह ज्ञात हो गया कि साधारण मनुष्यके जीवनके अत्यंत आत्मिक, पर उतने ही नाजुक एक विषयकी ओर हम कितने लापरवाह हो गये हैं। मुझे जो पत्र मिले थे, उनमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंके भी पत्र थे। इन पत्र-लेखकोंमेंसे कईएकोंने अपने अनुभव इतनी प्रामाणिकतासे बताये थे, कि एक दो जगह अपनी कल्पनाके बदले उन अनुभवोंको इस उपन्यासमें स्थान देना मुझे अधिक दृष्ट मालूम हुआ।

किंतु प्रत्येक पत्रका लेखक अंतमें 'पुनश्च' के अन्तर्गत यह लिखनेको न भूलता था कि - 'इस पत्रको पढ़कर फाड़ डालिये!'

इतने दिनोंतक सुरक्षित रखे हुए इन सब पत्रोंको उनके लेखकोंकी इच्छानुसार मैं आज नष्ट कर रहा हूँ। परंतु उनमेंके प्रत्येक पत्रको फाड़ते समय मेरे मनमें एक ही विचार लगातार खड़ा होता रहेगा - मैं जो पत्र फाड़ रहा हूँ किसीके आंतरिक दुःखका उत्कट उद्गार है। जिस दुःखको वह व्यक्ति अपने समूचे जीवनमें

किसीसे भी नहीं कह सका, मित्रोंके कानोंमें भी जिसको कहनेका उसे साहस न हुआ, वह इस पत्रमें शब्दोंके रूपमें साकार हो गया है।

किसी भी विषयमें मुँदी मार सहता हुआ मनुष्य अपना जीवन बिताता रहे, यह कल्पना ही मुझे बड़ी भयंकर लगती है। शरीरके बाह्य भागके घावकी अपेक्षा केंसरकी नाईं भीतरी रोग ही अधिक प्राणघातक होता है। साधारण मनुष्योंके दुःखापर भी यही नियम लागू होता है। दरिद्रताके कारण भी वह जीवनसे नहीं ऊबेगा; परंतु गृहस्थीके रुग्णपनके कारण जरूर आत्म-हत्याके विचार उसके मनमें झाँकने लगेंगे।

इसके बावजूद गृहस्थीके सुखकी छानबीन करनेकी प्रणाली हमारे यहाँ विशेष प्रचलित नहीं है। स्त्री पुरुषोंके संबंधका कुतूहल प्रत्येक सुग्ध मनमें होता है। इस संबंधके सुखद अथवा दुःखद अनुभव प्रत्येक प्रौढ़के मनमें खेलते रहते हैं और प्रत्येक तरुण 'स्त्रीप्रेमाविण जन्म नीरस उणा काडीवजा भूवरी' चरणको गुनगुनानेमें निमग्न हो जाया करता है। स्त्रीके बदले 'पुरुष' शब्द रखकर यह पंक्ति नहीं कही जा सकती, यह सच है। परंतु प्रत्येक तरुणीके बारेमें वह सच होती है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं।

लेकिन हममेंसे बहुतोका आज भी यही ख्याल है कि कुतूहल, काव्य, कटुता इत्यादि अनेक पहलुओंवाले इस आत्मिक विषयकी खुल्लम खुल्ला चर्चा करना विशेष शोभनीय नहीं है। कक्षामें मास्टरके आनेसे पहले हरएक लड़केकी कानाफूसी जारी रहती है। परंतु जहाँ मास्टरसाहबने कक्षामें कदम रखा कि वहाँ एकदम गंभीर शान्ति फैल जाती है। ठीक उसी प्रकारकी स्थिति है इस विषयमें हमारी। प्रत्येक तरुणके मनमें प्रेमकी अस्फुट मधुर कल्पनाएँ खेलती रहती हैं। हरएकको महसूस होता रहता है कि गृहस्थीका सुख सामान्य मनुष्यके जीवनका एक बड़ा भाग है। परंतु इस विषयकी चर्चा - इस विषयके अनुभवोंका आदान-प्रदान - इस विषयका वैज्ञानिक दृष्टिसे किया गया मार्गदर्शन - छिः ! समाज बड़ा क्रोधी शिक्षक है ! उसके हाथमें रखी रुढ़ीकी लंबी छड़ीको देखते ही हरएकके

१ सुप्रसिद्ध मराठी कवि माधव ज्यूलियनके काव्यका एक चरण।

‘भूमिपर जिस प्रकार बिना शाखा और पत्तोंवाले पेड़का जविन नीरस होता है, उसी प्रकार स्त्री-प्रेमके बिना पुरुषका जीवन नीरस है।’

छके छूट जाते हैं और वह मन-ही-मन कहता है, - 'तुम चुपचाप बैठे रहें, यही ठीक है !'

सेक्स^१ संबंधी हमारी सभ्यताकी कल्पनाओंका चौखटा कितना फ़ौलादी है, और उस चौखटेमें जिज्ञासा, विचार, मार्गदर्शन आदि बातोंका समावेश किस तरह नहीं हो सकता, इस विषयकी एक-दो बातें जब याद हो आती हैं, तो मुझे आज भी हँसी आ जाती है ।

उस समय मेरी उम्र लगभग पाँच-छः वर्षकी रही होगी । हालहीमें मुझसे पढ़ते बनने लगा था । बच्चोंको जब कोई नयी बात सिद्ध हो जाती है, तो उनमें जॉर्ज जॉर्ज^२ का संचार हो जाता है । उसके हाथमें कुल्हाड़ी आते ही उसने जल्दी जल्दी पेड़ोंको काटना शुरू कर दिया था न ? मैं भी रुक रुककर पुस्तक, पोथी, सुखसंचारक कंपनी^३का सूची-पत्र, नाटकोंके विशापन, बल्कि जो भी छपा हुआ मज़मून हाथमें आ जाता, वह पढ़ने लगा । मुझे घरमें आकर पढ़ानेवाले मास्टरसाहब मेरे इस पढ़नेके पागलपनकी हमेशा ही बड़ी सराहना किया करते ।

एक दिन पिताजीकी डाकमें आया हुआ एक छपा कार्ड मैंने देखा । बात-की-बातमें मैंने उसे उड़ा दिया । किसीकी विवाह-पत्रिका थी वह । उसमें छपा था - 'चि. सौभाग्यकांक्षिणी अमुकका विवाह (साथमें तिथि, घड़ी, पल, स्टैंडर्ड टाइम इत्यादि इत्यादि) करनेका निश्चित किया है । शरीर-संबंध श्रीयुत अमुकसे —'

'शरीर-संबंध' शब्दपर मेरी गाड़ी रुक गयी । उस समय मुझे यह पता न था कि शब्दकोश नामका भी कोई एक ग्रंथ होता है । वरना, उस जिज्ञासाके आवेश-में मैं मराठीके सारे कोशोंको छान डालता । हमारी धोंडू नौकरानीकी लड़की उम्रमें मुझसे कुछ बड़ी थी । उसके साथ मैं बहुत बार खेला करता था । मेरी

१ लिंग ।

२ जॉर्ज वॉशिंग्टन : अमेरिकाकी स्वतंत्रताका एक शिल्पकार । बचपनमें पिताने उसे एक छोटी कुल्हाड़ी दी थी । वह हाथमें पढ़ते ही उसे हर एक पेड़पर उसने चलाकर देखा था, यह बात मशहूर ही है ।

३ सुखसंचारक कंपनी : मथुराकी एक कंपनी जिसके विशापन बड़े मोटे टाइपोंमें छपे हुए होते हैं । सूचिपत्र भी छोटे बालकोंको पढ़ने लायक मोटे अक्षरोंमें छापते हैं ।

समझमें न आये हुए इस शब्दका अर्थ मैंने उससे पूछा। परंतु वह भी मेरे बराबर ही विदुषी निकली !

उस दिन मुझे ऐसा लगा कि शाम कब होती है।

सई-साँझ हो गयी। दीप जल गये। गणेशजीके मंदिर^१के सामनेवाली सड़कपर हाथमें लालटेन लिये घूमनेवाला फकीर नुक्कड़पर दीखने लगा। मैं साँस रोककर प्रतीक्षा कर रहा था। मास्टरसाहब भी आते हुए दिखाई दिये।

आनंदसे नाचता हुआ ही मैं घरके भीतर आया।

मास्टरसाहब पढ़ाने बैठे। तुरंत ही मैंने अपनी शंका उनके सामने पेश की। उन्होंने विवाह-पत्रिकाका वह शब्द पढ़ा ही था, कि बस ! उनके चेहरेके भावोंसे मुझे विश्वास हो गया कि उस शब्दोंका कोई महा भयंकर अर्थ होना चाहिए। मास्टरसाहबने आँखें तरेकर क्षणभर मेरी ओर देखा। उस कार्डके छोटे टुकड़े पर उन्हें बाहर फेंक दिया और क्रोधसे बोले, - 'याद रखो, ऐसी शैतानी मेरे पास न चलेगी, समझे ? चलो, कहो - बारह एक बारह !'

मैंने उच्च स्वरमें कहना शुरू किया, - 'बारह एक बारह, बारह दूनी चौबीस !'

मैं मुँहसे पहाड़े कह रहा था; पर मनमें ? मेरा मन लगातार कह रहा था - 'शरीरसंबंध' प्राणी बाघ, सिंह, चुडैल, राक्षस इत्यादिसे भी भयंकर होना चाहिए। वरना, हमारे मास्टरसाहब उसको सुनकर इस तरह कमी न घबड़ाते। लेकिन एक पहेली जरूर उस समय मैं न सुलझा सका। मैं उस समय विवाहको बाजे, रांगोलियाँ^२, मोतीचूरके लड्डू, छाछ इत्यादि इत्यादि बातोंका सम्मेलन ही समझा करता था। विवाहके बारेमें इस उम्रमें मेरी यही पक्की धारणा थी। इस सम्मेलनसे शरीरसंबंध जैसे भयंकर प्राणीका क्या संबंध है, यही मेरी समझमें न आता था !

इसके बाद, एक बात उस समयकी याद आ रही है जब मैं कॉलेजमें था। स्कॉट^३ के 'आइवैनो' नामक रम्य ऐतिहासिक उपन्यासको हम सब मित्रोंने बड़े आनंदसे पढ़ा था। गडकरी^४का 'प्रेमसंन्यास' नाटक भी उस समय विद्यार्थियोंमें

१ सांगलीका प्रख्यात गणपतिका देवालय जिसके नजदीक ही हम रहते थे।

२ चौकपूरना।

३ सर वॉल्टर स्कॉट : अंग्रेजी भाषाका मशहूर उपन्यासकार। इसके ऐतिहासिक उपन्यास जगविख्यात हैं।

४ राम गणेश गडकरी : मराठी भाषाके प्रसिद्ध कवि और नाटककार।

अत्यंत लोकप्रिय था। 'प्रेमसंन्यास' का नायक जयंत लीला^१ से प्रेम करता है। वह स्वयं काव्यात्मक है। इसके विपरीत उसकी पत्नी मनोरमाकी बड़ी झगड़ालू और कठोर दिखाया गया है। इसके कारण उसे मनोरमा नापसंद हो और लीला पसंद हो, तो इसमें अस्वाभाविक ऐसी कोई बात न थी।

मेरे मित्रोंमें जो मतभेद हो गया था वह इस कथावस्तुके आगामी भागके विषयमें। लीलाके चाचा तात्यासाहब यह फर्मान निकालते हैं कि घरके स्त्री-पुरुषोंको एकत्र नहीं बैठना चाहिए और एक दूसरेमें बातें भी न करनी चाहिए। इसलिये लीला और जयंतकी मुलाकात नहीं हो पाती। अंतमें वे गुप्त रीतिसे बागमें मिलते हैं। खलनायक कमलाकर यह देख लेता है और फिर चिनगारी मिल जानेसे सूखे हुए जंगलमें दावानलके मुलंगनेमें कितनी देर लगती है ?

हमारे पक्षकी दलील यह थी कि जयंत और लीलाको एक दूसरेसे मिलनेकी क्या जरूरत थी ? जयंतको अच्छी तरह मालूम था कि पहली पत्नी जिंदा होते हुए मेरा लीलाके साथ विवाह असंभव है। फिर वह चुपचाप अपने कमरेमें लीलाका चिंतन करता हुआ क्यों नहीं बैठा रहा ? लीला भी उसकी मुलाकातके लिये इतनी आतुर क्यों हो जाती है ? क्या, वह नहीं जानती थी कि जयंतपर मेरा कोई अधिकार नहीं है ? यदि वह जयंतकी सिर्फ मानसपूजा ही करती रहती, तो मनोरमाका मत्सर बागृत ही न हुआ होता। लेकिन लीला सुबह एकान्तमें जयंतकी मुलाकातके लिये जाती है, तो किस लिये ? क्या, मानसिक प्रेमके लिये ? क्या, प्लेटोनिक लव^२ के लिये ? छिः ! तरुण स्त्री-पुरुषोंका परस्पर आकर्षण केवल मानसिक हो ही नहीं सकता। कई बार प्रेमका आरंभ बौद्धिक अथवा भावनात्मक हो सकता है; परंतु किसी व्यक्तिके प्रति लगनेवाले प्रबल आकर्षणका उद्गम बुद्धि किंवा भावनाके जनन किंवा सतोपसे होता हो, फिर भी वह एक दूसरेके प्रति लगनेवाली शारीरिक आसक्तिमें ही परिणीत हो जाता है। बिल्हण^३ अथवा ब्राउनिंग^४ की

१ लीला : 'प्रेमसंन्यास' नाटकका बालविधवा नायिका।

२ प्लेटोनिक लव : जिसमें शरीरसुखकी इच्छा नहीं वह प्रीति, अर्थात् दिव्य प्रेम !

३ बिल्हण : एक प्राचीन प्रसिद्ध कवि। यह कवि और एक राजकन्या इनके प्रेमकी कहानी प्रसिद्ध है।

४ ब्राउनिंग : उन्नीसवीं शताब्दिका प्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि। रौबर्ट ब्राउनिंग और उसकी प्रेयसी एलिज़ाबेथ बैरेट इनकी प्रेम-कहानी सर्वपरिचित है।

प्रेम-कहानियों को पढ़िये, अथवा वामनराव जोशी 'के समान तत्त्वज्ञ उपन्यास-कारके द्वारा खींचे हुए 'इंदु काले' के चित्रका पृथक्करण कीजिए - सर्वत्र एक ही बात दिखाई देगी। तरुण-तरुणीका ऐसा प्रेम जो शरीर-मिलनकी कल्पनामें सर्वस्वमें अलित हो, खगोशकी सींगकी तरह ही एक दुर्लभ वस्तु है।

लीलाकी बराबरीमें बाल पति-मूर्तिके चिन्तनमें खो गयी प्रौढ़ा मुशीला भी गडकरीकी निर्मिति होनेके कारण, हमारे प्रतिपक्षियोंको अपना पक्ष बड़ा जोरदार जान पड़ रहा था।

काफ़ी बहस हो जानेके बाद, अंतमें मैंने अपने प्रतिस्पर्धियोंमें एक प्रश्न पूछा था जो मुझे आज भी याद आता है। 'यदि यह स्वीकार कर ले कि मुशीला जैसी नारी हो सकती है, तो दुनियामें लीला कितनी है और मुशीला कितनी है?'

उन्हें बहस जीतनी थी। इसलिये इस प्रश्नका उत्तर किसीने भी प्रामाणिकतासे न दिया। और आजका हमारा समाज भी सारे पूर्वग्रहोंको एक ओर हटाकर इस विषयमें प्रामाणिक मत देनेके लिये तैयार होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता।

अद्भुतगम्य पौराणिक कथाओं और परलोककी कल्पनाके कारण उत्पन्न हुए अवास्तविक वैराग्यका हमारे जीवनविषयक तत्त्वज्ञानपर जमा हुआ सिका आज भी दूर नहीं हुआ है। यदि कोई किसी मंदिरमें खड़ा होकर यह कह दे कि काम-क्रोध मनुष्योंके पड़ुरिपु नहीं, बल्कि उसके घनिष्ठ मित्र है, तो श्रोतागण उसे पागलोंमें गिनने लगेंगे। 'न मासभक्षणं दोषः, न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा भूताना निवृत्तिस्तु महाफला।' - यह रहा हमारा प्राचीन जीवन सूत्र! मैथुन, मद्यपान और मासभक्षण - इन तीनों बातोंको एक मालामें पिरो देनेवालेकी आँखोंके सामने पाणिनी 'का 'श्रानं युवानं मधवानम्' सूत्र खड़ा था क्या, कौन जाने? शायद इन तीन शब्दोंके अनुप्रासने ही श्लोकरचयिताको मोहित कर लिया होगा!

मद्यपान विलासकी वस्तु है। यह विलास आत्मघातक है, यह बात छोड़ दीजिये; लेकिन मास-भक्षण निरा विलासका विषय नहीं है। वह जीवन कलहकी एक अपरिहार्य बात है। और इसी लिये आजके मानवकी सुसंस्कृत बुद्धिको हिंसाके विषयमें तिरस्कार मालूम होना भले ही स्वाभाविक हो, फिर भी आज

१ वामन मल्हार जोशी : मराठी भाषाके एक प्रसिद्ध विद्वान और साहित्यिक।

२ पाणिनी : संस्कृत भाषाका श्रेष्ठ व्याकरणकार।

दुनियाके अधिकांश लोग मांस खाकर ही जी रहे हैं ! केवल तार्किक दृष्टिसे जग-की ओर देखकर सत्प्रवृत्त लोगोंके द्वारा निश्चित किये हुए नियम पुस्तकोंमें ही किस तरह पड़े रह जाते हैं, इसका इस विषयका उदाहरण जिसे देखना हो, उसे कोंकण^१के किनारेपर बसे हुए सब गाँवोंको देखना चाहिये । उन गाँवोंमें रहने-वाले शरीर लोगोके चूल्होंके पास हो आना चाहिये । उन लोगोका यह मत नहीं है कि मछलीमें जान नहीं होती । उनका संस्कृतिसे इतना समझने लायक परिचय भी है कि दूसरोंके प्राण लेना अच्छी बात नहीं है । परंतु यदि उन्होंने मछली न खानेका निश्चय कर लिया, तो उन सब लोगोको बड़ी मुश्किलसे प्राप्त होनेवाला मुट्ठीभर भात भी रुखा-सूखा ही खाना पड़ेगा ! मांसाशनमें जिन्हालौल्य बिलकुल ही नहीं होता, यह बात नहीं है । परंतु सिर्फ चतोरपनके कारण ही मासभक्षण प्रचलित हुआ है और स्मृतिकारों, भूतदयावादी सज्जनों और मानवी संस्कृतिका संवर्धन करनेवाले नीतिशास्त्रज्ञोंके प्रयत्नोंसे वह शीघ्रही बंद हो जायेगा, यह बात भी नहीं है । यदि कोई वैज्ञानिक भू-भागपर इतना शाकाहार पैदा करनेकी खोज करे जो सब लोगोके लिये काफी हो जाय, तभी मनुष्य-प्राणी मांसाशन त्याग देने-का विचार गंभीरतापूर्वक करने लगेगा ।

मैथुनका प्रश्न तो इन दोनोंसे सर्वथैव भिन्न है । स्त्री-पुरुषोंका एक दूसरेके प्रति आकर्षण, आसक्ति और मिलन निरा विलास नहीं है अथवा ऐसा भी नहीं है कि प्रयत्नोंसे टाला जा सके । यही नहीं, बल्कि इस विषयमें यह मानना कि निवृत्ति फलदायक है; यही एक विकृति है । रामदास^२ और विवेकानंद^३ जैसे महापुरुषोंके जीवनके लिये यह निवृत्ति लाभदायक हुई भी होगी; परंतु

१ कोंकण : पश्चिम समुद्र और सत्याद्रिके दरमियानका महाराष्ट्रका भू-भाग ।

२ रामदास : शिवाजीके समयका प्रसिद्ध संतकवि । उस समयके राष्ट्रीय पुनरुज्जीवनमें इनका सहाय्य हुआ था । सगे-संबंधियोंके आग्रहके कारण ये विवाहके लिये राजी हुए थे; लेकिन वेदीपर खड़े होनेके बाद विवाह समयके 'सुमुहूर्त ! सावधान !' शब्द कानोंमें पड़ते ही वे वहाँसे गायब हो गये ।

३ विवेकानंद : आधुनिक संत और संस्कृतिके पुनरुज्जीवक । रामदास सरीखे ब्रह्मचारी ही रहे ।

महापुरुषोंके जीवनसे निपकाकर उन्हें मार्गदर्शन करना मानवताकी वंचना है। सूर्यकी गतिके नियम अन्यग्रहोंको किसीने लगाये हैं क्या ?

मनुष्य पशु नहीं और देवता भी नहीं। यह सच है कि जब उसका अधःपतन हो जाता है, तो वह पशुसे भी अधिक बुरा बर्ताव करने लगता है और यदि वह उदात्तताके शिखरपर पहुँच सका, तो ऐसे गुण प्रकट कर सकता है जो देवताओंके लिये भी असाध्य हो सकते हैं। परंतु इसका मतलब यह कदापि नहीं होता कि प्रत्येक सामान्य मनुष्य देवता हो सकेगा अथवा मानवका अतिमानव बनना प्रत्येक सामान्य मनुष्यके जीवनका ध्येय होना चाहिए। अतिमानव बननेका असफल प्रयत्न करनेवाले लोगोंका आल्डुस हक्सले^१ द्वारा किया गया वर्णन पढ़ने योग्य है। वह कहता है —

‘ In practice the vast majority even of superhumanists live inconsistently. They are one thing in Church and another out ; they believe in one way and act in another ; they temper spirituality with fleshliness, virtue with sin, rationality with superstition. ’

हक्सलेके इस वर्णनकी सत्यताको जेंचा देनेवाले लोग इतिहासहीमें नहीं हैं, बल्कि हमारे आसपास आजकल विचरण करनेवाले राजनैतिक पुरुषोंमें, सार्वजनिक नेताओंमें, साहित्यिकोंमें, कलाकारोंमें, कहीं भी चाहे जितने मिल सकते हैं। उन सबके जीवन-क्रमका सार एक ही है। मनुष्य सिर्फ आत्मा नहीं। मनुष्य शरीर और आत्माका विलक्षण मिश्रण है। मनुष्यका बुद्धिविकास, उसका भावना-विलास और मानवताके द्वारा आजतक प्राप्त की हुई संस्कृति — ये तीनों चीजें जगको ऊँची सीढ़ीपर ले जानेका प्रयत्न कर रही हैं। इसमें उन्हें आज नहीं तो कल थोड़ी-बहुत सफलता भी मिल जायेगी। लेकिन कलकी इस उज्ज्वल मानवी संस्कृतिमें भी मनुष्य आखिर मनुष्य ही रहेगा, वह देवता नहीं हो जायेगा। किसीको भी यह पागल आशा नहीं रखनी चाहिए कि शरीरसुख उसके जीवनका उपेक्षणीय

१ आल्डुस हक्सले : एक विद्यमान प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक, उपन्यासकार और तत्त्वचिंतक।

भाग हो जायेगा। खादोंसे चूसे गये द्रव्योंपर जिस जगमे फूलोंका पोषण होता है, वहाँ शरीरधर्म और शरीरसुखके विषयमें उदासीनता दर्शानेमें क्या अर्थ है ?

जीवनमें धर्म-मोक्षका जितना महत्त्व है, उतना ही अर्थ-कामका भी है। उनमें अमुक श्रेष्ठ है और अमुक हेय है, यह निश्चित करना ही वास्तवमें भूल है। कलशके बिना मंदिरमें शोभा नहीं आती, यह जितना सच है, उतना ही उस कलशको स्थिर रखनेके लिये मंदिरकी नींव मजबूत होनी चाहिए, यह भी सच है ! परंतु सफल जीवनके लिये धर्म-मोक्षके बराबर ही अर्थ-कामोंकी आवश्यकता है। यही नहीं, बल्कि उनकी ओर वैज्ञानिक दृष्टिसे देखनेकी भी जरूरत है, यह अभीतक हमें ज्ञेयता ही नहीं है। गीताके एक श्लोकके सार्थक लगानेकी पीढ़ियोंसे कोशिश करनेवाली हमारी बुद्धिमत्ताओं, समाजके निम्नस्तरके लोग शताब्दियोंसे किम तरह जिदगी धिताते आये हैं इसकी पृष्ठताल करनेका जिस तरह आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, उसी तरह स्त्री-पुरुषोंकी गृहस्थिया सुखकारी कैसे होगी, इस विषयमें भी हमें कभी कोई चिन्ता नमात्म हुई। जनमपत्री देखना दहेजकी रक्कम गिन देना और बहूको 'दूधो नहाव और पुता फलो' या 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव' कहकर आशीर्वाद दे देना - सिर्फ इतना ही पुगनी दृष्टिसे विवाहका अर्थ था। नयी दृष्टिसे विवाह और प्रेम समीकरणके रूपमें आये, परंतु उस प्रेमका पृथक्करण करनेकी झझटमें वह भी न पड़ी। और उसका परिणाम -

आजकल तरुण-तरुणी गृहस्थीको पुष्प वाटिका मानकर उसमें प्रवेश करते हैं। परंतु उनमेंके अनेक युगलोंके पैर शीघ्र ही कोठोंमें लहलहात हो जाते हैं और फिर वे जहाँ रास्ता मिले वहाँ भागने लगते हैं। उनमेंमें किसीको भी यह पता नहीं चलता कि ये कौट कहांसे आते हैं। परंतु मध्यम वर्गमें वैवाहिक असंतोष कितने बड़े परिमाणमें घुंघुवा रहा है, यह बीचहीमें होनेवाले विचित्र विवाहोंके कारण लोगोंके ध्यानमें आता ही रहता है।

व्यक्ति-जीवनके पूर्वार्द्धमें अर्थ और कामको स्वाभाविक तौरसे ही प्रधानता प्राप्त होती है। परिस्थितिके कारण और थोथे ध्येयवादके शिकार होकर बहुत लोग इस विषयमें निसर्गके प्रवाहके विरुद्ध तैरनेकी कोशिश करते हैं। किंतु अंतमें प्रवाह ही उन्हें अपने साथ बहा ले जाता है। उसके वेगमें उनके सिर चट्टानोंसे टकराते हैं और फिर उन घावोंसे बहनेवाले रक्तको जन्मभर बैठे पोछते रहनेके सिवा उनसे और कुछ भी करते नहीं बनता। बालविधवा होकर भी चालीसको पार

करतेतक विवाह न करना, और एक दिन किसीके भी साथ रजिस्ट्रारकी कचहरीमें जाकर खड़े हो जाना - क्या, यह सफल गृहस्थ जीवनका लक्षण है ? उसमें अपनेसे छोटे तरुणमें विवाह करना, और विरूपविचयमें वह मुझमें ऊँच जायेगा इसलिये अपना आकर्षण बनाये रखनेके लिये दो घर बसानेकी योजना बनाना ! यह क्या जीवनका मुख्यवर्ष प्राप्त हो जानेका अनुभव है ? पहले तो गला फाड़कर यह कहते हुए कि 'सारा पुरुष जाति ही नमकदरम है', समाजमेंवाका बीड़ा उठाना, और अंतमें पत्नी और बाल बच्चोंवाले किसी आँलियाके गलेमें बगमाला पहनाकर उसे बैठे हुए गिलौरियाँ बनाकर खिलानेमें आनंद मानना ! यह क्या जीवनकी सफलताका सबूत है ?

आजकलके तरुण तरुणियोंके प्रेमजीवनमें इस तरहकी कितनी ही विकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। स्वभावसे ही जो मनुष्य बुद्धिमान और कर्मवीर है, वे जब इस विकृतिके भेदमें फँस जाते हैं, तो निस्तेज और कार्य शून्य हो जाते हैं - ऐसा अनुभव हो रहा है।

इस विकृतिके मूलमें अनेक कारण हैं। उनमेंसे एकपर इस उपन्यासमें थोड़ासा प्रकाश डालनेका मैंने प्रयत्न किया है। यह कहनेवाले अनेक लोग मिलेंगे कि पति-पत्नीका बौद्धिक और भावनात्मक एकरसताके बराबर इस कारणको महत्त्व देनेमें कोई अर्थ नहीं। हमारे यहाँ स्त्री आज भी गरीब गाय है। पुरुषोंको भी यह लगता है कि इस विषयमें मुँहपर ताला पड़ा रहना ही अच्छा। इसलिये आँकड़े देकर ऐसे लोगोंका मुँह बंद करना किसीके लिये भी समभव नहीं है। परंतु यहाँ एक ऐसा अवतरण दे देनेमें हर्ज नहीं, जो उन्हें विश्वसनीय प्रतीत हो —

At the Institute of Family Relations, Los Angeles, where domestic difficulties are studied, it was found that out of 500 consecutive cases of unsuccessful marriage examined in 1930, all but one showed sexual mal-adjustment as a complicating factor. In what percentage this was the primary factor in the domestic upheaval and in what percentage a contributory one, it is impossible to say. Nor is this necessary. Our emotional life is too complicated to allow of our seeing clearly the part played

in its pattern by every strand that enters into its composition. It is enough to know that physical mal-adjustment is almost always present when marriages come to grief. '

—*The Physiology of Sex*
by Kenneth Walker,

तरुण स्त्री-पुरुषोंको अपने प्रेम-जीवनमें शरीरसुखका भाग अत्यंत महत्त्वका मानना चाहिए। उन्हें यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि एक दूसरेके आनंदका संवर्धन करनेके लिये हमने एक दूसरेके हाथ अपने हाथमें लिये हैं, जीवनके प्रवासका सच्चा आनंद इस प्रकारके साथमें ही है, इत्यादि बातें मैने भले ही कही हों, फिर भी केवल कामतृप्ति गृहस्थी ध्येय नहीं हो सकता इसे कौन अस्वीकार करेगा ? मुझे इतना ही सुझा देना है कि आकाशके चंद्रमाको हाथ लगानेके प्रयत्नमें यदि मनुष्यके पृथ्वीपर जमे हुए पैर उखड़ जायें, तो वह औंधे मुँह गिर पड़ता है। उचित समयपर वह चंद्रमा अनेकके हाथ लग जाता है, न लगता हो यह बात नहीं। दस-बीस वर्षोंतक संकटों और सुखोंके स्वादको जोड़ीसे चख लेनेपर ही उस चोदनीकी वृष्टि होने लगती है। उस दृष्टिसे उदात्त प्रेम शुक्ल पक्षका चंद्रमा नहीं; वह अँधेरे पाखका है।

कोल्हापुर }
८-१०-४१ }

वि. स. खांडेकर

स्वच्छंदालाप

‘जललेला मोहर’^१ उपन्यासको लिखते समय पद पदपर मुझे यह महसूस हो रहा था कि इसका विषय और तंत्र दोनों लीकके बाहरके हैं। इसलिये मैने यह निश्चय

१ केनेथ वौकर : काव्यविषयक प्रश्नोंपर इनके सुबोध और समतोल लेखन प्रसिद्ध है।

१ ‘झुलसी मंजरी’ उपन्यासका मराठी नाम।

किया था कि इसकी प्रस्तावना मैं स्वयं न लिखूँगा, बल्कि, ऐसे महाशयसे लिखवाऊँगा जिनका इस विषयमें अधिक निकट संबंध हो और जो अपने विचारोंको निर्भीकतासे प्रकट करनेमें ज़रा भी न हिचकिचाये, सहज ही मुझे डॉक्टर सानेका नाम सुझ पड़ा। उनके कारण ही उपन्यासकी नमूनाईसे मेरा परिचय हुआ था। 'झूठी लाज, थोथे ध्येयवाद और बनावटी पवित्रताकी चद्दर ओढ़कर प्रेमके दुःखोंको दुनियासे छिपाया जा सकता है; परंतु वे मनको झुलसा देते हैं।' उनके इन उद्गारोंको तो मैं कभी नहीं भूला था।

डॉक्टर सानेकी और मेरी जब जब बैठक होती, तब तब उनकी बातचीतमें दिखाई पड़नेवाले दृष्टिकोनका, पुस्तकोंकी अपेक्षा मनुष्योंका अध्ययन करके सत्य ग्योजनेकी उनकी उत्कट इच्छाका और किसीके भी बड़प्पनसे चकाचौध न होकर उसके द्राग प्रतिपादित सिद्धान्तको बुद्धिवादकी कसौटीपर घिसकर देखनेकी उनकी स्पर्धाका मुझे हमेशा ही बड़ा कौतुक होता। दुनियामें असली दुष्टताकी तरह असली होशियारी भी एक दुर्लभ वस्तु है। दुनियाके बाज़ारमें हरएक प्रकारकी मूर्खता अवश्य विपुलतासे मिलती है। 'विवाहके पहले पतिपत्नी दोनों ही कवि होते हैं। परंतु विवाह होनेके बाद वे एक दूसरेके आलोचक बन जाते हैं', 'स्त्रियोंको तंग करनेवाले पुरुषोंकी तरह ही, पतियोंको त्राहि त्राहि कर छोड़नेवाली स्त्रियाँ भी पैदा हुई हैं। लेकिन तुम लेखकोंको वे कभी भी नहीं दीखती!' — ऐसे वाक्यों और उनके समर्थनके लिये कही गयीं सत्यकथाओंके कारण, उनसे बातचीत करनेमें समय किस तरह निकल जाता था, इसका स्वयं मुझे ही कोई पता न चलता था।

इसलिये 'जललेला मोहर' उपन्यासके पहले संस्करणकी प्रस्तावना उनसे लिखवानेकी मैंने कोशिश की। लेकिन बहुश्रुत, रसिक और मर्मज्ञ मनुष्यको केवल अभ्यास न होनेके कारण लिखनेके विषयमें अकारण ही एक प्रकारका भय लगा करता है। सानेका भी यही हो गया होगा। उस समय उन्होंने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार न किया।

इस उपन्यासका पहला संस्करण प्रकाशित होनेके बाद उसको नवीनताके कारण जिस तरह कुछ लोगोंने उसका स्वागत किया, उसी तरह कुछ पाठकोंने उसकी आलोचना भी की। किसीने कहा, उसमें अतिवास्तविकता (Surrealism) है, तो किसीने यह कहा कि खांडेकरने डरते डरते इस विषयको हाथ लगाया है। एक

महाशयकी यह गाय रही कि मुझे उपन्यास न लिखकर इस विषयपर एक वैज्ञानिक ग्रंथ ही लिखना चाहिए था। एक दो गुजराती लेखकोंने इसके विषय और तंत्रकी सगहना की। परंतु उसका गुजराती अनुवाद प्रकाशित होनेके बाद उसपर यह आलोचना भी हुई कि इस उपन्यासकी रचना रेखागणित-पद्धति-सी लगती है। उन आलोचकोंकी बहुधा यह बात ध्यानमें न आयी होगी कि इस नाजुक विषयके अनेक परम्पर विरोधी पहलू हैं और उन सबको चित्रित न करना अप्रामाणिकता होगी और इसी दृष्टिमें लेखकने विशिष्ट रचनाका अंगीकार किया है। इस उपन्यासमें मैंने नायक-नायिकाओंका स्थान विषयको देनेका प्रयत्न किया। यह सफल न हुआ हो; लेकिन मेरा ख्याल है कि लेखकके यश और अपयशकी मीमांसा उसके द्वारा ग्रहित बातोंकी ओर देखकर की जाय, तभी आलोचक उसके अंतरंगके सच्चे स्वरूपको दिग्वा सकता है।

पिछले चौबीस वर्षोंमें मुझे अनेक बार यह अनुभव हुआ है कि पठित पंडितोंकी अपेक्षा सर्वसाधारण पाठक ही किसी भी कलाकृतिका अधिक रसिक आलोचक हो सकता है। इसलिये मैंने सोचा कि दूसरे संस्करणकी प्रस्तावनामें उपन्यासके साहित्यिक गुणगानोंकी चर्चा न कर उसके विषयका विवेचन होना ही अच्छा होगा। इस बार मेरा निश्चय था कि कुछ भी हो डॉक्टर सानेमें प्रस्तावना प्राप्त करके ही रहूंगा। उन्होंने पहले तो बड़ी आनाकानी की। लेकिन अंतमें पत्रके रूपमें लिखा हुआ अपना लेख उन्होंने मेरे पास भेज दिया। उनके पत्रके प्रारंभिक, वैयक्तिक अंशको छोड़कर वह ज्यों का त्यों मैं नीचे दे रहा हूँ।

३०-६-४८

वि. म. खांडेकर

डॉक्टर सानेका पत्र

‘मुझे यही लगता है कि स्त्री-पुरुष संबंधके विषयमें हमारा समाज अभी तक आवश्यकतातम अधिक पवित्रता धारण किये हुए है। जो लोग नैसर्गिक वासनाओंका प्रामाणिक रीतिसे विचार करनेके बदले यह मानते हैं कि उन्हें धार्मिक

परदोंकी ओटमें छिपाकर हम संस्कृतिका विकास कर रहे हैं, समाजकी गाड़ी जाकर गढ़में न गिर पड़े इसलिये प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करके उसे नियंत्रणमें रखनेकी दक्षता ले रहे हैं, वे जाने अनजाने आत्मवंचना करते रहते हैं। हमारे समाजकी सनातन पद्धति यह है कि परदेकी आड़में कुछ हो गया, तो दर्ज़ नहीं; परंतु उन बातोंकी खुल्लम खुल्ला चर्चा न होनी चाहिए। इस पद्धतिके कारण काम-वासनाका स्वरूप अधिक उन्नत हो गया, समाजकी विविध विकृतियोंको रूकावट हो गयी अथवा पति-पत्नीके बीच एक दूसरेके प्रति निष्ठा बढ़ती गयी यह बिलकुल नहीं हुआ। बल्कि इसके विपरीत इस विषयमें खुल्लम खुल्ला बोलनेकी मनाही होनेके कारण अधूरे ज्ञान और संपूर्ण अज्ञानसे पैदा होनेवाले अनेक अनर्थ हमारे सामाजिक जीवनमें कुहराम मचाते रहे हैं। अपने दैनिक जीवनकी छोटी-मोटी बातोंपर भी धार्मिकताका इतना ज़बरदस्त सिक्का जमा था, [यही कहना पड़ेगा कि वह अब भी है] कि उसके कारण जीवनको नैसर्गिक सुखकारक और व्यक्ति और समाजके लिये उपकारक बनानेके लिये जिस वैयक्तिक दृष्टिका अवलंबन करना पड़ता है, वह हममें कभी भी विकसित न हुई। रूढ़ियोंके दास, दुर्भाग्यसे, हमारे यह सामाजिक जीवनके नेता माने गये, प्रामाणिक विचारवानोंकी पीढ़ियोंसे नास्तिक कहकर अपमानित किया गया, वे विद्रोही करार दिये गये। इन सब बातोंका परिणाम हमारे समाजपर कितना भयंकर हुआ है, उसकी कल्पना आप जैसे लेखकोंको नहीं हो सकती। घरकी चार दीवालें ही तुम्हारी चार दिशाएँ होती हैं। मुझ जैसे डॉक्टरकी बात यह नहीं। चार घंटेके भीतर उसे दस दुःखी जीवन देखनेको मिलते हैं। उस दुःखके लिये कारणीभूत हुए अज्ञान, दारिद्र्य, और पशुत्वका नग्न दर्शन उस होता है। मुझ जैसे डॉक्टरके आगे हर रोज़ मनुष्यके चित्रविचित्र नये नये नमूने आकर खड़े होते हैं। उन्हें देखता हूँ तो अपने समाजके अज्ञानपर, उससे निर्मित हुई शोथी लज्जापर और शिष्टाचार तथा सभ्यताके नामपर अपने आपको बुरी तरहसे कुठित करनेवाली अपनी संस्कृति-पर हँसूँ या रोऊँ, यही अनेक बार समझमें नहीं आता।

कलहीकी एक बात सुनाता हूँ - कल शामको एक अपरिचित तरुण मेरे दवा-खानेमें आया। वैसे वह कोई बिलकुल अनाड़ी न था। उसने पहले मुझसे कहा कि उसे ठंड देकर बुखार आता है। मैंने थर्मामीटर निकालकर उससे जब उसे काँखमें लगानेके लिये कहा, तो एकदम हज़रत बोले, - 'साहब, वैसे मुझे कोई

ज्यादा बुखार नहीं आता। बुरी जगह एक फोड़ा हो गया है। उसके कारण कुछ ठंड-सी लगती है। शायद थोड़ी हरा रत आ जाती होगी !' तुरंत ही मैं ताड़ गया कि वह झूठ बोल रहा है। बने हुए गवाहसे भी अधिक झूठ बोलनेके बाद हिचकिचाते हुए अन्तमें उसने यह मंजूर किया कि गुप्त रोगसे उसे कष्ट हो रहे हैं !

डॉक्टरके पास जाकर भी अपने रोगको ठीक तरहसे न बतानेकी यह जो वृत्ति दिखाई देती है उसका मूल हमारे कथावाचकों और पौराणिकों द्वारा रूढ़ की गयीं और समाजके द्वारा एक अंधेकी तरह शिरोधार्य मान ली गयीं सांकेतिक कल्पनाओंमें है। हम हज़ारों वर्षोंसे यह रटते आ रहे हैं कि कामविकार मनुष्यका नंबर एकका शत्रु है। हमारे पुराण और काव्य, हमारे संत और साहित्यिक सदियोंसे समाजको यह पढ़ाते आये हैं कि विश्वामित्र जैसे उग्र तपस्या करनेवाले महर्षि भी मेनकाके एक कटाक्षसे घायल होकर उसके चरणोंमें लोटने लगते हैं। पीढ़ियोंसे चली आयी इस तोतारटन्तका कामविषयक नीतिको सुधारनेके काममें कितना उपयोग हुआ होगा, यह एक परमेश्वर ही जानता होगा ! इस तोतारटन्तके मूलमें जो तर्कशास्त्र है, वही बड़ा अजीब है। लोहपिष्ठ भक्षण करके साठ सहस्र वर्ष उग्र तपस्या करनेवाला अलौकिक ऋषि जिस मोहको नहीं टाल सका, उसपर सर्वसामान्य मनुष्य अनायास ही विजय प्राप्त कर सकेगा, यह कल्पना कितनी हास्यास्पद है ! लेकिन, जो स्वर्गसुख अस्तित्वमें ही नहीं है उसके पीछे दौड़नेवाले और जिस पृथ्वीपर हमें प्रत्येक क्षण व्यतीत करना पड़ता है उसकी ओर पीठ फेरकर कल्पनाके परलोककी ओर आँख लगाये बैठे हुए मनुष्य, तर्कशुद्ध विचार कर ही कैसे सकते हैं ? कटु सत्य और मधुर असत्यमें जो भेद है, उसे जान लेनेकी उन्हें इच्छा ही नहीं होती। आत्मविकास मानवी जीवनका उच्चतम ध्येय भले ही हो, फिर भी मनुष्य केवल आत्मा नहीं है, वह शरीर भी है। शरीरधर्मकी ओर ध्यान न देकर, उसकी पूरी अवहेलना करके केवल आत्माके पीछे पड़ जाना, तृष्णा शांतिके लिये अन्तरालमें कूआँ खोदकर उसका पानी पीनेकी इच्छा करनेकी तरह है। यह बात सभीको हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। परंतु 'हुई है वही जो राम रचि रखा'—यह जिसका जीवन विषयक तत्त्वज्ञान है, किसी भी संकटक बहादुरीसे मुक्ताबिला करनेके बजाय, इस धारणासे कि यह हमारे पूर्व-जन्मका पाप है, उसके सामने कसाईके आगे सिर झुका देनेवाले बकरेकी तरह उसकी शरण जानेकी तैयारी करनेका जिसका धर्म है, उस समाजमें इतना

विवेक किसे सूझ सकता है ? इस विवेकभ्रष्टताके कारण ही, मनुष्यको मनुष्यकी हैसियतसे ज़िंदा रहने देने लायक भी विचारोंकी उदारता हमारे पास नहीं है। इसलिये बाजीराव^१ जैसे अलौकिक पराक्रमी पुरुषका बड़ा दुःखद अंत हुआ। बाजीरावका मस्तानीसे प्रेम करना उस समयकी नीतिकल्पनाओंको न जँचने-वाली बात थी, यह झूठ नहीं। परंतु परंपरागत नीतिके परे जाकर इस प्रेमके स्वरूपको देखनेका उस समय क्या किसीने भी प्रयत्न किया होगा ? अन्य देशोंमें यह प्रेमकहानी अलौकिक और अद्भुतरम्य काव्यका विषय बन जाती। उसका बड़ा गौरव होता। लेकिन हमारे तत्कालीन कवि राम और कृष्णकी लीलाओंका वर्णन करनेमें और 'जनी निच तें सर्व सोझनी द्यावें'^२ उपदेशके डोझ लोगोंको पिलानेमें निमग्न हो गये थे। उन्हें इस प्रेमकथाकी उत्कटता, वास्तविकता और भव्यता कहाँसे प्रतीत होगी ? जहाँ समाजका कविमन ही इस प्रकार रूढ़िग्रस्त होता है और एक निश्चित लीकमें चक्कर काटा करता है, वहाँ बेचारे जन-मनको दोष देनेमें क्या अर्थ है ?

पहले बाजीरावकी पत्नी हमेशा बीमार रहती थी। ऐसी दशामें मस्तानी जैसी लावण्यवती उसके पराक्रमपर लुब्ध होकर उसके गले पड़ी। मराठाशाहीकी सीमाको ज्वारकी लहरोंकी तरह आगे आगे बढ़ानेवाला, निजामको बात-की-बातमें नाकों चने चबानेवाला, नादिरशाह जैसे ज़ालिमके कलेजेको भी अपनी दहशतसे कँपा देनेवाला यह पराक्रमी पुरुष स्त्री-प्रेमके लिये भूखा हो, तो इसमें अस्वाभाविक क्या था ? राज्यका भारी भार वहन करके श्रान्त हुआ उसका मस्तक प्रेयसीके बाहुपाशमें विश्रांतिकी अपेक्षा कर रहा था। वह कितना भी शूर हो, राजनीतिज्ञ

१ बाजीराव : पहला बाजीराव पेशवा : यह बड़ा पराक्रमी था। मराठोंका स्वराज्य स्थिर और विस्तृत करनेके काममें इसने अपनी उम्र खर्च की। परचक्रके पंजेसे बुंदेल-खंडके छत्रसाल राजाकी मुक्तता की। इसी वक्रत वहांकी मस्तानी नामकी परधर्मीय सुंदर युवती इसपर अनुरक्त हुई। यह उसे लिये पूना आया। पत्नीकी तरह उसे इसने मान लिया। लेकिन तत्कालीन समाजको यह रूढ़िवादी प्रेम मंजूर नहीं हुआ। इस-लिये बाजीराव और मस्तानी ये दोनोंका बार बार छल हुआ। इतिहासमेंकी यह एक बड़ी करुण-रम्य प्रेम-कथा है।

२ 'जन जिसकी निंदा करते हैं, वह सब छोड़ देना चाहिए।'।

हो, देशभक्त हो फिर भी अंतमें मनुष्य ही था ! ठीक इसी बातकी ओर उस समय किसीने ध्यान न दिया । वह देना किसीको संभव ही न था । हमारा व्यक्तिजीवन अंध धर्मकल्पनाओं और रूढ़ नीतिनियमोंसे इतना कसकर बँधा हुआ था कि बाजीराव और मस्तानीके प्रेमकी ओर सहानुभूतिसे देखना तत्कालीन समाजमें निःसंदेह बड़ा पाप माना जाता ।

परंतु उसी ज़मानेमें अन्य देशोंके लोग स्त्री-पुरुष-संबंधकी ओर, और इस तत्त्वकी ओर कि कामतृप्ति जीवनकी आवश्यक माँग है, निडर होकर और बिना चौंके किस तरह देख रहे थे, यह ध्यानमें रखने योग्य है । तुम्हें पत्र लिखते समय मेरे सामने बेंज़ामिन फ्रैंकलिनका आत्म-चरित्र रखा हुआ है । इस पुस्तकमें आत्म-चरित्रके साथ उसके कुछ लेख भी दिये हैं । जिस समय पूनाके ब्राह्मण मस्तानी-प्रकरणको लेकर बाजीरावको जातिसे बहिष्कृत करनेका प्रयत्न कर रहे थे, उसी समय बेंज़ामिन फ्रैंकलिन नामका एक प्रसिद्ध अमेरिकन पुरुष अपने लेखोंके द्वारा लोगोंके सामने कौनसे विचार रख रहा था—यदि यह देखें तो उनका विरोध हृदयमें चुभे बिना नहीं रहता । फ्रैंकलिनने एक तरुण मनुष्यको उपदेशकी हैसियतसे सन १७४५ ईसवीमें एक पत्र लिखा है । उस पत्रका मुख्य मज़मून इस प्रकार है —

‘ प्रिय मित्र, तुमने अपने मनकी बाधाहीन वृत्तिका जो वर्णन किया है, उसका दुनियामें सिर्फ़ एक हलज़ा है । वह है विवाह ! विवाह कर लेनेपर ही तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा । अभी विवाह न करनेके तुमने जो कारण दिये हैं, वे कम-से-कम मुझे तो नहीं जँच रहे हैं । यह कभी न भूलो कि पुरुष निसर्गतः अपूर्ण है । उसकी मृदुता, व्यावहारिकता और सौन्दर्यदृष्टि उसके जीवनमें माधुर्य निर्मित करती है । स्त्रीका जीवन भी पुरुषके बिना इसी प्रकार अधूरा और एकाकी होता है । पुरुषके पराक्रमकी शक्ति और विवेकबुद्धि उसके जीवनमें पूर्णता लाती है । मुझे लगता है कि तुम जैसा अविवाहित तरुण एक दृष्टिसे अधूरा मनुष्य है । कैचीके एक फलकी तरह तुम्हारी स्थिति है । ’

फ्रैंकलिनके पत्रका यहाँतकका मज़मून हमारे यहाँके सनातनी लोगोंको भी पसंद होगा । परंतु उसने इसके आगे जो मज़मून लिखा है उसे सुनकर ज़रूर वे

‘अब्रह्मण्यं’ कहकर कानपर हाथ रख लेंगे ! फ्रैंकलिन आगे कहता है —

‘लेकिन विवाह करनेकी मेरी यह सलाह यदि तुम्हें न जँचती हो, तो मेरी एक सूचनापर ज़रूर विचार करना । वह सूचना यह है कि स्त्रीसुख प्राप्त करनेके लिये तुम तरुणी स्त्रियोंके बदले प्रौढ़ा स्त्रियाँ ही पसंद करते जाओ । मेरी यह सलाह तुम्हें पहले पहल बड़ी अजीब लगेगी । परंतु मैं उसे पूरी तरह सोचकर दे रहा हूँ । प्रौढ़ा स्त्रियोंको व्यवहारज्ञान अधिक होता है । जगके अनुभवसे उनके मन समृद्ध हुए होते हैं । इसके कारण उनके संभाषणमें चातुर्य और मोहकता अधिक पायी जाती है । इसके विपरीत तरुण स्त्रियोंको अपने रूपका बड़ा घमंड होता है । इस अभिमानके कारण ही वे लापरवाहीमें बरताव करती हैं । प्रौढ़ा स्त्री यह जानती है कि मेरे पास हुकमी ताश नहीं है । इसके कारण मौन्दर्यके अभावको वह सौजन्यसे पूरा करती है । बीमारीमें उसके बराबर भावुकतासे दूसरी कोई भी स्त्री रोगीकी सेवा-शुश्रूषा नहीं कर सकेगी । स्त्री जितनी उम्रमें अधिक बड़ी होती है, उतनी ही वह स्वभावसे अधिक अच्छी होती है — यदि हम कहें कि यह एक सर्वसामान्य सिद्धान्त है, तो यह सर्वस्वमें गलत न होगा ! ऐसी स्त्रियोंसे मित्रता करनेमें विशेष पाप भी नहीं होता । कुमारीको अपने प्रेम-पाशमें फँसा देनेसे कभी कभी उसके जीवनका सत्यानाश हो जानेकी संभावना होती है । एकाध बार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उसे अपनी सारी जिंदगी रोते और कुदृते काटनी पड़ जाती है । ऐसे संबंधके कारण अपने मनमें पश्चात्तापके काँटे चुभते रहते हैं । प्रौढ़ा स्त्रीके विषयमें ऐसा कभी भी नहीं होता । इसके विपरीत उसकी कृतज्ञता ही हमारे पल्ले पड़ती हैं ।’

फ्रैंकलिनके द्वारा एक तरुणको दिये गये उपदेशका अधिक सभ्यताका भाग मैंने यहाँ उद्धृत किया है । विवाह-ब्राह्म संबंधके विषयमें तरुणियोंकी अपेक्षा प्रौढ़ा स्त्रियाँ ही अधिक सुखप्रद क्यों होती हैं, इसके उसने जो और दो-तीन कारण दिये हैं, उनका इस पत्रमें उल्लेख करनेकी भी मुझे हिम्मत नहीं पड़ती । मैं उन्हें सिर्फ संकेतसे सूचित करूँ, फिर भी सारा संस्कृति-रक्षक-मण्डल मुझपर आवेशसे

टूट पड़ेगा। कृष्णराव मराठे^१ मुझे गुण्डा कानूनके अंतर्गत गिरफ्तार करनेके लिये सरकारके पीछे पड़ जायेंगे। यही नहीं, बल्कि स्वयं अपनेको पुरोगामी कहनेवाले अनेक मनुष्य भी कानोंमें अँगुलियों डालकर अपनी भौंहें चढ़ा लेंगे।

इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि फ्रैंकलिन कोई वाहियात आदमी था। वह व्यावहारिक और वास्तविक दृष्टिसे देखता है। पद पदपर प्रत्येक बातपर काव्यका रंग देना उसे पसंद नहीं। निसर्गपर परदा डालकर अथवा उसकी शाब्दिक उपेक्षा करके कोई उसके पाशसे मुक्त नहीं हो जाता। इसके विपरीत नैसर्गिक बातोंको समय असमय छिपाकर रखनेके कारण उन्हें रहस्यका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। और रहस्यके विषयमें आकर्षण होना तो मनुष्यका स्वभाविक धर्म ही है। जीवनमें कामवासनाकी जानबूझकर झूठी प्रशंसा करना जितनी गलत बात है, उतना ही उसे क्षुद्र और धिनौनी मानना भी भूल है। यह दूसरी भूल भारतीय समाज पिछले दो हजार वर्षोंसे करता आ रहा है। सर्वसाधारण समाजके मनपर निवृत्तिका सिक्का बैठ जाय, यह कभी संभव नहीं होता। परंतु उसे वैराग्यका स्वाँग जरूर लाते बनता है! उसी तरहकी कुछ बात इस विषयमें हो गयी है। ऐतिहासिक कालमें राजा लोग सुंदर स्त्रियोंके लिये युद्ध करते थे। उनके यहाँ अपहरण कर लायी हुई स्त्रियोंके रनवास होते थे! साधारण लोग साधारण व्यभिचार किया करते थे। स्त्रियोंके कारण इतिहासका प्रवाह बदल जानेके उदाहरण आपको चाहे जितने मिल जायेंगे। लेकिन यह सब होते हुए भी हमारे यहाँ कोई भी यह कहनेके लिये तैयार न था कि स्त्री-पुरुष-संबंध मानवी जीवनका एक आवश्यक और विचारणीय भाग है।

यह कहा जा सकता है कि इस विषयमें हमारा प्राचीन साहित्य अधिक प्रामाणिक है। लिखते लिखते महाभारतका एक उदाहरण याद आ गया। वही यहाँ दिये देता हूँ। एक बार अर्जुनने धर्मराज और द्रौपदीको भूलसे एकान्तमें देख लिया। इस नियमभंगके प्रायश्चित्त स्वरूप अर्जुनको आगे तेरह वर्षतक तीर्थयात्रा करनी पड़ी। यदि किसी आधुनिक लेखकको अर्जुनकी इस तीर्थयात्राका वर्णन करना होता, तो इस प्रायश्चित्तके कालमें वह कितने विरक्त वृत्तिसे व्यवहार

१ पूनाके एक बड़े दकियानूसी महाशय जो नयी रोशनीपर हमेशा जोशसे आक्रमण किया करते हैं।

करता था और किस तरह ईश्वर-चिंतनके सिवाय उसे कुछ भी न सूझता था, न रुचता था आदि विषयमें उसने मीठी मीठी गप्पें हाँकी होतीं। परंतु महाभारतकारको ऐसी आँखमिचौली संमत न थी। इस तीर्थयात्रामें अर्जुनके अनेक प्रेमप्रकरणोंका उसने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अर्जुनकी इन प्रणयिनियोंमेंसे, उल्लूपीका महाभारतका वर्णन, स्त्री-पुरुषके प्रेम संबंधकी ओर देखनेकी हमारी काव्यमय परंतु कृत्रिम पद्धतिपर, पूर्ण प्रकाश डालनेवाला होनेके कारण, वह जानबूझकर ज्यों का त्यों आगे दे रहा हूँ —

वैशंपायन कहते हैं —

‘राजा, कुरुकुलको कीर्ति-शिखरपर पहुँचानेवाला वह महाबाहु अर्जुन वनरागमन करने लगा, तब वेदवेदांगवेत्ता और ब्रह्मचिंतन करनेवाले ब्राह्मण, भिक्षुक, भगवद्भक्त, सारथी, पुराण कहनेवाले, मधुर वाणीसे देवी-देवताओंके आख्यानोंको सुनानेवाले कथावाचक, ऊर्ध्वरेते ब्रह्मचारी, सन्यासी, इत्यादि श्रमणसंज्ञक तपस्वी — ये सब लोग और दूसरे अनेक मृदुभाषी अनुचर साथमें होनेके कारण, मरुद्गणोंसे परिवेष्टित इंद्रकी तरह वह शोभित होने लगा। मार्गमें उसने कितने ही रमणीय, विचित्र वन, सरोंवर, सरिताएँ व समुद्र, देश व पवित्र तीर्थस्थान देखे। इसके अनंतर उसने गंगाद्वारमें वास्तव्य किया। राजन्, उस स्थलमें उस श्रेष्ठ पांडवने जो अद्भुत कार्य किये, उन्हें सुनिये। उसके आश्रममें सब ब्राह्मणोंने अनेक स्थानोंमें अग्निहोत्र आरंभ किये। उसके लिये सारे तीरपर जगह जगह कुंड बनाये गये थे। और जितेंद्रिय तथा सत्यनिष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा स्नान-संध्या करनेके पश्चात् अग्निप्रबोधन करनेके कारण उनमेंकी अग्नि धक्क उठी थी। ब्राह्मण मंत्रघोषोंके साथ अग्निमें आहुति दे रहे थे और होम समाप्त होनेपर अग्निकी पुष्पोंसे पूजा कर रहे थे। ऐसे समय उस गंगाद्वारका दृश्य अवर्णनीय दीख रहा था। इस तरह वेदों और ब्राह्मणोंके कोलाहलसे भरे हुए उस स्थानमें एक दिन अर्जुन स्नानके लिये गंगामें उतरा; और स्नान और पितृतर्पण करके अग्निकार्य करनेके उद्देश्यसे वह गंगासे बाहर निकल रहा था, तभी उसका रूप देखकर मदनपीड़ासे अत्यंत व्याकुल हुई उल्लूपी नामक नाग-कन्या उसे एकाएक पानीमें खींचकर

पाताल-लोकमें ले गयी। सौभाग्यसे वहाँ कौरव्य नामक नागके घर उत्तम रीतिसे पूजी हुई अग्नि अनायास ही उसे मिल गयी। तब उस अग्निमें ही अर्जुनने निःशंकासे आहुति देकर अपना अग्निकार्य सम्पन्न किया, और इस तरह हुताशन संतुष्ट हुआ। तदनंतर उस उन्नीपीकी ओर मुड़कर और मन-ही-मन हँसकर वह उससे बोला,— ‘हे कल्याणी, यह साहस तुमने क्यों किया? हे सुभगा, यह देश किसका है? तुम कौन और किसकी कन्या हो? सुंदरी, यह सब मुझे बताओ।’

उन्नीपी बोली — ऐरावत कुलोत्पन्न कौरव्य नामक नागकी मैं कन्या हूँ। मेरा नाम उन्नीपी है। तुम जब स्नान करनेके लिये गंगामें उतरे, तब तुम्हें देखते ही मैं मदनाकुल हो गयी। हे निष्पाप, मुझे अभीतक दूसरे पुरुषका स्पर्श नहीं हुआ है, और तुम्हारे लिये यह मदन मुझे पीड़ा दे रहा है! इसलिये तुम अपनी देह मेरे काममें लगाकर मुझे आज संतुष्ट करो।

अर्जुनने उत्तर दिया — तुम कहती हो वह ठीक है, परंतु मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मैं धर्मराजके आधीन हूँ। उन्होंने बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य पालन करनेकी मुझे आज्ञा दी है। हे जलचारिणी नागकन्या, सच पूछा जाय तो तुम जैसी सुंदरीको संतुष्ट करनेके लिये मैं तैयार हूँ। परंतु मैं धर्माज्ञाको स्वीकार कर चुका हूँ और वह मैं भंग न कर सकूँगा। क्योंकि मैं आजतक किसी भी कारणके लिये अनृत नहीं बोला हूँ। तस्मात्, हे नागकन्या, तुम्हारी इच्छा तो पूरी हो जाये, और मुझपर असत्यताका दोष त्यागकर मेरी धर्महानि न हो, ऐसी कोई युक्ति निकालो!

उन्नीपीने कहा — हे पांडुपुत्र, तुम पृथ्वीपर्यटन क्यों कर रहे हो, ज्येष्ठ भ्राताने तुम्हारे गलेमें ब्रह्मचर्य क्यों बाँध दिया है, यह सब मैं जानती हूँ। तुम लोगोंका आपसमें यह करार है कि द्रौपदीके साथ एक बंधु जब एकान्तमें हो, तब वहाँ दूसरेको भूलकर भी प्रवेश न करना चाहिए। अगर यह नियम किसीने भंग किया, तो उसे बारह वर्ष ब्रह्मचर्यसे वनमें बिताने होंगे। परंतु यह ब्रह्मचर्य केवल द्रौपदीके संबंधमें है। क्योंकि उसकी ओर असमय दृष्टि डालनेके लिये बारह वर्षतक उसका उपभोग अपराधकर्ताको न मिले, यही उस करारका प्रयोजन है। तस्मात्, इस ब्रह्मचर्यका पालन द्रौपदीतक ही सीमित है। यह स्पष्ट है कि वह अन्य

स्त्रियोंके संबंधमें नहीं है। इसलिये मुझे अंगीकार करनेसे तुम्हारा व्रत भंग नहीं होता, यह सिद्ध हो गया। साथ ही, हे कमलनयन अर्जुन, मैं पूर्णरूपसे मदनार्त हो गयी हूँ, और आर्तका परित्राण करना राजधर्म ही है। इसलिये, इस दृष्टिसे देखते हुए मदनपीड़ासे मेरी रक्षामें तुम अधर्मके भागी नहीं होते। हे अर्जुन, यदि तुम्हें यह लगता हो कि इस कर्मसे थोड़ासा भी अधर्म तुम्हारे पल्ले पड़ता है, तो मेरा मनोगत पूर्ण करके मुझे जीवित रखनेके पुण्यसे वह दोष निवृत्त हो जायेगा। पार्थ, तुम्हारे प्रति मेरी अनन्य भक्ति है; और भक्तकी उपेक्षा न करनी चाहिए, यह सज्जनोंका मत है। अतएव पार्थ, तुम इस दासीको स्वीकार करो। यदि यह न करोगे, तो सचमुच मैं जीवित न रहूँगी! हे महाबाहु, तुम्हारी यह ख्याति है कि दीन और अनाथोंकी तुम सदा रक्षा करते हो। फिर मेरे लिये तुमने यह स्वीचातानी क्यों मचा रखी है? अरे, मेरे प्राणोंकी रक्षा करके प्राणदान देनेका अनुपम पुण्य तुम प्राप्त कर लो। हे पुरुषोत्तम, मैं आज तुम्हारी शरण आयी हूँ, मदनपीड़ासे अत्यंत व्याकुल हो जानेके कारण दहाड़ मारकर रो रही हूँ — इधर ध्यान दो। मैं क्या करूँ? तुमपर दृष्टि पड़ते ही मेरे शरीरमें इस मदनने जैसे आग लगा दी है और इसी लिये मैं तुमसे इतनी अनुनय विनय कर रही हूँ! तस्मात्, कृपालु होकर तुम अपनी देह मेरे काममें लगाकर मेरी इच्छा पूर्ण करो!’

वैशंपायन कहते हैं —

‘इस तरह उस नागकन्याने आग्रह किया, तब यह देखकर कि उसका कहना धर्म-संगत है, वह प्रतापी अर्जुन उस रात उसीके महलमें रहा और उसने नागकन्याकी इच्छानुसार काम किया; और सूर्योदय होते ही वहाँसे उठकर पुनः गंगाद्वार आया। फिर उसे वहाँ छोड़कर वह साध्वी उलूपी अपने घर गयी। जानेसे पहले उसने अर्जुनको वरदान दिया — ‘तुम जलमें सर्वत्र विजयी होगे, सर्व जलन्तर तुम्हारे वशमें रहेंगे!’”

मुझे रह रहकर इस बातका आश्चर्य होता रहता है कि हमारे भारतीय फिल्म निर्माता उलूपीकी इस शृंगाररसपरिप्लुत कथाको अभीतक परदेपर क्यों नहीं लाये? अर्घ्य-दान करनेके लिये जलमें खड़े हुए अर्जुनको एक लावण्यवति नाग-

कन्या खींचकर पाताल ले जाती है। चित्रकी दृष्टिसे कितना कलात्मक भाग है यह! फोटोग्राफीकी दृष्टिसे इस तरहका चित्र 'Bathing Beauty' के सहज ही कान काट लेगा! पाताललोकके भव्य दृश्य, रत्नजटित सुंदर मंदिर, सैंकड़ों अर्धावृत नागकन्याओंके आकर्षक नृत्य इत्यादि मालमसाला इस कथामें भरपूर डाला जा सकता है। देखो भई, यह कथा कहीं चल सकती है क्या? वह चल जाय तो परदेपर कम-से-कम मेरा नाम भी चमक जायेगा — 'मूल कल्पना डॉक्टर सानेकी।'

लेकिन मैं इस कथाकी ओर हमेशा ही अलग दृष्टिसे देखता आया हूँ। रामायण-कालमें आर्य लोग इस देशमें स्थिर नहीं हुए थे। स्थिरता प्राप्त करनेकी कोशिशमें लगा हुआ समाज सहजहीमें आदर्शवादी बनता है। प्रत्येक भावनाका उज्ज्वल स्वरूप उसे आकृष्ट करता है। महाकवि वाल्मीकिने रामायणमें इन आदर्शोंके चित्र खींचे हैं। पिताका वचन भंग न हो, इसलिये चौदह वर्षके वनवासको स्वीकार करनेवाला राम, सिंहासनपर बैठनेका सुवर्ण अवसर हाथमें आते हुए भी सन्यस्त वृत्तिसे रामकी पादुकाओंको पूजता रहनेवाला भरत, पत्नी-प्रेमकी ओर पीठ फेरकर भाईकी सेवाके लिये अरण्यवासके कष्टोंको प्रसन्नमुखसे स्वीकार करनेवाला लक्ष्मण, लोकानुरंजनके लिये प्राणोंमें भी अधिक प्रिय पत्नीका त्याग कर देनेवाला राजा — गुहसे लेकर हनुमानतक आदि कविके द्वारा निर्मित किये हुए सारे छोटे-बड़े स्वभावचित्रोंको देखें, तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे सब ध्येयवादित्वसे निर्मित हुए हैं — यह कहनेके बदले कि मनुष्य कैसा है, वह कैसा होना चाहिए, इसका चित्रण करनेकी प्रेरणा कवि-मनपर अधिक प्रभाव जमा रही है। इसके कारण रामायणमें आदर्शका सौन्दर्य भले ही विपुल हो, पर वास्तविकताकी विविध छटाएँ, मनुष्यस्वभावके अगणित पहलू, जीवनके सारे कोने कोने — ये बातें कविने उसमें नहीं रंगी हैं। इन बातोंका सच्चा दर्शन हमें महाभारतमें ही होता है। वाल्मीकिकी सृष्टि दैवी है, व्यासकी मानवी है। महाभारतको पाँचवाँ वेद माननेकी जो परिपाटी पड़ गयी है, तो यों ही नहीं। व्यासके समय आर्यसमाज सुस्थिर हो गया था। इसके कारण मनुष्यस्वभावके चिरंतन गुणावगुणोंका, विविध वासनाओं तथा भावनाओंका और नैसर्गिक एवं सामाजिक संघर्षोंका जितना वास्तविक उतना ही मार्मिक प्रदर्शन महाभारतमें प्रकट हुआ है। 'सईकी नोकपर रहे उतनी भी धरती मैं पांडवोंको न दूँगा' कहनेवाला अहंकारी दुर्योधन — पतिव्रता होकर भी,

एक क्षणके लिये भी क्यों न हो, कर्णके विषयमें मनमें अभिलाषा रखनेवाली द्रौपदी —

छोड़ो भी ! शायद इस लेखसे तुम कहीं यह न समझ बैठो कि डॉक्टरी न चलनेके कारण मैं आजकल पुराणोंके अन्वेषणमें लगा गया हूँ ! और इस डरसे कि अब किसी अक्षर मिटे हुए शिलालेखका चरित्र शुरू होगा, शायद तुम मेरे पत्रको आगे पढ़ना बंद ही कर दो । इसलिये यह पुराण-प्रकरण यहीं समाप्त करता हूँ ।

मेरा मुख्य अभिप्राय उलूपीकी कथासे प्राचीन कालके स्त्री-पुरुष संबंधपर पड़नेवाला प्रकाश है । भूलसे हुए नियमभंगका प्रायश्चित्त लेनेके लिये अर्जुन तीर्थाटनके लिये रवाना होता है । उसे अच्छी तरह मालूम है कि ये बारह वर्ष मुझे सन्यस्त वृत्तिसे व्यतीत करना चाहिए । परंतु यह देखने ही कि उलूपी जैसी सुंदर नागकन्या मुझपर आसक्त हो गयी है, इस व्रतस्थ वीरका मन डगमगाने लगता है । वह उलूपीसे कहता है — ‘ धर्मराजकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य है । उन्होंने मुझसे बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेके लिये कहा है । लेकिन सच पूछा जाय तो तुम जैसी सुंदरीको संतुष्ट करनेके लिये मैं तैयार हूँ । ’

अर्जुनके इस दिखाऊ वैराग्यको देखकर उसके मनकी चिंताको दूर करनेके लिये उलूपी जो दलीलें पेश करती है, वे भी बड़ी मज्जेदार हैं । वह कहती है — ‘ मैं पूर्णतया मदनार्त हो गयी हूँ और आर्तका परिचाण करना राजधर्म ही है । पार्थ, तुम्हारे प्रति मेरी अनन्य भक्ति है । और सज्जनोंका मत है कि भक्तिकी उपेक्षा न करनी चाहिए । तुम यदि इस दासीको अंगीकार न करोगे तो सचमुच मैं प्राण त्याग दूँगी । कम-से-कम मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिये तो मेरी इच्छा पूर्ण करो ! ’

उसकी इन सब दलीलोंको देखकर मनमें यह विचार आये बिना नहीं रहता कि यदि आधुनिक कालमें यह नागकन्या पैदा हुई होती, तो एक ऊँचे दर्जेकी फौजदारी वकील बन जाती । अर्जुनका मन यदि उसके आधीन होता, तो इस शाब्दिक दलीलमें फँसकर वह उलूपीको कभी भी स्वीकार न करता । परंतु उसने जो उलूपीकी बात मान ली वह इसलिये कि उसपर उलूपीके रूपका जादू काम कर गया था । वह तो मौकैकी तलाशमें ही बैठा हुआ था । उलूपीका वह भाषण सुनते ही उसका विश्वास हो गया कि वह धर्मानुकूल है और वह उस रातको उसके महलमें रह गया । इस प्रकरणका उपसंहार करते समय मदनबाधासे व्याकुल होकर

अर्जुनके गले पड़नेवाली उलूपीको वैशंपायनने 'साध्वी' विशेषण लगाया है, यह बात भी आप न भूलना।

इतने विस्तारसे मैं इस कथाका विवेचन कर रहा हूँ, इसका कारण एक ही है। और वह यह है कि हमें जीवनकी ओर—खासकर साधारण मनुष्यके जीवनकी ओर—आदर्शके बजाय वास्तविक दृष्टिसे देखना आवश्यक है। हमारी भारतीय संस्कृतिने इस आवश्यकताको कभी भी ध्यानमें नहीं लिया। वह यह भूल गयी कि आदर्श आकाशका चन्द्रमा होता है, उसका प्रकाश पृथ्वीको मनोहारी रूप देता है, परंतु वह चन्द्रमा पृथ्वीके मनुष्योंको हाथमें कभी भी नहीं आता। समाजमें आदर्शोंकी जरूरत अवश्य होती है। वे न हों, फिर भी कवियों, संतों, सुधारकों और समाज-संविद्योको उन्हें निर्मित करके जनमनके सामने रखना पड़ता है। परंतु उसी समय उन्हें यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि आदर्शोंका उपयोग सामान्य मनुष्यके मनपर सुसंस्कार अंकित कर देनेतक ही होता है। परंतु हमने इहलोकके बजाय परलोककी ओर नजर लगाये सदियों गुज़ार दीं। हमने अपनी यह थोथी धारणा बना ली कि प्रवृत्तिकी धूपमें दौड़नेके बजाय निवृत्तिकी छायामें आरामसे बैठे रहनेमें जीवनकी सफलता है। जीवन विषयक इस एकतरफा तत्त्वज्ञानके कड़ुए फल आज हम प्रत्येक क्षेत्रमें चख रहे हैं। समयके साथ दौड़नेकी शक्ति हमने कभी भी प्राप्त न की। 'जो रुका, वह खत्म हुआ!'—उक्तिका विचार करनेके बदले हमने अपनी बुद्धि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के वितंडवादमें थका डाली। पुराने ध्येयोंको हम कभी प्रामाणिकतासे अपने आचरणमें न लाये। लेकिन दोंगीकी तरह उनकी पूजा करनेमें हमारी सारी ज़िदगी कट गयी। कपटी और दुर्बल मनुष्यमें अपने दोंग और दुर्बलताकी जानबूझकर झूठी प्रशंसा करनेकी इच्छा होती है। समाजका भी वही हो गया है। जिस पवित्रताका कभी पालन नहीं होता, जो नीतिमूल्य कभी आचरणमें नहीं लाये जाते, जो ध्येय निसर्ग और प्रचलित जीवनक्रमसे सुसंगत नहीं हैं—उनकी अंध प्रशंसा करनेमें आज भी हमें बड़ा आनंद आता है! हमारे दैनिक जीवन-क्रम और हमारा जीवनविषयक तत्त्वज्ञान दोनोंका कर्मच करीब कोई संबंध ही नहीं रह गया है।

बंगालके घोर अकालसे लाखों लोगोंकी राक्षसी हत्याके लिये कारणीभूत हुए लोभी नराधम हररोज़ भगवानकी पूजा कर रहे थे, घरके प्रत्येक मंगल कार्यके

लिये धर्मशास्त्रके अनुसार मुहूर्त देख रहे थे, ब्राह्मणोंको दान दे रहे थे, नियमसे गीता पढ़ रहे हैं और इस विश्वाससे कि स्वर्गमें, इन्द्रके दरबारमें अपने लिये पहली पैंक्तिमें एक खास कुर्सी रख दी गयी है, श्मशानवत् हो गये शहरमें सिर्फ अपने ही लिये नंदनवन निर्मित कर रहे थे। चावलके चार दानोंके लिये आक्रंदन करनेवाले निष्पाप बच्चोंकी कारुण्य-भरी चीखोंसे उनकी नींद कभी नहीं टूटी। पेटकी आगको बुझानेके लिये चाँदीके चद टुकड़ोंपर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने शीलको बेचनेके लिये मजबूर होनेवाली अल्हड़ ग्रामीण तरुणियोंकी हृदयविदारक वंदना देखकर, उनके निर्वृण मन कभी भी बेचैन न हुए। कलकत्तेकी सड़कांपर पड़ी सड़ रही लाशोंकी दुर्गंधसे उनकी सुकुमार नाकोंको कभी भी त्रास न हुआ ! वह होता भी कैसे ? उनके विशाल भवनोंके आमपाम लगे बगीचोंमें सुगंधित फूलोंकी क्यारियों खिल रही थीं और उनकी अलमारियोंमें रखी सुन्दर बोटलोंमेंसे भिन्न भिन्न प्रकारके द्रव्योंकी मीठी मीठी खुशबू उनके घरोंमें भर रही थी। अपने हजारों अमागे देशभाइयोंकी लाशोंकी गीदड़ और कुत्ते फाड़कर खा रहे हैं, अनेक बालकोंके पूरी तरह प्राण निकलनेसे पहले ही गिद्ध उनकी आँखोंको नाच रहे हैं — यह भयानक दृश्य उनकी आँखोंके सामने खड़ा होकर उन्हें कभी भी डग न सका। उनकी आँखोंके सामने क्षण-क्षणमें जॉर्जेटकी महीन और नर्म माड़ियाँ पहनी हुई और विविध भाँतिसे सजी हुई उनकी सुकुमार ललनाएँ भ्रमर-की तरह गुनगुना रही थीं। उनके अधिकारकी शानदार 'मक्युरा' और 'ओपेल' कारें उनकी सेवामें क्षण क्षणमें हाज़िर हो रही थीं। दोपहरको भोजनके समय दरवाज़ेमें खड़े होकर यह देखना कि कोई अतिथि तो नहीं आ रहा है, और यदि ऐसा कोई आ जावे तो उसे सम्मानपूर्वक अपनी पैंक्तिमें घेठाकर तदनंतर गृहस्वामी भोजन ग्रहण करें — यह जिस संस्कृतिका नियम रहा है, उसी संस्कृतिमें पैदा हुए बीसवीं शताब्दिके मुशिक्षित और सुसपन्न मनुष्योंने अपने सामने हज़ारों निरपराध मनुष्योंको तड़पते हुए, हाथ पाँव पटकते हुए मौतके मुँहमें जाते देखा। यह क्यों हुआ ? इसका प्रमुख कारण है हमारा परंपरागत जीवन विषयक दृष्टिकोन।

यह दृष्टिकोन सभी बातोंमें दुबला, अंधा और इसलिये भाग्यवादी हो गया है। वास्तववादकी ओर सुभीतसे पीठ फेर लेनेमें, जो उग्र है उसे खुली आँखोंसे देखनेके बदले आँखें बंद करके उसको सौम्य मानकर आत्मवंचना कर लेनेमें, जो कटु है उसे धीरजके साथ चख लेनेके बजाय, उसे न चखनेमें ही हिम्मत है यह

माननेमें, जो नैसर्गिक है उसको प्रामाणिकतासे स्वीकार करनेके बदले, उसकी निंदा करके अपने अज्ञान और अतृप्तिको छिपानेमें किंवा गुप्त रीतिसे उसके उपभोगका आनंद लूटकर एक ढोंगीकी तरह जीवन व्यतीत करनेमें, हमारे समाजको आज भी संतोष होता है ! इस ढोंगको आप जैसे कवियों और लेखकोंने बहुत बड़ा सह-योग दिया है, ऐसा मेरा मत है । उदाहरणके लिये फिरसे एक पौराणिक कथाका उल्लेख करता हूँ । यह पढ़कर आप मन-ही-मन हँसकर कहेंगे कि क्या डॉक्टरके शरीरमें आज किसी कथावाचकका संचार हो गया है । मैं इस कथाकी तरह ऐतिहासिक अथवा सामाजिक अनेक बातें कह सकता हूँ । यह बात नहीं कि न कह सकता होऊँ; परंतु इस कथासे आपका भी संबंध आ जानेके कारण, मैं उसका जानबूझकर उल्लेख कर रहा हूँ ।

सुभद्राहरणकी कथापर प्राचीन कवियों द्वारा लिखे गये आख्यानोंको हम छोड़ दें । लेकिन किलोस्कर^१ के 'सौभद्र' नाटकसे लेकर आपकी 'सुभद्रा' फिल्मतक सब लेखकोंने इस कथावस्तुपर मधुर प्रणयरम्यताका मुलम्मा चढ़ाया है । अर्जुन और सुभद्रा बचपनसे एक दूसरेसे प्यार करते थे, वे दोनों जैसे एक दूसरेके लिये ही पैदा हुए थे, उनका प्रेम अत्यन्त सात्विक और अतिशय उदात्त था, इत्यादि इत्यादि बातें आप सब लोगोंने गृहीत कर ली हैं । परंतु महाभारत पढ़नेपर यह साफ़ दिखाई देता है कि आप सब लोगोंकी मीठी मीठी कल्पनाएँ कवियोंकी कोरी उड़ानें हैं । मूल कथा यह है कि बारह वर्ष तीर्थयात्रा करके और उस तीर्थयात्रामें उलूपीके साथ एक दिन और चित्रांगदाके साथ तीन साल विलासमें बिताकर अर्जुन आगे चलकर द्वारका पहुँचा । वह वहाँ पहुँचा तब रवैतक पर्वतपर एक महोत्सव आरंभ हो गया था । इस उत्सवमें सुभद्रा प्रथम बार अर्जुनको दिखाई दी । इसके आगेका महाभारतका वर्णन इस तरह है —

‘उसे देखते ही अर्जुनके मनमें मदनका प्रादुर्भाव हुआ और वह उसकी ओर टकटकी लगाये देखता रहा । यह बात कृष्णके ध्यानमें आ गयी

१ किलोस्कर : आधुनिक मराठा नाटकके जनक । इनका 'सौभद्र' नाटक बहुत लोकप्रिय है । त्रिदंडी सन्यास लेकर अर्जुनने सुभद्राका हरण कैसे किया यह कथाभाग इस नाटकमें है ।

और वह अर्जुनसे हँसते हँसते बोला, - 'पार्थ, वनवास करनेवालोंका मन कामसे इतना व्याप्त हो जावे, यह बड़ा आश्चर्य है। यह सारणकी भगिनी - मेरी बहन सुभद्रा न? यह पिताजीकी अत्यंत लाड़ली है। इसपर यदि तुम्हारा मन जाता हो, तो मैं स्वयं इस विषयमें पिताजीसे बात छेड़ूँगा।'

मदनपीड़ित अर्जुन सुभद्राको स्वीकार करनेके लिये बिलकुल तैयार था ही।

परन्तु कृष्ण उससे कहता है, - 'अर्जुन, क्षत्रियोंको स्वयंवर विधिसे विवाह करना चाहिए, यह उत्तम सिद्धान्त है। परन्तु स्त्री स्वभावतः चंचला होनेके कारण वैसा करनेसे हम सफल होंगे ही, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। बलात् स्त्रीको हरण करे, यह भी क्षत्रियके लिये प्रशंसनीय है। धर्मशास्त्र कहते हैं कि शूरोको इसी प्रकार विवाह करना चाहिए। इसलिये अर्जुन, तुम मेरी बहनको बलात भगा ले जाओ, क्योंकि स्वयंवर करनेसे कौन जाने वह किसके गलेमें माला पहना दे?' '

जब हम यह देखते हैं कि कवियोंकी उलट-पुलटके कारण, इस कथाको रगते समय अपनी गोंठका मसाला मिला देनेके कारण, और काव्यसंकेतकी बंधार देनेसे उसका स्वरूप कितना बदल गया है, तब हमें लगने लगता है कि कविके समान झूठे लोग समूची दुनियामें और कहीं नहीं होंगे। तुम तो जानते होगे कि प्लेटो ने कवियोंको अपने मुल्कसे देशनिकाला देनेका निश्चय किया था। उसका कारण कवियोंका इस प्रकारका काव्यविलास ही होगा! कलाकी दृष्टिसे लेखकको मूल कथामें परिवर्तन करना अपरिहार्य होता है और मैं स्वीकार करता हूँ कि ऐसे परिवर्तनकी ओर पाठकको रसिकताकी दृष्टिसे देखना चाहिए। परन्तु स्त्री-पुरुषोंके प्रेमका चित्रण करते समय हमारे कविगण क्वचित् प्रतीत होनेवाले आत्मिक भागोपर ही समय असमय जोर देते हैं! प्रीति जितनी आत्मिक उतनी ही शारीरिक होती है, यह वे सुभीतेके साथ भूल जाते हैं। परंपरागत संकेतों और समाजके अंध निषेधका उन्हें बहुधा भय लगता होगा! परन्तु इसके कारण प्रीतिका सच्चा चित्रण करके उसकी बिकट समस्याओंपर प्रकाश डालना और यह दिखाना कि मानव-संस्कारोंके अन्तर्गत, गूढ़,

उदात्त, विकृत आदि जो अलग अलग भाग होते हैं, उनके प्रीतिसे होनेवाले विविध संघर्षों से ही जीवन के अनंत छोटे-बड़े सुख-दुःख निर्मित होते हैं, उनके लिये असंभव हो जाता है। उनके संकेतनिष्ठ साहित्यसे पाठकों की ऊपरी भावनाएँ भले ही संतुष्ट हो जाती हैं; पर जीवन-मूल्यों का यथार्थ ज्ञान करा देने का काम उनकी प्रेमकहानियों द्वारा बहुधा पूरा नहीं होता।

‘जल्लेला मोहर’ जब मैंने पहली बार ही पढ़ा, तब मुझे यह दिखाई दिया कि आप इस घरेलू बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हैं। सर्वसाधारण पाठकों के मन में शृंगार-विषयक सुख आसक्ति स्वभाव से ही होती है। उसे गुदगुदाना कोई बड़ी कुशलता का काम नहीं है। सुदौल शारीरिक वर्णन से, सांकेतिक नीति की मर्यादों में जो फिट हो सकें ऐसे चुंबन और आलिंगनों के सूक्ष्म उल्लेखों से और सहवास के कारण शृंगारपोषक लगने वाले काव्यमय वातावरण से पाठकों के मन की प्रेमभावना को गुदगुदाने का काम बहुत से लेखक करते रहते हैं। परंतु संकेतों की पकड़ से मुक्त होने की हिम्मत न होने के कारण ही, अथवा सत्य कहने का साहस करने पर हमारी लोकप्रियता जाती रहेगी, इस भय के कारण ही, उनकी नायक-नायिकाएँ एक ओर शारीरिक मिलन के लिये भले ही छूट पड़ती हैं, फिर भी दूसरी ओर वे ऐसा रोव लाती हैं कि प्रेम के उदात्त, उज्ज्वल और उत्कट स्वरूप का उन्हें जैसे पद पद पर साक्षात्कार हो रहा है। विवाहपूर्व के प्रणय में ही नहीं, बल्कि विवाह के बाद के जीवन में भी स्त्री-पुरुषों के बीच का शारीरिक आकर्षण एक अत्यंत महत्त्व की बात है इस आकर्षण के स्वरूप को प्रामाणिकता से समझ लेने का प्रयत्न न करने के कारण लोगों युगल हमेशा दुःखी होते हैं। ‘भाइयो, संयम का पालन करो, ब्रह्मचर्य सम्हालो’ अथवा ‘खाओ, पिओ, मजा उड़ाओ। जीवन चंद दिन की कहानी है’ — ये दोनों घोषणाएँ जीवन का अज्ञान ही दर्शाती हैं।

प्रेम केवल काव्य नहीं; वह विज्ञान भी है — इस कटु सत्य को ‘जल्लेला मोहर’ में प्रतिपादित करने का आपने जो प्रयत्न किया है, वह बहुतो को अच्छा नहीं लगा, यह मैं जानता हूँ। लेकिन पाठकों की रुचि-अरुचि के कारण, प्रत्येक पुस्तक के बारे में भिन्न भिन्न हो सकते हैं। इस उपन्यास के बारे में आपके पास आये पत्रों में कुछ चुने हुए पत्र आपने मेरे पास भेज दिये हैं। उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। उन पत्रों से मुझे ऐसा लगता है कि जिन लोगों के लिये आपने यह उपन्यास लिखा है उन्हें वह पसंद आया। सारे प्रौढ़ पत्रलेखक आपके साथ हैं। आपको यदि

किसी सत्रह-अठारह वर्षकी युवतीने यह लिखा कि 'तुम्हारे उपन्यासोंमें सिर्फ 'जल्लेला मोहर' मुझे अच्छा नहीं लगा। बाकीके सब उपन्यास मुझे पसंद हैं', तो वह आपको दिया हुआ एक प्रकारका मर्टिफिकेट ही है। आपकी जगह यदि मैं होता तो उस लड़कीको सीधा यह उत्तर भेज देता - 'कुमारीजी, चाकू और कैची जिस तरह छोटे बच्चोंके खेलौने नहीं हैं, उसी तरह ऐमे उपन्यास अलहड़ लड़कों और लड़कियोंका मनोरंजन करनेवाली पुस्तकें नहीं हैं। किसी कथाका काव्यसौन्दर्य समझमें आ जाना अलग बात है और उसके जीवनसत्योंका ज्ञान हो जाना अलग बात है। तीस-पैंतीस वर्ष पहले जब मैं कॉलेजमें था, तब फर्स्ट इयरके संस्कृतके कोर्समें मुझे शाकुंतल पढ़ना पड़ा। उसके चौथे अंकको पढ़ते समय मुझे कालिदासकी सुंदर कल्पनाएँ बड़ी अच्छी लगीं। मैं उनकी सगहना करने लगा। लेकिन पतिके घर जानेके लिये खाना हुई शकुंतलाका दुःख देखकर मेरी आँखोंमें उस समय आँसू नहीं आये। परंतु पिछले साल मेरी बेटीकी शादी हुई। कन्यादान करते समय मैं बड़े आनंदमें था। उस समय उत्सवका उन्माद छाया हुआ था मेरी आँखोंपर ! परंतु जब बरात खाना हुई और मेरी लड़कीने ससुराल जानेसे पहले मेरे चरण छूए, तब मैं एकदम रो पड़ा। मैंने उसे हृदयसे लगा लिया और मेरी आँसुओंकी धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। दूसरे दिन मुझे शाकुंतलकी याद हो आयी। जानबूझकर वह पुस्तक कहींसे प्राप्त की और उसका चौथा अंक फिरसे पढ़ा। बहुत दिनोंसे संस्कृत पढ़नेका अभ्यास न होनेके कारण कहीं कहीं मैं अटका-सा। यह बात नहीं कि न अटका होऊँ। परंतु उसे पढ़ते समय कॉलेजमें न चखे हुए एक नये अपूर्व रसका स्वाद मुझे मिला। कण्व, शकुंतला, उसकी सखियाँ, गौतमी, यही नहीं बल्कि शकुंतलाकी लाइली हरिणी और प्यारी नवमल्लिका - इन सबके विरहदुःखसे मैं एकरस हो गया। 'बाबा, फिर कब मुझे इस तपोवनके दर्शन होंगे ?' - शकुंतलाके इस वाक्यसे तो मेरी पलकें गीली हो गयीं। सच यही है कि अनुभूतिके बिना काव्य ठीक तरहसे समझमें नहीं आता ! 'जल्लेला मोहर' उपन्यासके बारेमें थोड़ा-बहुत इसी तरह कहा जा सकता है। आज तुम्हें वह पसंद न होना ही स्वाभाविक है। किंतु कल जब तुम तीस-चालीसको पार कर लोगी, तब इस उपन्यासका मर्म तुम्हारी समझमें आ जायेगा और वह शायद तुम्हें अच्छा भी लगने लगेगा ! कौन कह सकता है कि न लगेगा ?'

कला, साहित्य इत्यादिकी दृष्टिसे इस उपन्यासका मूल्यांकन करनेकी योग्यता मुझमें नहीं। वह काम मैं आपके आलोचकोंपर छोड़ देता हूँ। लेकिन जीवनके एक आत्मिक परंतु नाजुक और वास्तविकतासे अत्यन्त निकटका संबंध होते हुए भी जानबूझकर उपेक्षित विषयपर, समचित्तसे अपने विचार प्रकट करनेका आपने इस उपन्यासमें जो प्रयत्न किया है, वह मुझ जैसे प्रौढ़ पाठकोंको निःसंदेह महत्त्वका लगता है। ऐसे अनेक उपेक्षित विषयोंको, इस भयसे कि लोग क्या कहेंगे, हमारे कलाकार बहुधा हाथ नहीं लगाते। लेकिन मुझे लगता है कि कलाकार लोगोंका गुलाम नहीं है। वह स्वतंत्र है। वह सत्यका साथी है, स्वयं अपनी आत्माका प्रामाणिक साक्षी है। यदि वह लोगोंकी धुनकी तालपर नाचने लगे, तो उसकी कलाका अधःपतन हो जाता है। धीरे धीरे, जीवनकी ओर भेदक और प्रामाणिक दृष्टिसे देखनेकी उसकी शक्ति ही लुप्त हो जाती है। लोगोंकी अंध रुचि-अरुचि, उनकी संकुचित कल्पनाओं और आकांक्षाओं, अज्ञानके कारण उन्हें पसंद होने-वाले अर्ध-सत्यों आदिकी, जाने-अनजाने वह तोतारटन्त करने लगता है। मानवी जीवनका श्रेष्ठ मार्गदर्शक, ऐसा जो उसका स्वरूप है, वह सहज ही लुप्त हो जाता है। लोकाराधन कलाका अभिशाप ३।

शरीर और आत्माके पारस्परिक संबंधके विषयकी, हमारे साहित्यमें आजतक उपेक्षा की गयी है। समाजके अधिकांश लोग शारीरिक प्रेरणाओंको ही जीवन समझते हैं और वासनओंकी तृप्तिमें ही आनंद मानते हैं। सात परदोंकी ओटमें छिपी हुई अपनी आत्माके दर्शन करनेकी कोशिश, उनमेंसे इक्के-दुक्कोंसे ही हो सकती है। परंतु उनकी बुद्धिकी उड़ान परंपरागत कल्पनाओंकी तोतारटन्त करनेके परे न जानेके कारण, वे हमेशा तावसे यही कहते रहते हैं कि शरीरकी अपेक्षा आत्मा बहुत श्रेष्ठ है। हमारे पुराने निवृत्तिपर तत्त्वज्ञानसे और गड़बड़ीकी पारमार्थिक कल्पनाओंसे इस विचार-सरणीका उद्गम हुआ है, यह स्पष्ट है। परंतु शरीरकी अपेक्षा आत्माको बड़ा माननेवाले ये असंख्य लोग उस आत्माके विकासके लिये कितने कष्ट उठाते हैं? इसके विपरीत जिस शरीरकी वे निंदा करते हैं, उसीके वे गुलाम होते हैं।

एक दंत-कथा है। कहते हैं रामदास स्वामीको खीर बड़ी अच्छी लगती थी! इस विचारसे कि जीभकी यह आसक्ति जाती रहे, एक दिन उन्होंने वमन होतेतक खीर खायी। इस वमनकी रामबाण दवासे खीरके प्रति स्वामीजीका अमर्यादित

प्रेम एकदम जाता रहा, ऐसा इस दंतकथामें वर्णन है। लेकिन यह कल्पना कि केवल उपभोगके अतिरेकसे मनुष्यके मनमें किसी चीज़के लिये विरक्ति उत्पन्न होती है, कितनी ग़लत है, यह महाभारतका ययाति राजाका चरित्र ही बता रहा है। इस दंतकथाका मर्म मेरी दृष्टिसे दूसरा ही है। इतने वैराग्यशाली रामदास स्वामी ! महाराष्ट्रको आनंदभूमि बनानेके अपने कार्यमें कोई बाधा न आवे, इस लिये पैरोंमें विवाहकी बेड़ी पड़नेसे पहले ही वे विवाह-वेदीसे भाग गये ! लेकिन ऐसे विरक्त व्यक्तिसे भी खीरका मोह किसी भी तरह संवरण करते न बना। यही इस दंतकथाका सार है। समर्थ-भक्त मेरे इस तर्कको विवेकशून्य कहकर संबोधित करेंगे, मुझपर अश्रद्धाकी मुहर लगा देंगे और मुझे नास्तिक कहेंगे, यह मैं जानता हूँ। परंतु क्या रामदास, और क्या तुकाराम, कितने भी बड़े संत हो, मानवी जीवनको उन्नत करनेकी अमोघ सामर्थ्य उनकी वाणीमें हो, फिर भी वे भी मनुष्य ही थे। तुकारामकी पहली पत्नी अकालमें मर गयी थी। इसके बाद उन्होंने दूसरा विवाह किया। यह विवाह उनकी मंगेला गायन पर जिह्वाकी कठोर थी, उसका वह विलक्षण झगड़ा रूप पचाकर तुकारामने उसके साथ गृहस्थी की। उन्हें बाल-बच्चे भी हुए। उनके चरित्रका यह सारा भाग क्या यह सिद्ध नहीं करता कि असाधारण मनुष्योंके जीवनमें भी शरीर-सुखका स्थान होता है, नहीं, वह होना ही चाहिये ?

शरीर मिट्टीसे भरा हुआ साढ़े तीन हाथका बोरा है, शरीर-सुख क्षण-भंगुर है, जगमें यदि कोई सच्चा सुख है तो वह आत्मसुख ही है इत्यादि तोता-रटन्त हमारे देशके त्रिलकुल साधारण मनुष्य भी पीढ़ियोंसे करते आये हैं। परंतु उनमेंसे कितने शरीर-सुखके मोहका संवरण कर सके हैं ? कितनोंके मुँहसे ये प्रामाणिक उद्गार बाहर निकले कि आत्मविकासके लिये — ‘यह देखो मैंने अपना शरीर फेंक दिया है’ ? इह-लोकमें शरीर-सुखको तुच्छ माननेवाली इस तोतारटंतकी परलोकके सुखके विषयकी कल्पना कितनी उच्च होती है वह देखने योग्य है। यही नहीं, बल्कि हमारे समाजमें स्वर्गकी कल्पनाएँ हैं, वे सभी मुझे बड़ी हास्यास्पद मालूम होती हैं। कहते हैं, वहाँ सुंदर सुंदर अप्सराएँ होती हैं। मनुष्य जितना अधिक पुण्यवान होता है, उतनी अधिक ऊँचे दरज़ेकी अप्सरा उसे वहाँ प्राप्त होती है ! यह बात थोड़े ही है कि वहाँकी ये अप्सराएँ कुमारिकाएँ होती हैं ? उर्वशी, मेनका इत्यादि उनमेंकी अनेक प्रमुख सुंदरियोंके अनेक ‘बपलौ’ का

हमारे पुराणकारोंने, जगह जगह भंडाफोड़ किया ही है। इस अप्सरा-प्रकरणका मतलब सिर्फ इतना है, कि स्वर्ग जानेपर पुण्यवान वेद्यागमन करते हैं। जो शरीरसुख इहलोकमें निषिद्ध माना जावे वही स्वर्गमें उपभोग्य और उच्च दर्जेका हो, यह अजीब दलील, सिर्फ रूढ़िके अंधे राज्यमें ही चल सकती है। हमारी प्रचलित धार्मिक कल्पनाएँ जितनी निर्बुद्ध है, उतनी ही शरीर और आत्माके परस्परसंबंधकी, शरीरसुखकी क्षुद्रताकी और जीवनमृत्युकी कल्पनाएँ भ्रामक हैं। अजामिलने जन्मभर पाप किये; परंतु मरते समय लड़केको पुकारनेके निमित्त उसके मुँहसे 'नारायण, नारायण' शब्द बाहर निकल पड़े। विष्णु भगवानके हज़ार नामोंमें 'नारायण' एक नाम होनेके कारण, मृत्युके समय उसने भगवानका नाम लिया इसलिये उसके खातेमें चित्रगुप्तको एक बड़ा पुण्य दर्ज़ करके रखना पड़ा ! और उस पुण्यके बलपर उपरोक्त अजामिल महाशय विमानमें बैठकर वैकुण्ठ गमन करते चले ! पीढ़ियोंसे हमारे कथावाचक और पुराण कहनेवाले पंडित यह कथा लोगोंको खूब रंगकर सुनाते आये हैं। इस मूर्खतासे भरे तत्त्वज्ञानका सामाजिक परिणाम कितना विचित्र हुआ होगा, इसकी कोई भी सहज कल्पना कर सकता है। पाप और पुण्य, ऐहिक और पारलौकिक, सुख और दुःख, जीवन और मृत्यु इत्यादि विषयोंमें वस्तुनिष्ठ पद्धतिसे, बुद्धिवादी दृष्टिसे, और इस श्रद्धासे कि जीवन यापन करते समय जो अनुभव होते हैं उन्हींमेंसे जीवनका सामाजिक तत्त्वज्ञान निर्मित होना चाहिए, हम विचार करते रहते, तो हमारे समाजको आजकी अवनत अवस्था कभी भी प्राप्त नहीं हुई होती। आज स्वराज्य प्राप्त हो जानेपर भी हम कहाँ खड़े हैं ? अज्ञानके पंकम, दारिद्र्यके गर्तमें, धार्मिक ढकोसलोके उन्मादमें, निष्क्रियताके नशेमें —

शरीर-सुखकी जी-भरके निंदा करते करते उसके आसपास सदैव चक्कर काटते रहनेके कारण आनेवाली मानसिक दुर्बलताकी और भारतीय जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें आज दिखाई देनेवाली विवशताकी जड़ें और एक स्थानमें हैं। यह महसूस करते हुए भी कि मेरा पत्र हनुमानजीकी पूँछकी तरह लंबा हो चला है, मुझसे उसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। हम असामान्य तत्त्वज्ञानकी कलम, सामान्य मनुष्योंके जीवनपर लगानेका मूर्खतापूर्ण प्रयत्न करते आये। मनुष्योंमें जो अन्य भेद हैं वे कभी न कभी नष्ट हो जायेंगे, ऐसी कल्पना करना गलत न होगा। परंतु सामान्य आत्मा और असामान्य आत्माका भेद अवश्य चिरंतन

है। असामान्य मनुष्य कैसे निर्मित होता है, इसकी मीमांसा करना बड़ी टेढ़ी खीर है। परंतु वह सामान्यसे सदा भिन्न होता है। केवल बुद्धिसे यह असामान्यत्व निर्मित नहीं होता। उस आत्मामें एक स्वयंभू शक्ति होती है। उसके तेजसे सामान्य आँखें चौंधिया जाती हैं। उस तेजकी पूजा करनेका मोह उन्हें अरोक हो जाता है। इसके कारण वह असामान्य आत्मा जो कुछ कहती है वह उन्हें वेदवाक्य लगने लगता है। लेकिन असामान्य मनुष्य धूमकेतुकी तरह होते हैं। उनके उदय और अस्त जितने आकस्मिक होते हैं, उतने ही उनके जीवनसे सूचित होनेवाले उच्च तत्त्व भी सामान्योंके द्वारा बहुधा निग्राहे नहीं जा सकते! एक लाश और रोगी मनुष्यको देखकर बुद्धके मनपर वैराग्य छा गया। अभूतपूर्व वैभव, लवण्य-वती पत्नी, पितृत्वका नया सुखद अनुभव इत्यादिका त्याग करके, एक आधी रातको वह अपनी अस्वस्थ आत्माको संतोष देनेके लिये राजप्रासादसे बाहर निकल गया। आत्माकी यह चैतन्यता (Sensitiveness) केवल प्रयत्नसे, तोतारटंतसे, अथवा धार्मिक ग्रंथोंके पठन पाठनमें पढ़ जानेवाली बात नहीं है। इसके कारण असाधारण व्यक्तियोंके द्वारा बढ़ावा दिया गया तत्त्वज्ञान कितना ही उच्च क्यों न हो, फिर भी वह संपूर्ण रूपसे साधारण लोगोंसे हजम नहीं होता। यह तो इतिहास ही कह रहा है कि बुद्धिकी मृत्युके बाद उसके धर्मकी क्या दशा हुई। बुद्ध धर्मके महान् हिमायती जापान और चीन राष्ट्रोंमें, पिछले दस-बीस वर्षोंमें क्या क्या उत्पात हुए, मानवके दुःख कम हो इसके लिये तड़पनेवाले बोधिसत्त्वके तत्त्वोंकी अभिमानसे विरुदावली गानेवाले इन दो देशोंमें, मनुष्यको जितने दुःख होना संभव है, वे लाग्यों लोगोंके माथे हमेशाके लिये किस तरह पड़ गये हैं, यह तो आप जानते ही हैं। यह सामान्य मानवने असामान्य मानवसे बदला लिया है।

यदि हम पिछले पाँच हजार वर्षका दुनियाका इतिहास देखें, तो हमारे मनमें यह आये बिना नहीं रहता, कि महात्माओंके तत्त्वज्ञान महाकवियोंके काव्योंकी तरह ही होते हैं। उन काव्योंको पढ़कर, साधारण मनुष्यको बौद्धिक और भावनात्मक आनंद होता है और उसके मनपर थोड़े-बहुत अच्छे संस्कार भी होते हैं। लेकिन उन संस्कारोंकी शक्तिकी अनंत सीमाएँ होती हैं। यह आशा करना, कि रामायण पढ़नेवाले कुटुम्बके भाई भाई आपसमें नहीं लड़ेंगे, पागलपन है! बड़े बड़े मनुष्योंके तत्त्वज्ञानकी भी यही गत होती है। गांधीजीके सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, इत्यादि इत्यादि तत्त्व उनतक पूर्णरूपसे पवित्र और निर्दोष थे।

हिंदुस्तानकी सर्वसाधारण जनताने उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर, इन तत्त्वोंको स्वीकार किया। परंतु एक विशाल देशकी पीढ़ीके मनपर, अपूर्व प्रभुत्व जमाकर भी, गांधीजी जनमनमें, इन तत्त्वोंको कहाँ तक उतार सके? उनकी आँखोंके सामने, नोआखालीका हत्याकांड हुआ। वह आग बुझ भी न पायी थी, कि पंजाबमें दावानल भड़क उठा। गांधीजीके अंतरकी उत्कट इच्छा यह थी कि किसी भी कारणके लिये इस देशमें मानवी रक्तकी एक बूँद भी न गिरनी चाहिए। परंतु पराभूत हृदय और विषण्ण मनसे उन्हें अपने सामने ही निरपराधी रक्तकी नदियाँ बहती हुई देखनी पड़ी। उनके अपरिग्रहके तत्त्वका खून, उनके छोटे-बड़े अनुयायी आजकल किस तरह हँसते-खेलते कर रहे हैं! एक छोटी-सी सफेद टोपीके भीतर कितना बड़ा चोर बाज़ार छिपा रहता है, इसका पता कभी कभी, सहस्राक्ष सरकारको भी नहीं चल पाता। इसका मतलब यह बिलकुल नहीं, कि गांधीजीके तत्त्व ग़लत थे। वे उनतक सर्वस्वमें ठीक थे। लेकिन निष्णात शल्यचिकित्सकके हाथमें जो शस्त्र, रोगीको प्राणदान देनेवाले होते हैं वही यदि शल्य-चिकित्सा न जाननेवाले मनुष्यके हाथमें पड़ जायें, तो बेकार हो जाते हैं अथवा यदि वह मनुष्य ठीक दिमाग़का न हुआ, तो हज़ारोंकी हत्याको कारणीभूत होता है। इसी लिये मुझे लगता है कि असाधारण और साधारण मनुष्योंके जीवन विषयक तत्त्वज्ञान निश्चित रूपसे अलग अलग होने चाहिए। चिड़ियाका सच्चा सामर्थ्य तिनके और कपास एकत्रित कर, घरके किसी कोनेमें सुन्दर-सा घोंमला बनानेमें होता है। बाहर कहीं भी पड़े हुए दानोंको चटसे चुग लेनेमें वह अपनी चतुरता दिखा सकती है। लेकिन उससे यह आशा करना कि, वह गरुड़की तरह ऊँचाईपर जाकर सूर्यकी ओर टकटकी लगाकर देखे, अथवा गगनमण्डलसे नीचे आकर पृथ्वीपर सरसरानेवाले सर्पपर झपट पड़े, क्या ग़लत नहीं है? सामान्य मनुष्यका जीवन इस चिड़ियाकी तरह होता है। उसके सुखदुःखों, उसके विचार-विकारों अथवा उसकी वासना-भावनाओंको यदि हम असाधारण मनुष्यके मापसे गिनें, तो काम नहीं चलेगा। मैं जो यह कहता हूँ, कि उनके जीवनमें शरीरसुखका बहुत बड़ा स्थान है, उसका कारण यही है। उस सुखको उसे विवेकके साथ भोगने देनेमें ही उसकी उन्नतिकी संभावना है। तुलसी कितनी ही बढ़ जावे, पर वह ताड़ और नारियलके बराबर ऊँची नहीं होती। सामान्य मनुष्यकी आत्माका विकास इसी तरह होता है। वह धीरे धीरे होता है। आदर्शवादियोंको यह क्षणभरके लिये भी न भूलना चाहिए,

कि एक विशिष्ट मर्यादा तक ही, कि इस विक्रम के होने की संभावना होती है। यह झूठ नहीं, कि निसर्ग ने मानव को बुद्धि के रूप में देवत्व की देन दी है। परंतु यह भी उतना ही सच है, कि उसको पशुत्व का उत्तराधिकार भी उसी निसर्ग की कृपा से प्राप्त हुआ है।

प्रख्यात चीनी लेखक लिन यू टांग ने मनुष्य की पहली भूख के बारे में जो लिखा है वह उसकी दूसरी भूख के बारे में भी उतना ही यथार्थ है। वह कहता है —

‘दो अत्यंत घनिष्ठ मित्रों को लीजिये। कल्पना कीजिये कि दोनों को फड़ा के की भूख लगी है। ऐसे समय दोनों की भेट हो गयी और किसी विषय को लेकर उन दोनों में बहस छिड़ गयी। तो उस बहस का अंत लड़ाई में हुए बिना न रहेगा। लेकिन उन्हें पेट भर खिलाकर स्वस्थ चित्त में उन्हें उस विषय की चर्चा करने दीजिये। तो आप देखेंगे कि मतभेद होने के बजाय वे शीघ्र ही एकमत हो जाते हैं। अपने घर भोजन का निमंत्रण देकर, पकवानों को आग्रह से खिला देने वाले मनुष्य की पुस्तक की आलोचना करने का मौका अगर आये, तो उसके खिलाफ कुछ लिखने की हमें हिम्मत नहीं पड़ती। मनुष्य स्वभाव का यह मार्मिक ज्ञान होने के कारण ही सारे झगड़ों और वादविवादों का निर्णय, न्यायालय के बदले भोजन की पकित में देने का प्रघात प्राचीन चीनी लोगों ने रूढ़ किया।’

लिन यू टांग के इस लेख का विनोद थोड़ा एक ओर कर दें, तो मैं जो कहता हूँ, उस सत्य का दर्शन, उसमें हुए बिना नहीं रहता। जग का सुधार करने की इच्छा करने वालों को, मानव को अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करने वालों को, उसे समय असमय आत्मिक भूख की दवाएँ पिलाने के बजाय, उसकी जो नैसर्गिक शारीरिक भूखें, अज्ञान, विषम समाज-रचना अथवा अंध पवित्रता के कारण अतृप्त रही हैं, उन्हें पहले पूर्ण करने की दक्षता लेनी चाहिए। कबूतर भी जिनमें ऊँच जायें ऐसे दरवाजों में रहने वाले, आठ आठ घंटे तक मिलकी भट्टी में उबलकर निकलने वाले, किसी भी प्रकार की शिक्षा न होने के कारण बौद्धिक आनंद से वंचित और इस कल्पना से कि हमारे बालबच्चों के भाग्य में भी यही जानबूझी जादगी बढ़ी है, जीने वाले मजदूरों को, मद्यपान से परावृत्त करने के लिये

पवित्रतावादियोंके प्रयत्न भले ही प्रामाणिक हों, पर वे विशेष बुद्धिमानीके नहीं कहे जा सकते। वर्षा ऋतुमें नदीमें बाढ़ आकर उसका पानी जहाँ राह मिले वहीं फैलने लगता है। बंबई जैसे बड़े बड़े शहर आजकल इसी प्रकार बेहिसाब बढ़ रहे हैं। ऐसे शहरोंमें पेटके लिये लाखों तरुणोंको रहना पड़ता है। कठिन परिश्रम करना पड़ता है। वे यदि अपने बालबच्चोंके साथ वहाँ रह सकें, तो यह बात नहीं, कि वे यह न चाहते हों। लेकिन जहाँ बिस्तर बिछाने लायक जगह प्राप्त करनेके लिये पाँच-पाँच सौ रुपयेकी पगड़ी देनी पड़ती है, वहाँ बालबच्चेवाले मामूली मनुष्यको इस साधारण सुखका लाभ कहाँसे होगा? और जबतक इस तरह पत्नीसे दीर्घकालतक मजबूरन दूर रहनेवाले, बाल-बच्चोंके प्रिय संगतिमें खिलनेवाली नाजुक भावनाओंसे वंचित हुए, पारिवारिक जीवनके कारण अनायास ही निर्माण होनेवाले संयमका संपर्क भी न रखनेवाले मनुष्य, बड़े बड़े शहरोंमें, जहाँ हर किस्मके लोग रहते हैं, अपनी दरिद्रताके कारण अलसाया हुआ जीवन कष्टसे बिता रहे हैं, तबतक सरकारके द्वारा वेद्योंओंके अमुक स्थानमें रहने या न रहनेके बारेमें कितने ही निर्बंध डाल जायें, फिर भी उनसे चिरस्थायी सामाजिक लाभ क्या होगा?

अंध रूढ़ीके शिकार हुए हमारी संस्कृतिमें धर्मके नामपर शरीर और आत्मामें अलगाव किया गया। हमारा समाज यह भूलता गया कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कविवचन अनेक अर्थोंसे सच है। आत्मविकास शरीरसुखकी अपेक्षा भले ही श्रेष्ठ हो, फिर भी कवित्वकी तरह विशेष व्यक्तियोंमें ही प्रकट होनेवाली वह एक शक्ति है, समाजके सब लोगोंको ज़बरदस्तीसे कवि बनानेका निरर्थक काम जितना मूर्खताका होगा, उतना ही शरीरसुखकी ओर ध्यान न देकर, सर्वसाधारण मनुष्योंकी आत्मिक उन्नति करनेका प्रयत्न विफल होगा—यह मामूली बात हममेंके बड़े बड़े लोगोंके ध्यानमें शायद ही कभी आयी। इसी लिये मुझ जैसे व्यक्तिसे, बार बार मनमें आनेवाले ऊपर जैसे विचारोंको कहीं न कहीं व्यक्त किये बिना, नहीं रहा जाता। उसमें, 'जललेला मोहर'के पहले संस्करणकी प्रस्तावना लिख देनेके लिये आप मेरे पीछे लगे थे, उस समयमें आपके चक्करसे जैसे तैसे छूटा। मेरी कल्पना थी कि दूरमें संस्करणतक आप यह बात भूल जायेंगे। परन्तु दुर्भाग्यसे यह नहीं हुआ! गत छः महीनोंसे आप मेरे बहुत ही पीछे पड़ गये! तब मैंने निश्चय किया कि व्यवसायके निमित्त जो अनेक

चित्रविचित्र सामाजिक अनुभव मुझे हुए, मेरे जॉचके कमरेमें मनुष्यके मनका मुझे जो दर्शन हुआ, वह सार रूपसे आपके सामने रख दूँ और अपने उत्तर-दायित्वसे मुक्त हो जाऊँ। मैंने बीचमें आपको एक बार लिखा था कि लेखनीकी अपेक्षा थर्मामीटरसे ही मेरा अधिक संबंध आनेके कारण, मैं स्वच्छंदतापूर्वक कुछ लिख दूँगा और वह आपको पसंद न होगा। लेकिन उत्तरमें आपने शीघ्र ही लिखा - 'आपकी स्वच्छन्दता भी पाठकोंका मार्गदर्शन कर सकेगी। जंगलमें जन्म लेनेवाले वृक्ष और लताएँ किसी मालीके द्वारा नहीं लगायी जाती और न कोई उनकी देखरेख ही करता है। परंतु उनमें भी एक प्रकारका सौन्दर्य होता ही है।' शायद आपकी इस प्रशंसासे फूलकर ही, मैंने चार शब्द लिखकर भेजना स्वीकार कर लिया होगा। उन चार शब्दोंके गर्भोंके रूपमें ही लिखना मेरे लिये संभव था। तदनुसार यह लंबा-चौड़ा पत्र आपको भेज रहा हूँ। इसका जैसा उचित समझे, आप उपयोग करें। लेकिन एक बात कहे देता हूँ। जिनका स्वच्छंद-लेखन कहानीके बराबर ही मनोरंजक और बोधप्रद होता है, ऐसे मनुष्य जगमें न होते हों, यह बात नहीं है। लेकिन डॉक्टर सानेको उन लोगोंमें नहीं गिना जा सकेगा।

मेरे इस सारे लेखको पढ़कर संभव है, अनेक लोग मेरे बारेमें यह मत बना लें कि मैं शरीर सुखको ही अधिक महत्त्व देता हूँ। इसलिये अंतमें अपना एक मत और यहाँ स्पष्ट रूपसे व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। यह मुझे भी स्वीकार है कि दिनरात अनिर्वेध शरीरसुखके पीछे लगे रहनेके कारण, मनुष्यकी बुद्धि और हृदयका विकास कुंठित हो जाता है। मानव धर्मके सच्चे शत्रु नास्तिक लोग नहीं हैं। 'कशाला उद्याची बात ?' ग्रंथ उडुनि चालली रात — '१' गीतको चौबीस घंटे गुनगुनाते हुए चंचल चैनके पीछे दौड़ते रहनेवाले विलासी सुखवादी लोग ही, मानवताके सच्चे शत्रु हैं। गतिमान घड़ी ही उनका युग होता है। उसे निचोड़कर उसमेंसे संभव हो उतना आनंद लूटना ही, वे अपना जीवनकार्य मानते हैं। स्वयं अपने सुखासक्त जीवनके परे दूसरे जगको वे जानते ही नहीं। अन्तर्मुखता, चिंतनशीलता, इत्यादि बातोंका उन्हें बहुधा स्पर्श नहीं होता। वे सिर्फ इतना ही जानते हैं, कि शरीरको जो जो बात सुखप्रद लगती जावे, उसको बार बार करते

१ 'कलकी बात किसलिये ? देखो, रात उड़ी जा रही है।'

रहना चाहिए। इसके कारण विलासका उपभोग लेना ही उनका एकमात्र लक्ष्य बनता है। बीसवीं सदी ऐसा बहिर्मुख यांत्रिक मनुष्य निर्मित कर रही है जिसे कोलाहलपूर्ण शहरके बाहर एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता, और शरीरसुखके नये नये व्यसनोको अपनाये बिना जिसका समय नहीं कटता। मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि इस मनुष्यकी जाति दुनियामें सर्वत्र तेज़ीसे बढ़ रही है। इन लोगोंको प्रभु ईसा, महात्मा बुद्ध अथवा भगवान श्रीकृष्ण आदिके पुराने उपदेशोंकी ज़रूरत नहीं। उसी तरह वे मार्क्स, गांधी अथवा विवेकानंदके नये तत्त्वज्ञान भी नहीं चाहते! सम्पत्ति और सत्ताकी पूजा करना ही इनका धर्म है!

भारतीय संस्कृतिमें आत्माके सम्मानके लिये शरीरका बलि देनेकी प्रथा पड़ी— अब जो नया यांत्रिक मनुष्य निर्मित हो रहा है, वह शरीरके क्षुद्र अथवा क्षणभंगुर सुखके लिये आत्माका बलि देनेमें आनन्द मान रहा है। शारीरिक सुखकी अंध आसक्तिसे और उपभोग लेनेकी अमर्यादित लालसासे, अधिकसे अधिक द्रव्य-संग्रह करनेका चसका मनुष्यको लग जाता है। इस हृदय-शून्य लोभके कारण दूसरोंपर राक्षसी प्रभुत्व जमानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। लोभ और मदके द्वारा मनकी मृदुता विनष्ट हो जानेके कारण उसका प्रेम एक व्यक्तिमें केंद्रित नहीं रह पाता। 'काम' की स्वच्छन्द आराधना और एक स्त्रीसे तृप्त होनेपर दूसरी स्त्री-पर डोरे डालनेमें जो शिकारका नशा चढ़ता है उसकी उपासना—ये ही दुर्भाग्य-वश उसके प्रेमके व्यक्त स्वरूप होते हैं।

इस प्रकारके चंचल, कामुक और समाजविन्मुख मनुष्यकी निर्मिति मानवी संस्कृतिका दुर्भाग्य है। ऐसा सामान्य मनुष्य जो संयमके बंधनमें नहीं रहना चाहता और जिसने अपने सम्पूर्ण जीवनमें अन्तर्मुखताको नहीं पहचाना है, कभी भी सुखी नहीं हो सकेगा। लेकिन संयमका जो तत्त्वज्ञान हमें समाजके आगे रखना है, वह अगर ढोंगी है, तो काम न चलेगा। अज्ञान, विषमता और अंध धार्मिक श्रद्धासे उसका उद्गम न होना चाहिए। व्यक्तिविकास और मानवताकी प्रगतिकी दृष्टिसे जो संयम आवश्यक होता है, उसका मैं हमेशा ही समर्थन करता हूँ। लेकिन क्या, उस प्रश्नका जिसकी चर्चा आपने 'जल्लेला मोहर' में की है, अथवा क्या, इससे भी अधिक विकट अनेक सांसारिक समस्याओंका उत्तर देनेकी आजतककी हमारी दृष्टि केवल निषेधकी, घुटनकी और इस अर्थकी थी कि ऐहिक जीवन एक कारागार है और मनुष्य प्राणी उसमें बंद कर रखा हुआ बंदी

है। हमने इस दृष्टिसे कुछ भी विचार नहीं किया, कि शरीर और आत्माका नैसर्गिक संतोष और विकास किस मार्गसे सिद्ध हो सकेगा, और सामान्य मनुष्यके जीवनमें शरीरसुखके महत्त्वको पहचानकर तथा उसे उचित स्थान देकर, उसे संयमी किस तरह बनाया जा सकेगा। अब वह करना अत्यंत आवश्यक है। देव और धर्मकी भ्रामक कल्पनाओंपर आधारित पुराने सामाजिक बंधन तड़तड़ टूटकर गिर रहे हैं। बुद्धिको जँचनेवाला उन्नत ऐहिक जीवन ही मनुष्यका ध्येय हो रहा है। जब ऐसे नये सामाजिक बंधन निर्मित होंगे, जो इस ध्येयसे सुसंगत हों, और जो शरीर और आत्मा दोनोंका सुंदर समन्वय साधें, तभी नया मानव, नया जग इत्यादिके बारेमें कवियों, शास्त्रज्ञों, सज्जनों और तत्त्वज्ञानियोंने जो स्वप्न मंजोये हैं, वे अंशतः सत्यसृष्टिमें उतरेंगे। परंतु उसके लिये हमें एक नान अच्छी तरहसे ध्यानमें रखनी चाहिए। वह यह कि मनुष्य निरा आर्थिक, केवल तामुक अथवा सिर्फ आध्यात्मिक प्राणी नहीं है। आर्थिक अथवा काम विषयक संतोष ही उसके जीवनका एकमात्र सुख नहीं है। नैसर्गिक इच्छाओंका दमन करके सामान्य मनुष्यका आत्मविकास करनेकी कल्पना मृगजल सींचकर नंदनवन निर्मित करनेकी कल्पनाकी तरह ही मूर्खताकी है। मार्क्स, फ्राइड और गांधी - ये महापुरुष आधुनिक मानव समाजका उपचार करनेवाले, प्रतिभावान धन्वंतरी हैं। इन हर एक उपचारमें सत्यांश है। लेकिन पूर्ण सत्य एकमें भी नहीं है। इन सब सत्यांशोंको जीवनमें एकरस करके उनकी सहायतासे नये जगकी निर्मिति करनेकी सामर्थ्य यदि सामान्य मनुष्य दिखावे, तभी भविष्यमें उसके सुखी होनेकी संभावना है।

लग रहा है कि और भी बहुतसा लिखूँ। चाहे जितना प्रलाप करनेके बाद भी जिस तरह पागलकी तृप्ति नहीं होती, उसी तरह है यह। इसलिये अब यहीं रुक जाता हूँ। आप यदि मेरा यह पत्र छापें, तो आपके उपन्यासके पाठक आपको किस प्रकार सम्मानित करेंगे, इसकी मुझे कोई कल्पना नहीं। अगर उन्होंने अपनी नापसंदगी दिखायी, तो मैं आपको अभीसे यह अनुमति दिये देता हूँ, कि अगले संस्करणसे आप इस लेखको निकाल सकते हैं।

आपका स्नेहांकित

डॉ. साने'

